VISIT…

LANZAROTE Caliente.COM

जीवन एक नाटक

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

जीवन एक नाटक

पन्नालाल पटेल

अनुवाद

रघुवीर चौधरी



नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2738-0

पहला संस्करण : 1970 (*शक 1892*)
तीसरी आवृत्ति : 1999 (शक 1921)

Original Title : Maanaveeni Bhavaai *(Gujarati)*
Translation : Jeevan Ek Natak *(Hindi)*

रु. 55.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

भूमिका

पन्नालाल पटेल आजन्म कथाकार हैं, यह तो उनकी रचनाएं प्रकट होने पर साहित्य पढ़ने वालों ने देखा ही था। इसी कारण वत्सैल मेघाणीभाई (स्व. झवेरचंद मेघाणी) का स्नेहाभिषेक उनके उपन्यास 'वळामणां' (बिदाई) और 'मळेला जीव' (प्रेमीजन) पर हुआ। और बाद में प्रकाशित उनकी छोटी-बड़ी कथाओं का सभी ने सम्मान किया।

पर 'मानवीनी भवाई' उन सबसे अलग है। कहानी की कला 'मळेला जीव' और 'सुख-दुख—ना साथी' (सुख-दुख के साथी) में है ही। केवल कसब की दृष्टि से देखें तो 'मळेला जीव' में जो नखशिख सौष्ठव है वह 'मानवीनी भवाई' में यत्र-तत्र परिमार्जन के अभाव के कारण अधूरा है। पर कला की सार्थकता—कला का पुरुषार्थ अधिक शोभा देता है, उसके वस्तु-माध्यम के द्वारा। वेदना तो प्रत्येक प्राणी में समान अनुकंपा जगानेवाली होती है—पर उस अनुकंपा का कला-माध्यम व्यक्ति ही बना रहे तो कला टिकती अवश्य है पर भव्य नहीं बन पाती। प्लेटो ने सौंदर्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि Beauty is the grandeur of good! उसी तरह कला तभी भव्यता प्राप्त करती है जब वह व्यक्ति के छोटे सुख-दुख का आधार लेकर सृष्टि में उल्कापात करने वाली तरंगों के बीच अपनी नौका चलाए।

आदि कवि की अनुकंपा तो जाग उठी थी दो क्रौंच पक्षियों के वियोग से—पर उस अनुकंपाजन्य वाणी का विषय बना राम-वनवास; महान कला वैयक्तिक वेदना-वियोग की उपेक्षा नहीं करती, पर उसे ऊपर उठाकर विशाल सृष्टि पर बिछे ताने-बाने में एकरस करके पाठक की अनुकंपा को कर्मशील बनाकर कहां रोग की जड़ है, कहां प्रहार करने योग्य स्थल है, यह बिना मुखर हुए बता देती है।

आदि पर्व में आते शांतनु, गंगा, शिखंडी या भीष्म के पात्र उनके वैयक्तिक आवेगों के हू-ब-हू चित्रण के लिए ही नहीं हैं। वे तो अनजाने में ही बने हैं माध्यम—कुरुक्षेत्र और जनमेजय के सर्पसत्र के।

'ले मिज़राब्ल' का ज़ां वालज़ां व्यक्ति ही नहीं, समग्र समाज का वेदना-प्रतीक है, अन्यथा यह कृति एक रत्नकनी-सी कहानी की तरह दूसरे प्रकरण में ही समाप्त हो गई होती। व्यक्ति के रूप में ही उसकी कथा लिखनी होती तो उसका जेल का दुख और बिशप द्वारा किया गया उसका हृदय-परिवर्तन—इन दो बातों से कहानी पूरी हो जाती। पर केवल ज़ां वालज़ां और बिशप ही जगत नहीं, समाज भी है। ज़ां वालज़ां जैसों

को सुधारने और बिगाड़ने के लिए सभी प्रयत्नशील हैं। तभी तो ह्यूगो को थेनारडियर जैसा निष्ठुर धूर्त, वनस्पति की दुनिया में मशगूल मोबुफ, आदर्शवादी एन्जोलर्स, प्रेमी मेरियस और शासनबद्ध कानून के सेवक शिकारी कुत्ते-सा जेवर्ट जैसे पात्रों को लाना पड़ा है और कथा-पट जेल से शुरू करके, गिरिजाघर से गुजारते हुए पेरिस के क्रांतिकारियों की बेरीकेड्झ (ओट) तक फैलाना पड़ा है, क्योंकि ज़ां वालज़ां केवल व्यक्ति नहीं। थेनारडियर की वह भूखी, पगली, पक्की और उसके मरने के बाद मरियम उसे चुंबन करे, ऐसी इच्छा करने वाली लड़की भी ज़ां वालज़ां का ही एक रूप है। इसी प्रकार गावरोश उसका दूसरा रूप है। क्रांतिकारी उसका तीसरा रूप है। ह्यूगो को एक सृष्टि की कथा लिखनी है। उसकी प्रबल कला को इसके सिवा चरितार्थता मिलना संभव नहीं। प्रत्येक महान कला अपने पूर्ण रूप को तभी प्राप्त करती है जब वह व्यक्ति की कथा को सृष्टि के सुख-दुख का माध्यम बनाती है।

कवि ठाकुर के उपन्यास 'नौका डूबी' की 'घरे बाहिरे' से तुलना करने पर यह बात स्पष्ट होगी। 'नौका डूबी' भी कलाकृति है, पर 'घरे बाहिरे' में जिस गर्मी और प्रकाश का सामंजस्य स्थापित हुआ है, उसका 'नौका डूबी' में परिपूर्ण अनुभव नहीं होता क्योंकि 'नौका डूबी' के रमेश और कमला की उलझन सकुचाने वाली होने पर भी उन चरित्रों के साथ पैदा होती है और उन्हीं के साथ समाप्त होती है; 'घरे बाहिरे' के निखिल, संदीप या विमल के दुखों का लीलास्थान एक साथ व्यष्टि और समष्टि दोनों हैं।

श्री पन्नालाल ने 'मानवीनी भवाई' के रूप में कालप्रधान उपन्यास लिखकर नई दिशा का उद्घाटन किया है। इसका ऐतिहासिक महत्व है। कालू की बात उसकी अपनी बात नहीं, पर गुजरात की सरहद पर चार दशक पूर्व बसने वाले— नए और पुराने जमाने के संधिकाल तक पहुंचकर करवट लेते— गांवों की बात है। कालू तो एक निमित्त है। निमित्त उपादान होने से सुख-दुख कम नहीं होते पर भूमिका और गतिकेंद्र बदल जाते हैं।

'मानवीनी भवाई' ग्रामीण समाज की कहानी है और गति जगाने वाला बल है काल। मानो सारी कथा का मुख्य पात्र ही काल है और अन्य सभी तो उसके संकेत से खिंचते हैं। समग्र समाज को भूमिका के रूप में लेकर उस पर कालू को ही पात्र बनाकर अंतिम पच्चीस वर्षों में ठीक-ठीक सफल कही जा सके, ऐसी कथा लिखने के लिए पन्नालाल हमारे यहां (गुजराती साहित्य में) बहुतों के पथ-प्रदर्शक बनेंगे।

यंत्रोद्योग-प्रधान समाज शुरू होने के बाद मनुष्य के सुख-दुख का मूल बहुधा परिवर्तित हुआ है। वैयक्तिक कर्मों के परिणामस्वरूप उसे मिलने वाले सुख-दुख की अपेक्षा सामाजिक (पारिवारिक नहीं) कर्मों के परिणामस्वरूप उसे प्राप्त होते सुख-दुख का प्रमाण बढ़ गया है। इसे ही विख्यात समाजचिंतक ग्रहास वॉलेस ने 'हमारी सामाजिक विरासत' नाम दिया और आनुवंशिक विरासत की अपेक्षा यह विरासत ही

हमारे सुख-दुख के निर्माण में निर्णायक होगी, ऐसा पृथक्करण किया है। यह स्थापना राजनीति, अर्थनीति और कुछ हद तक अन्य क्षेत्रों में पूर्ण रूप से मान्य होने पर भी साहित्य में इसका सफल प्रवेश नहीं हुआ था। व्यक्ति ही सब कुछ है, ऐसा मानकर ही साहित्य-सृष्टि की रचना होती रही है। मानो दुनिया फेरग्रीव भूगोल के नियमानुसार चलती हो और शालाओं में पढ़ाया जाता हो टॉलमी का भूगोल— वैसा ही अनगढ़ यह दृश्य है। पात्रों का भी पात्र, जिसे हम सूत्रधार कहते हैं, वह तो अब है सामाजिक परिबल। ये परिबल भी यकायक उत्पन्न नहीं होते। उनका स्वीकार, घटनाओं के घटित होने में उनका हाथ, स्पष्ट संकेत से दिखाने का पुरुषार्थ 'मानवीनी भवाई' ने किया है। यही इसका सत्कार करने के लिए सबसे बड़ा कारण है।

कालू निर्भीक और सच्चा युवक है। कथाकार के कथनानुसार इस निर्भीकता और सच्चाई का एक मूल है वैयक्तिक झगड़ों को टालने वाले, दुख को पी जाने वाले टेकी पिता और दृढ़ संकल्प माता में। आरंभिक छह प्रकरणों में अंकित वाला पटेल का रेखाचित्र कहानी का ढांचा निर्णीत कर देता है। सदियों पुराने गांव जिसके कारण टिके हुए हैं, वह झगड़ा टालने की वृत्ति है और दूसरी है दुख से पराजित न होने की, पलायन न करने की, जमीन से सटे किसान की जोंक-वृत्ति। क्लेश के, ईर्ष्या के अवतार-सी अपने भाई की कर्कशा पत्नी माली के, कालू के जन्मप्रसंग पर रोंगटे जला दें, ऐसे ताने सुनकर, उसे जवाब देने के लिए उत्सुक अपनी पत्नी से वह कहता है, "मत बोल, मत बोल! भगवान ने खुशी से दिया होगा तो उसका कुछ नहीं बिगड़ सकेगा। जा, तू घर चली जा। कजिये से बढ़कर दुनिया में कोई शाप नहीं।"

और दूसरी ओर इस निरुपद्रवी वाला पटेल में दुख को पी जाने की साझेदारी है और सो भी कड़ुआ मुंह करके नहीं— आधी वीरता से और आधी भक्ति के सहारे। साधु की लंगोटी की कहानी कहते हुए जब साधु संसार में फंसने के बाद भागा, तब जो कुछ वह कहता है मानो कालू के जीवन का सार-सर्वस्व है, "तुझे मालूम है? साधु तो होगा बनिया-ब्राह्मण— इसके सिवा किसी और जात का होता तो भागता ही नहीं! पर किसान की जात को तो दुख के दिन बिताना अच्छी तरह आता है। अगर साधु की तरह वह भी भाग जाए तो धरती का अंत ही आ जाए? पर भागे क्यों पगले? साधु के जाते ही उसने समझ लिया कि इस तरह खाट में पड़े रहने से गुजारा नहीं होगा, और हो गई खड़ी। कसे हुए कछौटे पर धोती से कमर बांधी और कट्-कट् करती चढ़ गई डूंगर पर— तुम सबको दिखे न दिखे पर वह चुन रही गोंद।" तीन साल के कालू को फूल की तरह उठाकर कंधे पर बिठाते हुए कहा, "ऐसी है तब संसार की बात! बेचारे साधु की क्या ताकत कि दुख के दिन मेहनत से बिता सके? यह तो भगवान ने भला सरजा किसान कि मुझे इतने— अरे, हम सभी को दुख है पर देखना तुम, एक के बाद एक

---

* और यह साबित हुआ है वर्ष 1985 के भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से जो इस उपन्यास को दिया गया है। — संपादक

को खुशी से जी लेंगे। क्यों, बेटे?''

यह दुख को जी लेने का—पीसकर खा जाने का संकल्प-बल इन साहूकारों का आधा मजाक, आधी दया, इन मेहनत से मर जाते लोगों का सच्चा गौरव, कहानी की महत्ता का सूचक है। वाला पटेल अपनी बात नहीं करता—वह तो अस्थिरता, लूटपाट, दैवी आपत्तियों, साहूकार, दरबार और अफीम—इन सभी से नोचे जाते, लुटते, निचोड़े जाते, फिर भी जीने की किसी अद्‌भुत ताकत के सहारे बार-बार गीतों से गुंजित हो उठते गांवों के मेहनती समाज की महत्ता गाता है, नाज़ुक कल्पना या क्षणिक भावावेश के सहारे खड़ी की हुई महिमा नहीं, इतिहास की आग्नेय शान पर चढ़कर सिद्ध होने वाली महिमा का बखान करता है। और दूसरी ओर यही शब्द हैं कालू के लिए, पिता की ओर से प्राप्त, जीवनमंत्र।

चार साल के कालू के कान में यह मंत्र फूंककर वाला पटेल उसे अपने भाई—कर्कशा पत्नी के कारण हीन हो चुके—परमा को सिपुर्द करके विदा होता है और उसके साथ ही विदा होता है उस छोटे गांव में बसता एक सात्विक सत्व।

जब तक यह तत्व था, तब तक माली की दुष्टता सफल नहीं हो सकती थी। राजू से कालू की मंगनी वह होने देना नहीं चाहती थी और उसके लिए उसने उछलकूद करने में और सिर पटकने में कोई कसर छोड़ी न थी—पर गांव की 'डाइन' फूली मां का वाला के प्रति जो सद्‌भाव था उसके कारण वह रोक नहीं पाती। वाला की विदाई के बाद ही वह रिश्ता तुड़वा देती है। बचपन में साथ खेलने वाले, घर बनाकर खेलने वाले, सात ताली के दाव में साथ खेलने वाले, खेत के सीवान में साथ हंसने वाले उन दोनों को अलग करती है—और इस पर भी मानो विधाता को संतोष हुआ न हो, इसीलिए वह उन्हें चाची-सास और दामाद के रूप में रख देता है। जो दूर सागर पार जाता है, उससे इतनी जलन नहीं होती; वह तो अपनी ससुराल में ही—उस पार के घर में और अपने घर में आती है, नाम से भली, पर काम में 'कुंदा'! तुर्रा यह कि कालू की मां मरते वक्त उससे आखिरी वचन मांग लेती है कि दूसरी पत्नी नहीं करूंगा। कालू मानो सूली पर सो रहा हो—नहीं उतर पाता या नहीं आता झट अंत काल भी। ससुराल है सो बार-बार कल्पना के घोड़े दौड़ाता है, ''दुनिया चाहे जो कुछ कर ले—एक बार कपड़े तो पहना दूं, छींटे तो छींटे पर मना तो लेने दे।'' वह भूल जाता है कि राजू से उसने खुद ही सिखावन दी है कि ''संपन्न घर और खूबसूरत वर हो तो सारी दुनिया घर बसाकर रहती है पर गरीब घर और रंक पति होने पर भी घर बसाकर रहने में बड़ाई है।''

पर राजू अलग लहू से बनी है। उसे ऐसी सिखावन की तनिक भी आवश्यकता नहीं। हमारे साहित्य में शरत्‌चन्द्र के साहित्य ने जो नारी गरिमा खड़ी की है, उसी की यह पैदाइश है। ''उसने तो मानो वह यौवनमस्त उच्छृंखलता, ठिठोली, मस्ती, तूफान—सब कुछ मायके से ससुराल आते-आते पांच कोस की राह में मानो बिखेर दिया।''

एक बार बीमार पति के लिए अपनी नथ बेचने के लिए राजू को तैयार होती देख कालू पूछता है, ''तू रीस न करे तो एक बात पूछूं, राजू! क्या सचमुच दयालजी को दुरुस्त करना, जिलाना चाहती है?''

राजू के मुंह पर दुख का बादल उतर आया। दर्द भरे हास्य के साथ बोली, ''आप भी मुझे ऐसा पूछते हैं? दुनिया मानती है कि यह आदमी मर जाए उसकी राह देखती राजू बैठी है, पर क्यों? किस सुख के लिए? आप सब समझते हैं कि राजू को दुख है। पर क्या दुख है? मां-बाप से मेरे जेठ-जेठानी हैं, बच्चे भी मेरे प्यार के भूखे हैं और आदमी भी।'' उसने हंसने की कोशिश की, ''आप-सा छैल-छबीला होता तो दिन में दस-बीस गालियां देता जबकि यह तो आज्ञाकारी कदम-कदम पर चिंता करने वाला। क्या दुख है मुझे?''

कालू तो राजू की ओर देखता ही रह गया। आदरभरी नजर करते हुए कहा, ''तुझ-सी हमारी बिरादरी में तो बहुत कम औरतें होंगी राजू, मैं तो एक भी नहीं देखता।''

लेखक की बात सही है। राजू-सी उस बिरादरी में तो एक भी नहीं हो सकती। राजू तो है शरत्चंद्र की राज-लक्ष्मी, भैरवी, अन्नदा और पारो और वैसे कई महिमाशाली नारी पात्रों के सेवन के बाद हमारे सर्जकों द्वारा ग्रामभूमि में बोए गए बीज का पौधा। इस पौधे की बराबरी करने वाला उस ग्राम प्रदेश में मिल न पाए तो उसमें कालू का कोई दोष नहीं।

बुड्ढा वाला भी ग्राम जनता का है। बुड्ढी माली भी उसकी घृणाजनक ईर्ष्या के बावजूद गांव की है। डाइन फूली, कासम, वेचात गांव के हैं। खुद कालू भी। केवल वह है उस युग के संधिकाल की पैदाइश। पर राजू का बीज देहाती नहीं है, उसे खाद-परवरिश और आबोहवा भले ही गांवों से मिली हो।

कोई ऐसा न मान ले कि मैं श्री पन्नालाल पटेल की सर्ग-शक्ति में क्षति देख रहा हूं। श्री पन्नालाल की सर्ग-शक्ति पहचान या प्रशंसा का विषय नहीं। वह तो स्वत:सिद्ध है। रवींद्र और शरत्चंद्र के युगव्याप्त प्रभाव से कोई संवेदनशील सर्जक बच नहीं पाएगा, यह तो निर्विवाद बात है। हर बार देखना तो यह है कि उस प्रभाव को किस रासायनिक विधि से लेखक ने अपने कथा-प्रदेश में उतारा है? वह प्रभाव अनुकरण में परिणत हुआ है या आत्मसात हो गया है?

पन्नालाल ने 'मळेला जीव' में और प्रस्तुत कृति में इस ध्वनि को आत्मसात किया है, ऐसा पाठक कह देगा। जीवी और राजू जो कुछ बोलती हैं, निर्णय लेती हैं, आस-पास की परिस्थिति देखते हुए अपने ढंग से करती हैं। पहले से ऐसा करने के लिए उन्होंने सोचा नहीं होता, वे तो अन्य दिशा में जाने के लिए तड़पती हैं पर नई परिस्थिति को सहकर उसकी आदी होती हैं, ऐसा समझकर कि बलवान और निर्भय मनुष्यों को यही शोभा देता है।

संसार के रस्मो-रिवाज और धर्म के विधि-विधानों ने उन्हें रोका नहीं। उन्हें तो रोक रखा है उनकी स्वस्थ करुणा ने। राजू सोचती है कि कालू वाली सगाई तोड़ने में अपनी नई ससुराल वालों का थोड़े ही दोष है? और कालू की पत्नी भली का भी क्या दोष? तब कालू को दोष दिया ही कैसे जा सकता है? अकाल के समय कालू आकर देखता है कि राजू के घर में दिन भर के लिए भी दाने नहीं हैं। उपवास होते हैं— गांव में दाने देने वाला कोई रहा नहीं— रोज घर के सामने ही भूख से मरने वालों की चिता तैयार होती है— घर वाले कहीं थोड़े-बहुत दाने लेने गए हैं— कालू इस भूख के कारण, चिंता के कारण क्षीण हो चुकी राजू से कहता है,

''तू भी पहचानी जा सके ऐसी कहां रह पाई है?...दाने बिलकुल नहीं?''

राजू हंसी।...पर सारा बदन ही फीका हो गया था, फिर हास्य में रंग कहां से आता? ''हैं थोड़े-बहुत, बिलकुल खाली थोड़े ही हो गए होंगे?'' पर कालू मान नहीं पाता। वह कोठियों में कमठा डालकर देखता है। भीतर तो है खाली। आग लेने के लिए दूसरे घर जाती राजू को देखकर कहता है,

''घर में अनाज हो तभी आग सुलगाए न?'' और राजू के प्रवेश करने पर कहता है, ''छोड़ यह तंबाकू और चल मेरे साथ, हो जा आगे।'' राजू की सूरत देखने पर लग रहा था, रोऊं या हंसूं? कालू ने आगे कहा, ''मैं तुझे इस तरह बुरी मौत मरते देख नहीं सकूंगा।''

''बुरी मौत सारा मुल्क मरेगा या मैं अकेली?...और दुनिया क्या कहेगी? और छोड़िए दुनिया की बात, पर जी तो सभी के समान ही होते हैं न?''

मुई दुनिया, दुनिया की मुझे परवाह नहीं, उसके सामने खड़े रहने की मुझे हिम्मत है, पर यहां 'जो सब हैं उन सभी के जी भी मेरे जी जैसे ही हैं'— यहां है सभी को आत्मसात करने की अनुभूति।

राजू समाज से नहीं डरती। जमाने के प्राणवान व्यक्तियों को कभी समाज का डर नहीं होता, नहीं है मृत्यु की भांति। राजू ही कहती है, ''आपको मौत का अचरज है, वरना हमें तो...हम तो जिंदगी के नाम पर नहा बैठे ही हैं।...अभी से ही हर रोज तीन-चार चिताएं जलती देखते हैं। उनके साथ एक दिन हमारी भी।'' प्राणवान व्यक्ति तो मृत्यु की आवभगत करते हैं— जब आती है। पर राजू को तो इसकी भी उतावली नहीं, चिंता नहीं। उसे चिंता है सहज तथा आसपास जो निर्बल मिले हैं उन्हें संभालने की। यह समझदारी शास्त्र-मंत्रों से प्राप्त नहीं होती, वह तो प्राप्त होती है प्राणों के साथ-साथ। ज्यों हजार मना करने पर भी फूल अपनी सुगंध के फव्वारे छोड़ते रहेंगे, त्यों ही प्राणवान अपनी जिंदगी या मौत की परवाह किए बिना ही जिसका साथ मिला, उसे अपनी हिम्मत का दान देते ही रहेंगे। मास भर के लिए दाने मिले देखकर राजू खुश-खुश होकर कहेगी, ''एक मास में तो फिर बादशाहत पैदा करेंगे।'' मेहनतकश लोगों के आत्मविश्वास की यह गूंज है। हर रोज हल हांककर, घन पटक-पटककर, गड़ांसे

चला-चलाकर उनमें एक आत्मश्रद्धा कायम हो जाती है कि जिसके हाथ सलामत हैं, उसे कौन डराने वाला है? किसी भी मुल्क से बीज ले आने के बाद भी लोगों की आत्मश्रद्धा को कला पर प्रभुत्व न होने पर दिखाया नहीं जा सकता।

और इन पात्रों की तेजस्विता, प्राणशक्ति, बेपरवाही, मनोमंथन और विकास की रेखाओं को स्फुट करने में छप्पन के अकाल को माध्यम बनाकर लेखक ने अपनी कला का चरम उत्कर्ष सिद्ध किया है। अकाल के तादृश प्रभावों का वर्णन करके वे प्रकरण हमारे साहित्य में दीर्घ काल तक चित्रण के उदाहरण के रूप में सूचित किए जाएंगे।

वर्तमान दशक का सुख्यात इतिहासविद् टॉयन्बी संस्कृति का सारतत्व निकालता है चुनौती और प्रत्युत्तर में— challenge and response में। जो समाज अपने सामने उपस्थित चुनौती को प्रत्युत्तर देता है उसी समाज को संस्कृति प्राप्त हुई है, ऐसा कहा जा सकता है। जहां समाज है, वहां संस्कृति नहीं है। चुनौती को जो स्वीकार नहीं करते, उसके अधीन हो जाते हैं, वे धीरे-धीरे अपने पैर के नीचे की भूमि गंवाते रहते हैं। 'मानवीनी भवाई' के, खेती द्वारा गुजारा करते, इन कालू-राजू ने अपने खेतीप्रधान समाज को मुंह में लेकर, कुचलकर, घोटकर चले जाते छप्पन के अकाल के घाव का किस तरह प्रत्युत्तर दिया है? छप्पन का अकाल अस्त होती पीढ़ी के स्मरण की सबसे बड़ी आपत्ति था। उसमें नाना जैसे पतियों ने अपनी स्त्रियां छोड़ीं, बेटों के पास मां को ढंकने के लिए कपड़े भी न बचे, भली-रूखी जैसी औरतों ने लाज छोड़ी और मनुष्य की केवल एक ही वासना रही— किसी तरह दाना-अन्न पाना, भीख मांग कर, चोरी करके, कुत्ते के मुंह से छीनकर या जूठे पत्तल चाटकर और औरतों ने तो काया बेचकर भी पेट की आग शांत की। मनुष्य का यह अध:पतन देखकर कथा में शंकर ठीक ही कहता है, ''भली है यह धरती कि सभी को चलने देती है।'' जब स्त्रियों ने पति से, मां ने बेटी से, बेटी ने बाप से लाज छोड़ी और सभी— कल मर जाएंगे, आज का दिन कैसे भी बिता दो, जी सको इतना जीओ, जितना भोग सको, भोगो; क्या न्याय और क्या अन्याय, क्या नीति और क्या अनीति— इसी एकमात्र, प्रबल, दुर्दम्य आवेग का अनुभव करने लगे, तब ये दो जने क्या कर सकते थे?

राजू तो भूखी रहने के बावजूद, जेठ और पति को अकाल में गंवाने के बाद भी, मोखा के छिलके लाकर अपने जेठ के बच्चों को संभालती है और यह सब देखकर समाज-व्यवस्था, भगवान, सेठ-साहूकार और राजा के खिलाफ बार-बार क्रुद्ध हो जाते, मस्तिष्क का संतुलन खो बैठने की स्थिति में पहुंच जाते कालू को डांटती है,

''खबरदार, अगर अब से ऐसी बकवास की तो! आधे तो ऐसा सोच-सोचकर ही मरने लगे हैं। अपने बदन की ओर तो देखिए! आपको मालूम है— जानते हैं कि सबसे बड़ी डाइन कौन है?''

कालू के लिए तो राजू की गालियां गुड़ से भी मीठी थीं। हंसते-हंसते बीच में ही बोल उठा, ''सबसे बड़ी डाइन तो भूख है पर...''

राजू बोल उठी, ''ना, डाइन तो है चिंता।''

आपत्ति— आपत्ति की क्या मजाल कि हमारा दिल तोड़ पाए? शरीर टूटता है तब आदमी नहीं मरता, आदमी मरता है आपत्ति से छाती टूट जाती है तब। तभी संस्कृति पराजित होती है।

मनुष्य में, भगवान में, कुदरत में, समाज-व्यवस्था में, किसी में आस्था नहीं रही, तब भी कालू सामान्य आदमी की आदमियत से श्रद्धा नहीं खोता। वह कहता है कि ''आदमी बुरा नहीं, भूख बुरी है।'' सामान्य आदमी से यदि श्रद्धा लुप्त हो जाए तो उस दिन मानव जाति को सागर में ढकेल देना ही शेष रहेगा। प्रकृति या समाज की बेहूदी व्यवस्था भले ही मानव जाति को दुख के सागर में ढकेल दे पर मानव-आत्मा की महिमा का शिखर देखने वाला कविर्मनीषी तो कहेगा ही, ''अपने पीछे मैं संस्कृति के विनाश-भरे खंडहर छाए हुए देखता हूं, फिर भी मैं मनुष्य से श्रद्धा नहीं खोऊंगा।'' प्राणवान देहाती किसान कालू भी कहता है, ''भाई, भूख भोंड़ी है, आदमी भोंड़ा नहीं।'' पर इस सत्य को पाने का सामर्थ्य सभी में संभव नहीं। जो स्वमान को नहीं छोड़ता, जो अयोग्य से समाधान करके— अपने स्वमान के साथ समाधान करके आत्म-श्रद्धा नहीं खोता, वही उस सत्य का अवलंबन ले सकता है। इसी कारण गले तक प्राण आ पहुंचे हैं, ऐसे समय में भी कालू भीख मांगकर जीने से इनकार करता है, ठूंठ हाथ से थाली उजली करके एक कौर धान लेता है, पर मांगने वालों की कतार में खड़ा रहकर सदाव्रत की खिचड़ी लेने को तैयार नहीं। सयानी राजू की सिखावन भी वह मान नहीं सकता। झुंझलाते हुए ज्वालामुखी की तरह वह बार-बार भभकने लगता है और कहता है,

''मैं भी कहता था कि भोंड़ी से भोंड़ी भूख है, पर आज उससे भी भोंड़ा कुछ और देखा...भूख से भी बुरी है भीख। भूख तो हड्डी-मांस गला देती है पर भीख तो,— राजू! सच कहता हूं, हमारे गुमान को और आत्मा को भी गला देती है!'' और राजू की विनती और डांट-फटकार के बाद जाता है, पर मांगने वालों की कतार देखकर उसमें खड़ा नहीं रह पाता और ''जिन्होंने खलिहान से ब्राह्मण जितने उठा सके उतने दाने दान में दिए हों...और जिसके धनी के सामने सारी दुनिया— बड़े-बड़े राजा-महाराजा और सेठ भी हाथ फैलाने आते हों उसी के धनी को आज हाथ फैलाना है?'' जी कैसे कुबूल करता? वह कतार से बाहर निकल जाता है। सिपाही ने उसे रोका :

''ए लूले! कहां जा रहा है यों?''

''कहां कि मेरे ठांव पर।''

''अरे खड़ा रह, लकड़बग्घा! सुनता नहीं बे?''

''पर मुझे धर्मादा नहीं खाना, फिर?''

''क्यों नहीं खाना साले? ये सभी लेते हैं और तू क्यों नहीं लेता? बड़ा लाट हो गया है क्या?''

कालू ने तंग होकर कहा, ''लाट होता तो लेता, पर किसान हूं सो नहीं लूंगा। तू टूट जाएगा तो भी नहीं लूंगा। चांप देना हो तो चांप दे टोटा, यह खड़ा हूं।''

भला हो सेठ सुंदरजी का कि उन्होंने उसे पास बुलाकर धीरे से पूछा, ''क्यों भाई पटेल! तू यह गुजर नहीं ले रहा?''

कालू क्या जवाब देता? और देने पर भी उसे भरोसा था कि ये लोग मेरे जवाब को— किसान के दिल को नहीं समझ पाएंगे। सामने पड़ा यह अनाज का ढेर हमारा है, ऐसा कहूंगा तो उलटे टोटा चांप देंगे और बनेगा कुछ नहीं! अरे न बनता क्यों? अगर ये सब अनाज के धनी हाथ फैलाने की बजाय हाथ उठाते तो ये बंदूक वाले भी भागने लगते, पूंछ दबाकर! ...कालू की उन आगभरी आंखों से टप-टप आंसू ही चू पड़े, ''क्या कहूं, सेठ! छाती के सामने हमारी ही कमाई के नाज के ढेर देखकर हमारे कलेजे क्या कहते!''

इस अन्याय का—बेहूदा रचना का प्रतिकार ही कथा का भरत-वाक्य है। कथाकार ने प्रत्यक्ष रूप से तो सेठ की सज्जनता के द्वारा कहलवाया है कि ''जवान, तुझे अपने ही नाज के लिए हाथ पसारते शर्म आती है, पर हमें भी ये सदाव्रत शुरू करने में इतनी ही शर्म आ रही है! समस्त पृथ्वी का पालन करने वाले को हम कब तक पालने वाले हैं! ...पर क्या हो सकता है पगले! कुदरत के सामने हम सभी लाचार हैं...सभी से कहना कि तुम्हारा है और तुम्हें दे रहे हैं।''

घटनाओं के सामने सेठ द्वारा स्वीकृत यह लाचारी उस काल के सामान्य ऐतिहासिक वातावरण से संगत होगी— और कालू को वह उसी क्षण शांत कर देती है, पर सर्जक ने तो कालू को उस समय और स्थल की सर्वोच्च सामाजिक जागृति का प्रतिनिधि बनाया है। इसीलिए सभी को भूखों मरने देने की बजाय लूटपाट करना उसे वाजिब लगता है। भूखों मरते जो भील ढोरों की चोरी करते हैं, डाका डालने आते हैं, उनका अपने पास हथियार होने पर भी मुकाबला नहीं करना, उलटे उन भूखे भीलों के झुंडों को, बिना हथियार-पत्थर से ढोरों को मारने की कोशिश करते देख, उन्हें मारकर अकेले ही ढोर छुड़ाकर पराक्रमी वाला पटेल के बेटे के योग्य आबरू पाने निकला कालू किसलिए निकला था, यह भूलकर मन-ही-मन कहता है, ''ये लोग कब मार पाएंगे और कब खाने की दशा में पहुंचेंगे, यह बेचारा ढोर कब छुटकारा पाएगा?''

और 'खडिंग' करती तलवार नीचे फेंकते हुए कहता है, 'लो अपनी मां के धनी, अकाल पाड़ने वाले भगवान, तेरी जड़ जाए, तूने आदमी की यह दशा की!''

भगवान को भी इस तरह गालियां देने वाला कालू सेठ की तरह लाचारी दिखाकर इसका इलाज ही नहीं, ऐसा मानकर कैसे शांत हो सकता है? इसमें कहीं बेवकूफी है, कहीं अन्याय है, कहीं गुत्थी है। महाजन के अनाज की रक्षा और बंदोबस्त के लिए

आई लश्करी पलटनों के पास टोटे वाली बंदूकें देखकर वह चीत्कार कर उठता है, "अरे हत्यारे भूरियें ! गाड़ी से टोटे और बंदूकें उतारीं तब अनाज ही उतारना था न भोंड़े! अरे रे हत्यारे! मौत तो यहां चलते-फिरते पैरों में आ जाती है, तिस पर तूने भी वही प्राण लेने वाली गाड़ी से ही उतारी! तब इसकी बजाय तो जिलाने वाला ही कुछ उतारता? ...मारने में तूने छत्तीस कलाएं दिखाईं तब इसकी बजाय जिलाने वाला खोज निकाला होता तो हम भी जानते कि नहीं, छत्तीस कलाओं का जानने वाला तू निकला सही...हम तो जानते थे कि तू कोई देव-रूप है, पर ना, तू तो देव के रूप में कोई राक्षस ही है।"

यहां पड़ी है विश्वव्याप्त मानव-आत्मा की वह चीत्कार। यहां पड़ा है इस प्रचंड अव्यवस्था का प्रतिकार करने का आह्वान!

सागर पार से आए अंग्रेजों की समझदारी इन गांवों में सड़ते, आपस में झगड़ते देहातियों से बढ़ कर थी। पर उनकी संस्कारिता उससे भी बढ़ कर थी। कालू का फैसला है, 'ना'। इतिहासकार रमेशचंद्र भी इस फैसले के नीचे दस्तखत करेंगे और कहेंगे कि "उन्हीं के राज्यों में सबसे ज्यादा अकाल पड़े हैं।"

इस तरह यहां सम्मिलन होता है इतिहास की हकीकत और काव्य के दर्शन का।

और आज भी यह दर्शन निरुपयोगी हुआ है क्या? आज भी कालू की चीत्कार सुनाई नहीं देती?

पर परमाणु बम साढ़े छह अरब डालर का बनता है। एक हवाई जहाज का काफिला एक छोटे राष्ट्र की शालाओं के निर्वाह का खर्च मांगता है। बालकों तक दूध नहीं पहुंचा, रोगियों तक दवा नहीं पहुंची, निराश्रितों को आश्रय नहीं मिला, भूखे को पोषण नहीं दिया गया, पर बम, जहरीली गैस और नौका के काफिले बढ़ते जा रहे हैं। इसमें आधी पाई की भी कमी नहीं दिखाई देती। मनुष्य की बुद्धि ने, कला ने, मानो विनाश के साधनों के घर अपनी सेवा अर्पित की है। नहीं तो क्या बारिश को बांधकर बूंद-बूंद की रक्षा करके अकाल को हराना मुश्किल है? पर दर्द इस बात का है कि छत्तीस कलाओं ने अपना गिरवी खत लिख दिया है इन अन्याय करने वालों के नाम। वे सभी एक ही बार, विराट प्रश्नों का हल खोजने के लिए मिले वामन राजपुरुषों को, केवल एक ही बार 'ना' कह दें तो! संस्कार स्वामी, कलाधर और वैज्ञानिकों के सहकार के सिवा ये युद्ध के हामी राजपुरुष क्या करेंगे?

कालू का यह उलाहना दूर करने के लिए, विश्व का आर्तनाद उन्हें संगठित होने के लिए क्यों प्रेरित नहीं करेगा? और अगर उनकी मानवता नहीं जागती, तो कालू के कहने के अनुसार उन सबको कोई "भूखों मारकर ठिकाने लाए।" यही इच्छा क्या कारगर करनी है?

कलाकार और वैज्ञानिकों के पास ईश्वरदत्त दान है। इसका उपयोग सर्वजन समाज के लिए सर्वक्षेमकर होगा, तभी वर्तमान जगत की समस्या हल होगी। इसमें दान

देनेवाला ईश्वर भी बीच में नहीं आ सकता। ऐसा है 'मानवीनी भवाई' का सहृदय पाठक के नाम आह्वान।

और इस आह्वान की अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने कैसा संविधान पसंद किया है? कैसी भाषा में प्रस्तुत की है यह समस्या?

पन्नालाल की भाषा मानो इस समस्या को प्रस्तुत करने के लिए ही यहां गढ़ी गई है। कुशल कलाकार को उत्तम शिल्प के लिए पहले से ही विविध साधन साफ-स्वच्छ, व्यस्थित कर ले, उसी तरह पन्नालाल प्रस्तुत कृति के लिए सिद्ध हो चुके हैं। नए शब्द, नए वाक्य-प्रयोग, अनोखी वर्णन छटा पृष्ठ-पृष्ठ पर पड़ी है। कोई भी प्रकरण खोलिए, उसका शीर्षक देखिए और फिर संवाद, वर्णन, मर्म और वातावरण देखिए।

'मानवीनी भवाई' किसान समाज की कथा है सो खेती के अलग-अलग मौसमों के हू-ब-हू वर्णन जगह-जगह पर उभर आए हैं,

''आषाढ़ी तीज की रात को आसमान हिंडोले खाने लगा था। ढलती रात, धरती पर आंधी का घमासान युद्ध मचा था। मुरगा बोलते ही धरती और नभ एकतार हो बैठे।

और बड़ा सबेरा होते-होते तो वह मेह गर्जना करता डूंगरों की उत्तरी कतार में चला गया। वायु, बवंडर और बिजलियां भी लश्कर के साथ जाते सामानों की तरह नदारद हो गए।

एक रात में धरती ने मानो करवट ले ली। कल तो पृथ्वी की सांस भी घुट जाए ऐसी भाप निकालती थी, जबकि आज इस पर लेटकर सो जाने का मन हो जाए, ऐसी ठंडी, नरम और मनोरम हो बैठी थी। जगह-जगह पर खोहें और डबरे छलक उठे थे, जबकि मेंढक तो मानो भांति-भांति के सुर निकालने वाली चक्कियां हो? झंखाड़-सी दीखने वाली वह वनराजी, इस एक ही रात में नवपल्लवित हो बैठी हो, ऐसे आंखों को तृप्त करने वाला हरा रंग धारण करके मंद-मंद मुस्करा रही थी। पंछी भी...आसमान के किसी कोने से टोलियां बना-बनाकर उतर आए, खेलने और बधाई गाने को—

पर अकेली धरती ही क्यों? भयंकर उग्र होकर बहता पवन भी तो आज शीतल हवा झल रहा था; मुक्त हाथ से धरती की सुगंध को बिखेर रहा था, कोपलों को हंसा रहा था, शाखाओं को झूले झुला रहा था। नदी तट की सघन वनराजी में और दूर के डूंगरों में आंखमिचौली का खेल चल रहा था। और वह सूरज? कल तो व्योम की भट्ठी में जलता ज्वालाएं, निकालता आग का गोला था। परंतु आज तो वह भी गुलाल उड़ाता हंस रहा था।''

इसके बाद लेखक पशुओं के आनन्द, बैलों के डोलने, बोआई के आनन्द में मस्त ग्रामजन आदि का वर्णन करता है।

मानो सृष्टि में कहीं क्लेश नहीं— कहीं कुछ भी बेसुरा नहीं। और अब अकाल का वर्णन करते—'दुख की चक्की', 'मुश्किल दिन' और 'ओखल में सिर राम!' प्रकरण पढ़िए।

''एक तो गरमियों का एक दिन और वह भी बिना काम-काज का, वह भी कम हो त्यों सिर पर लटकती तलवार!— दिन बीतता ही नहीं था। रामा ने तो कहा भी सही : इस दिन बेचारे के पैर ही टूट गए हैं भूख से कि चल ही नहीं पाता!''

बैसाख के बवंडर शुरू हुए पर इस वर्ष खेतों में घास न उड़ी होती तो उड़ती न? या नहीं उड़ते थे वे तिनके और सूखे पत्ते भी।''

अर्थात पत्ते सूख जाएं इससे पहले ही लोग खा गए होंगे!

''उड़ती थी लू और दूसरी धरती की धूल, या कुछ उड़ते थे आदमियों के सिर के सूखे बाल!''

''आशा थी कि बारह-बारह मास से गई बारिश जेठ के पिछले पंद्रह दिनों में तो जरूर होगी, पर न जाने मेघराजा तो सो गए हैं या फिर उनका पानी खत्म हो गया या लौटते वक्त राह लंबी लगी!

धरती पर मौत की बरसात होती रही! वन में और खेतों में, बाज़ारों में और गलियों में— जहां देखो आदमी के मुर्दे ही मुर्दे! कहां जलाना, कहां दफनाना! फिर मातम-पुरसी या सूतक और श्राद्धकर्म करने की तो बात ही कहां रही! जो पीछे रह गए थे, सगे-संबंधी को आगे करने की राहत का अनुभव कर रहे थे, खुश होते थे! ऐसा मानते थे: न देखना, न दुखी होना!''

गांवों के ऋतु, मौसम और व्यवहारों का सर्वोत्कृष्ट वर्णन पढ़ना हो तो 'धरती का बोझ ढोनेवाला' पढ़िए। पांच पंक्तियों में ऋतु-चक्रों में चलता गांव सजीव हो उठा है।

इस कथा को अगर 'मानवीनी भवाई' नाम न दिया गया होता तो अवश्य ही मैं इसके लिए 'धरती का बोझ ढोने वाला' नाम का सुझाव देता।

वर्णन-चित्रण में ही क्यों, संवादों में, कटाक्षों में, मनोमंथनों में जो भाषा-सामर्थ्य स्थान-स्थान पर है उसमें अध्ययन की बहुत-सी सामग्री पड़ी है— कहीं हैं स्थिर मोतियों की मालाएं तो कहीं है अंगारों का ढेर, कहीं है सज्जित तलवार के झटके तो कहीं है अंतर में धंस गए शल्य की वेदना, तो कहीं है मनोमंथन की उत्ताल तरंग का छलकना।

सिरमौर भाषावैभव तो है माली का। बुढ़िया माली की सारी मेहनत के बावजूद कालू की सगाई अटकती नहीं और उसके सामने ही उत्सव होता है, तब अपने पति और बेटे से वह कहती है,

''मर जा, मर जा, मुआ नामर्द! यहां से चलकर कहीं साधुओं में मिल जा। कहां गया वह निगोड़ा रणछोड़वा? मुआ ऐसा नालवां मेरे पेट कैसे पैदा हुआ? भगा दे अपनी औरत को उसके मायके!...मंगनी तो करवाई है पर उस कलमुंहे को ब्याहने दूं तो मुझे कुत्ती कहना, जा!''

और सचमुच अंधे बैर से प्रेरित माली कालू-राजू का लग्न होने नहीं देती। पर काव्य-न्याय का, काल के परिहास का उत्तम शिखर तो जीत लिया गया है 'माली की

मौत' नामक प्रकरण में।

अकाल में आसपास के टीले और डूंगरों पर रहते भील आज गांव लूटेंगे या कल लूटेंगे ऐसी चिंता है— रोज रात में डूंगरों से मशालें उतरती हैं— किलकारियां सुनाई देती हैं— सभी अपना अनाज, जेवर छिपाकर रखते हैं, पर माली सारे परिवार के जेवर बिना छिपाए अपनी गोद में ही रखती है, 'अपनी दांड़ों के गहने निकाल लो— लाओ वह सब पास— वह तो मुझे सब कुछ मालूम है, निगोड़े रुको और हट जाओ! ये बाल सफेद हुए हैं सो यों ही नहीं हुए।''

और बुढ़िया माली गठरी के साथ ही लुट जाती है और पैर पटककर— घिसकर मरती है। लूटनेवाले अंग ढंकने के लिए एक धागा भी नहीं छोड़ते— शव पर ढंका कपड़ा भी कलमुंहे कालू से ही मिला है।

चिता पर बुढ़िया का मुर्दा रखा गया कि कोई बोल उठा, ''अबे भाई, बुढ़िया के मुंह में रखने के लिए— ''

नानिया चिढ़ गया, ''अभागिन ने हमारे हाथ में रूपे की अंगूठी जैसा भी कुछ रहने दिया होता तो टुकड़ा तोड़कर रखते न? सो तो चलेगा, चलिए! सारे आधा मन जेवर लेकर पलायन कर गई है।''

कालू ने मन में इन बेटों पर घृणा बरसाई। अपने हाथ की अंगूठी तोड़कर बुढ़िया के मुंह में एक टुकड़ा रख आया।

पर लेखक ने हद की है निम्नलिखित कटाक्ष में, ''इन लोगों को कहां मालूम था कि माली रवाना हो गई है, वरना कालू के उस रूपे के टुकड़े को थू करती हुई थूक न डालती?''

कालू और राजू अडिग हैं, वैसे ही बुढ़िया माली भी अडिग है— और उसका नानिया भी अडिग ही रहेगा! उस बुढ़िया ने जेवर गाड़कर छिपाने न दिए और भीखमंगे कर दिए और अब ''ऐसी जगह चलती बनी है कि पीछे घोड़े दौड़ाओ तब भी हाथ न लगे।'' इस ख्याल से क्रोध से अंधा होकर छाती पर मुक्के मारकर नानिया चीख उठता है, ''भाग गई— पर याद रखना, अगर वहां देव के घर भी तेरे गले पर बतीसा न काटूं तो तेरे पेट में पत्थर पैदा हुआ था।''

कालप्रधान उपन्यास का सृजन कठिन काम है। घटनाप्रधान उपन्यासों में लेखक घटनाएं जोड़ते चले जाते हैं। घटनाओं की परंपरा से कथा में गति लाना और उस गति में अन्य कमियों को भूल जाना लेखक और पाठक के लिए सरल है। चरित्रप्रधान उपन्यासों में भी चरित्रों का निर्मित स्वभाव दिशासूचन करता है। पर कालप्रधान उपन्यास में काल की ही एकमात्र गति होती है। वह कभी मंद कभी तेज होती है। पात्रों को सहज रीति से उसकी गति के अनुसार चलाना पड़ता है। इसमें लेखक घटनाओं को ज्यादा तेज कर नहीं सकता। काल, अर्थात व्यक्तियों के वैयक्तिक तथा

सामाजिक कर्मों का ताना, और उसमें आ मिलता है नियति का बाना। और ताने में मिले व्यक्तियों का उदय एक जगह होता है, परिपाक अन्यत्र होता है। द्यूतसभा में विवश होकर अपनी संपत्ति और सहधर्मिणी को छोड़नेवाले युधिष्ठिर की इस बेहोशी में, वेद उच्चरित पासे की स्तुति से लेकर शकुनि तक सभी के कर्म सम्मिलित होते हैं। महान उपन्यास 'वार एंड पीस' की नाटाशा के बाह्यरूप से अंतरंगी दिखते निर्णय उसके स्वैच्छिक निर्णय नहीं हैं। वह युद्ध की अनिश्चित और ऐसे कुछ परिबलों के प्रभाव के नतीजे हैं।

इसलिए कालप्रधान उपन्यास में लेखक को पाठक एवं उसके अपने चरित्र के साथ एक छलना खेलनी पड़ती है। उसे दिखाई देता है कि मैं निर्णय करता हूं पर मुख्य रूप से निर्णय करते हैं दैव और अन्य सामूहिक कर्म। इसमें से कुशलता से मार्ग निकालना छलना है, इसका पता नहीं चलने देना, यह सामान्य कला के बूते की बात नहीं।

'मानवीनी भवाई' में पन्नालाल पटेल ने एक समग्र समाज को एक काल से प्रेरित होता, खिंचता, उसके साथ लड़ता या झुक जाता अंकित किया है। नट की रस्सी पर चलने जैसा यह काम कठिन है। फिर भी लेखक के चरित्र—वाला पटेल, परमा पटेल, कालू, फूली मां, माली—सभी सुरेख हैं, सामने मिल जाएं तो पहले शब्द से ही हम पहचान लें, ऐसे हैं।

यत्र-तत्र क्षतियां रह गई हों तो इसमें अचरज नहीं। उदाहरण के रूप में कासम और शंकर आदि राजू को नानिया के कपड़े पहनाने के लिए तैयार होकर आते हैं, यह तनिक भी औचित्यपूर्ण नहीं है। कासम आदि इस काम के लिए कभी तैयार न होते, ऐसा सामान्य पाठक भी कहेगा। इसी तरह सौष्ठव की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में प्रथम प्रकरण आवश्यक नहीं लगता। कोई भी पाठक सीधे ही दूसरे प्रकरण से आरंभ कर सकता है।

इससे भी बेहूदा है अंतिम प्रकरण। 'उजाड़ आसमान' में कालू की प्यास (मानसिक?) बुझाने के लिए राजू उसके मुंह में अपना स्तन देती है, इसकी अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती। इससे रस की तीव्रता भी नहीं बढ़ती। यौन विकृतियां जगत में बहुत-सी हैं, पर तन और मन से कालू जैसा व्यक्ति उसमें न फंसे यही स्वाभाविक है।

पर परिमार्जन के अभाव में छूट गई ऐसी क्षतियां क्वचित ही दिखती हैं। दिखता है दुख के पीसने पीसकर—ज़रा से दुख के बादल हटते ही "मस्त बनकर अपने गीतों से आसमान को गुंजित कर देने को तत्पर, दावानल के बाद भी जिसे पनपते देर नहीं लगती ऐसा ग्रामीण समाज और उसके मशालची जैसे कालू, जिसके धरती झनझनाते कदम सुनकर राजू की तरह हमें भी भरोसा हो जाएगा। यम तो क्या, यमराज की भी ताकत नहीं कि इसे मिटा सकें।"

—दर्शक

1

खेत के मचान पर

अगहन की आधी रात चुपचाप गुजर रही थी। गेहूं-चने के नाजुक पौधे एक-दूसरे से लग जाने को ललक रहे थे। मचान पर खेतों के रखवाले ठिठुरते हुए पहली नींद निकाल रहे थे। अलाव की आग भी राख की चादर ओढ़कर सो रही थी। फसल से लदी उस विशाल धरती के आसपास टीलों पर बसे गांव अंधेरे में धुंधले-से दिखाई दे रहे थे। सारी धरती सो रही थी। इतना ही नहीं, तारों से लदा आकाश भी शांत, नीरव होकर गहरी नींद सो रहा था...समूचा ब्रह्मांड ही सुनसान था...

हां, उस नदी की तरफ टीले के पासवाले मचान की बात और थी, उस जगह अलाव लगातार जल रहा था।

उस मचान के अगले भाग में बल्लियों के सहारे एक बूढ़ा-सा लगता रखवाला खेत की तरफ मुंह करके बैठा था और उसके बड़े कद्दू-से सिर पर मोटे, राख के रंग के बाल धीरे-धीरे उड़ रहे थे। गहरी धंसी हुई आंखें, दूर के नदी-तट पर—उसके भी पार, आसमान को थामती हुई डूंगरों की उस कालजड़ दीवार पर—और उसके भी अंदर कहीं थमी हुई थीं। अलाव की आग उसके बाएं पहलू को सेंक रही थी, पर ऐसा लगता नहीं था कि उसका भी उसे खयाल हो; या फिर चरबी और मांस-भरे उस मंझोले कद के शरीर पर इस सबका असर नहीं होता होगा। जो भी हो, पर उसके दाहिने पहलू को जमा रही शीतल हवा या बाएं पहलू को गलाती आग—दोनों ही उसके लिए एक समान थीं।

रखवाले ने जोर से सांस ली, पसलियां मांस के बाहर उभर आईं और फिर से अपनी जगह व्यवस्थित हो गईं। इसके साथ ही उसने अपनी दृष्टि को भी वापस खींच लिया। उसने अलाव की तरफ वाले बाएं हाथ की जगह दाहिना हाथ बढ़ाया और अलाव पर खाली की हुई नारियल की चिलम उठा ली। बायां हाथ जो ठूंठ था उसमें चिलम थमाई, चिमटे से चिलम का खजाना साफ किया, तंबाकू रखी, तवा रखा और गिन-गिनकर अंगारे चढ़ाए।

हुक्के पर चिलम रखी, निगाली मुंह में ली और वह फिर से उन सघन अंधेरों की ओर ताकने लगा।

ऐसी हालत में उसे देखकर किसी के मन में इसके बारे में सवाल उठ सकता है, सामने के इस निस्सीम खालीपन में, जहां अंधकार के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं देता, वहां वह अनिमेष दृष्टि से क्या देखता होगा?

पर इस तरह तो वह चार आदमियों के बीच बैठने पर भी ताकता रहता है। सवाल भी पूछा जाता है, 'ऐ कालू चाचा, और सब तो ठीक, पर आप यों— उन डूंगरों के पार धरती के छोर पर एकटक नज़र क्यों लगाए रहते हैं?'

कालू भारी सांस लेते हुए कभी कहता है, 'उन डूंगरों में तो बहुत-कुछ है, भाई! उग-उगकर सारा वहीं डूब गया है।'— तो कभी हंसने की कोशिश करते हुए वहीं का वहीं जवाब दूसरे शब्दों में देता है, 'उन डूंगरों में, उनकी उन खोहों में, उनके भी पार मैं अपनी खोई हुई जिंदगी को— और अतीत में डूबे चार-पांच दशकों को खोजता हूं।'

और इस क्षण भी ऐसा ही कुछ कहता, 'इस अंधेरे में मैं अपनी व्यर्थ बीती जवानी को, अपने अंतस्तल में जिसे छिपाकर रखा फिर भी जो पराई होकर रही उस राजू को, एक खून से बंधे होने पर भी दुश्मन का काम करते अपने चचेरे भाई नाना को और अपने खोए हुए पुत्र परताप को खोजता हूं।'

उसने एक बार और निःश्वास छोड़ा। ठूंठ हाथ से आंसू-भरी आंखों को पोंछा। सामने टूटते सितारे के प्रकाश को देखकर हंसने का यत्न करते हुए बड़बड़ाया, 'जनम-भर में इतना उजाला भी बचा होता।' पर इतने में तो वह सितारा प्रकाश छोड़कर कहीं लुप्त हो चुका था। कालू गरदन हिलाते फिर से हंसा। इस हंसी के द्वारा मानो कह रहा हो, 'मेरे साथ भी यही हुआ है।' और फुसफुसाया, 'नहीं तो क्या नहीं था? अपने मां-बाप का मैं इकलौता बेटा था और वह भी अपने बाप की साठ साल की उमर में पैदा हुआ।...मेरी भी आज्ञाकारी औरत थी, दो बेटियां थीं, परताप जैसा सयाना बेटा...।'

यकायक उसकी आवाज तेज़ हो गई, मानो वे जलती आंतें चिल्ला उठी हों, 'अरे रे! हत्यारे नाना, तूने राजू को तो मुझसे छिनवाया सो छिनवाया, मेरा इकलौता बेटा भी— बेहतर था अगर उसे मार डाला होता।...उसके दूध के दांत भी नहीं गिरे थे, अब क्या पता कि आज वह जिंदा होगा या...!'

उसके बाद तो कालू इस तरह विलाप करने लगा कि अस्सी साला बुढ़िया भी रोने में पीछे रह जाए। सन्नाटे में गुजरती आधी रात भी मानो इस विलाप को सुन रुक गई, और कान लगा सुनती रही।

'अरे रे बेटे, घोड़ियों जैसे बैलों को तेरे सिवा कौन हांकेगा?...हथिनियों-सी भैंसें बसाईं किसके लिए...राजू के इंतज़ार में मैंने जवानी बिताई...और बेटे, तेरी बाट देखने में यह बुढ़ापा! हे भगवान! इससे तो बेहतर होता अगर तूने छप्पन के उस सूखे में ही मार डाला होता, तो ये दिन मेरे भाग्य से टल जाते।...पर अब तो राम! ये हिरदा कहा नहीं सुनता...और बेटे, सुनते हो तो,— अब तो बनिए की बही में ये खेत-खलिहान, ये कुएं और जागीर, ये सारे ढोर...ओ राजू, मेरी हम उम्र भी उस बही के कर्ज़-खाते में

लिखी जाएगी।'

घड़ी भर के बाद कालू स्वस्थ हुआ। अपनी इस कमजोरी पर उसे शरम का अनुभव हुआ। एक बार फिर से हुक्का भरा और यह सोचकर लेट गया जैसे विचारों को रोकने का एकमात्र इलाज नींद ही हो।...

नींद तो न आई मगर रोने से या फिर 'इस मानव-जन्म के नाटक तो देखो!' जैसे विरक्त विचार से मन हलका तो हुआ ही।

और फिर यह लंबी उम्र...कैसी-कैसी उथल-पुथल, कभी छप्पन के सूखे का कठिन वक्त, कभी कैसी-कैसी खुशियां...और पचास साल का जीवन दृष्टि के सामने वाली कालजड़ दीवारों पर एक नाटक के रूप में दिखाई देने लगा— उसी प्रकार, जैसे गांव के चबूतरे पर 'भवाई' (लोकनाट्य) का नाटक खेला जा रहा हो...।

2

बधाई

छप्पन के सूखे से पहले लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व गर्मियों का एक दिन ढल रहा है। मालवा-गुजरात पार करता हुआ देवा बनजारा अपने पांच सौ बैलों के साथ गुजरात की उस सीमा से वापस लौट रहा है। ग्राहकों से बचे घी के डिब्बे डांडों पर लादकर बनिए अपने गांवों की ओर मुड़ने लगे हैं। मजबूत काठी वाले किसान खाद और घास-पात के काम में लग गए हैं। कोई खपरैल पका रहा है तो कोई पके खपरैल छत पर चढ़ा रहा है और कोई सांठियां भरकर दीवारों को ठीक कर रहा है।

फले-फूले छोटे-छोटे पलाश मेघराजा की बधाई गाते हैं तो किसी नदी तट पर करंज-जामन के पेड़ नए परिधान पहने वर्षा-मंगल के लिए सज रहे हैं।

गांव के नीम अधीर हो बैठे हैं। उनमें से भी उस आखिरी मुहल्ले वाला जीर्ण-शीर्ण नीम तो जोश में आकर पवन को सनसनाता हुआ अपनी विशाल शाखाओं को झूले झुला रहा है।

रात हो गई है। मुहल्ले के बच्चे सो गए हैं। बर्तन धोने की घर्र-घर्र आवाज भी शांत हो गई है। बुजुर्ग भी चारपाई में पड़े नाक बजा रहे हैं, 'फर्रऽऽफा! फर्रऽऽफां...!'

एक वह पुराना नीम ही श्मशान के नायक बर्बरक भूत की तरह जोश में आकर सनसनाता हुआ झूम रहा था : 'हीस्स्स हा हीस्स्स हा...!'

उस नीम के पासवाला एक मकान कुछ कुलबुलाता है। छोटे-से दालान में खाट पर करीब साठ साल का वृद्ध एक क्षण के लिए लेटता था तो दूसरे क्षण उठ बैठता था। या फिर सांठी से बने किवाड़ से फूटती रोशनी की उन छड़ों की ओर अनिमेष आंखों से ताकता रहता था। उसकी पतली कृश काठी में हृदय 'धबाक्-धबाक्' करता मानो धान कूट रहा था।

मकान सांठियों से बना था। छप्पर पर तैयार खपरैलों के बजाय हाथ से बने खपरैल थे। उस बूढ़े का पहनावा भी अहीर-सा था— घेरदार मिरजई, धोती भी छोटी और मोटी— हाथ की बुनी। हां, खूंटी पर टंगी पगड़ी की बुनाई कुछ बारीक अवश्य थी। पर सिर्फ पहनावा ही क्यों? वह आदमी भी और ही किस्म का था, मानो उसका मिजाज भी कुछ और ही हो।

इस बूढ़े की ही बात लीजिए, साठ साल हो जाने पर भी उसकी इकहरी काठी मजबूत थी। हड्डियां मानो फौलादी हों।

पर फिलहाल तो वह—एक क्षण मानो बीमार हो, तनिक भी ताकत न हो इस तरह खाट में लौंदा बने दब जाता, तो दूसरे क्षण बाल्य-चपलता से उठ खड़ा होता। दबे पांव दरवाजे की चौखट तक जाकर दुबक रहता जैसे चोरी करने जा रहा हो, कभी कान धरकर सुनने की कोशिश करता, कभी उस दरार के भीतर झांकने लगता।

पर दिखे क्या? सूतिका की खाट तो दूर अडार के कोने में थी।

विवश होकर वह फिर खाट पर आ बैठता...सुंदर दाढ़ी से भरे मुंह पर कभी बालक की तरह आनंद उतरा आता, तो कभी असहायता, कभी निस्तब्धता।

यकायक उसके कानों से वेदनाभरी आवाज आ टकराई। बूढ़े का हृदय कांप उठा, होंठ फड़फड़ाने लगे, 'हे भगवान! आखिरी किनारे पर नाव है! दे दे! एक सवासेर मिट्टी बेटे के रूप में दे दे!...अरे रे, बेटे के लिए तो दो-दो औरतें कीं और पांच साल तक जीते-जी नरक भोगा, भगवान! उस नरक से एक को खींच लिया और तूने फिर स्वर्ग दिया। पर प्रभु! अभी बेटे की आशा नहीं छूटती, इसीलिए— '

तभी जन्म लेते शिशु का रुदन सुनाई दिया। बूढ़े का दिल थम गया। आर्तनाद करती स्त्रियों के शब्द पकड़ने को वह एकाग्रचित हुआ, पर कुछ भी समझ न पाया। उसकी अधीरता यहां तक बढ़ गई कि और दो-चार क्षण बाद वह अवश्य उठ बैठता और चीख पड़ता, 'क्या हुआ?'

पर उसी क्षण किवाड़ खुलने की चिर्रऽऽऽ आवाज हुई। उतावली से बाहर आती स्त्रियों की अधीरता से बूढ़ा समझ गया। उसके फीके हो चुके मुंह पर दीपक के प्रकाश-सा आनंद छा गया। उसने आंखें मूंद लीं और नींद में डूबे होने का दिखावा भी करता रहा।

पर कितने पल? भीतर फैल चुके आनंद ने मानो गुदगुदा दिया, फैले पैर समेट लिए, उसका सारा शरीर स्फुरित हो गया। मुंह से आधी हंसी और आधी गुनगुनाहट की मिश्रित आवाज निकल आई। सबसे आगे आकर 'भाई बधाई हो,' के शब्द वह अधेड़ स्त्री कहे इसके पहले ही वह उठ बैठा। बीच में मांग बनाती हुई दोनों कानों की ओर बंधी सुंदर दाढ़ी फरफरा उठी, मानो मंद-मंद हंस रही हो। जबकि मूंछें तो—

'भाई, बधाई हो! भाभी ने बेटे को जन्म दिया।'

बूढ़ा फटी आंखों से और फटे मुंह से देखता रहा। न तो उससे हंसा गया, न वह रो पाया, न उसके मुंह से कोई आवाज निकली।

पर बूढ़े की ओर किसी का ध्यान न था, सामने आकर खड़ी ये पांच-सात औरतें तो एक ही गाना गा रही थीं, 'देखना जमना बहन, खाली मत छोड़ना! साठ की उम्र पर चाचा के घर बेटा जनमा है जी— '

दूसरी ने पूर्ति की, 'और सो भी राजा के कुंवर-सा!'

बूढ़े की आंखों में आंसू छलक आए। होंठ फरफराए, पर आवाज नहीं निकल पाई। खंखार कर गला साफ किया। सामने खड़ी बहन से कहा, 'खरी बधाई, बहन!'

बहन तो कुछ न बोल पाई, पर पास में खड़ी फूली मां ने पूछा, 'हां, पर बधाई में क्या देते हो? यह तो बताओ!'

'बहन जो मांगे।' और वाला ने हर्षाश्रुभरी आंखों से बहन की ओर देखा।

ये पांच-सात स्त्रियां सोच में पड़ गईं। क्या पत्रा, बूढ़े की गरीबी को याद करके या फिर उदारता देखकर, पर कुछ क्षण तक कोई कुछ भी न बोला।

'पकड़े रहना, जमना बहन!' ऐसा कहने वाली भी चुप हो गई। बोली, सो भी उलटा ही, 'जो मांगो, सोचकर मांगना, बहन! मांगना चाहो तो बहुत कुछ मांग सकती हो, पर कपड़ा देख ब्यौंतना, भाई!'

'यह फालतू बात कहती है!' सबसे मोटी दिखती वाला के छोटे भाई परमा की औरत मुंह बिगाड़ती हुई बोली, 'घर में पानी पीने का लोटा भी फूटा हुआ है, तब फिर बधाई में क्या— '

इन शब्दों ने मानो कलकल बहते झरने के बीच शिला रख दी, पर वह भी क्षण के लिए ही। दूसरे ही पल फूली मां बोल उठीं : 'यह तो चलता रहता है। पर सब दिन एक-से थोड़े ही होते हैं? और वाला भाई को तो भगवान ने बेटा दिया है। कल बड़ा होगा, कमाएगा!' वृद्धा जमना की ओर मुड़ी, 'पर यह सही है कि ब्राह्मण और बहन तो कदम-कदम पर रोक सकते हैं, सो अभी तो— ' और उन्होंने बूढ़े की ओर देखा, कहा, 'चलो, बधाई में हंडे-घड़े ला देना।' और जमना से पूछा, 'कम तो नहीं लगता न तुझे?'

'ना रे भाई! भाई के घर का एक कपड़ा मिले तब भी बहन के मन— '

फूली मां ने बूढ़े से भी पूछा, 'और आपको?' चुप देख आगे कहा, 'कठिन लगता है क्या?'

'अरे, ना रे, फूली भाभी!' हंसने का यत्न करते हुए वाला ने आगे कहा, 'मेरी उम्मीद तो बधाई में बहुत-कुछ देने की है, पर वह कहावत है न कि खरग़ोश के अगले पैर जितना दौड़ते हैं उतना पिछले पैर नहीं दौड़ते! नहीं तो— '

जमना बीच में ही बोल उठी, 'क्या बोले, बड़े भाई? मेरे लिए तो भाई का घर आबाद रहे कि लाखों रुपए पाए और जैसा कि फूली मां ने कहा है अभी तो बहुत-से अवसर आने वाले हैं।'

'ब...स, बस!' फूली मां ने हां में हां मिलाई। इसके साथ ही मानो उन्हें खयाल आया—'आप सब यहां दौड़ आई हैं तो वहां उसके पास—चलिए चलिए घर में, और— '

फूली मां सबको आगे करके चली तो सही, पर दरवाजे के पास से वापस आ गई, 'याद आता है, वाला भाई?' कहती हुई चारपाई के पास आई। कहा, 'आषाढ़ की सुबह

थी और आप हल हांकते-हांकते दोहे गा रहे थे—वह मोर वाला दोहा गाते-गाते आप रुक गए थे और मेरे पूछने पर आपने क्या कहा था, याद है?'

बूढ़े ने आंखें छोटी कीं—मानो याददाश्त पर रोशनी डाल रहा हो। दूसरे पल बोल उठा, 'हां-हां— '

वृद्धा बीच में बोली, 'आपने कहा था कि दोहा तो शौक से गा दूं परंतु पीछे लोगबाग मेरा मजाक उड़ाएंगे— '

'हां-हां, वह दोहा : देवदेवी के आंगन में— '

'हां...बस वही! पर अब तो भगवान ने आपको बेटा दिया है और— '

बूढ़ा पूछे बिना रह न पाया, 'कैसा है, फूली भाभी? मुझे— '

'जैसा आपने उस दोहे में गाया था वैसा ही। याद कर लो उस दोहे को फिर— ' और फूली मां मुस्कराती हुई चल दी, दरवाजे की तरफ।

बूढ़ा वाला तो जैसे अभी जनमे उस महंगी मिट्टी के मोर को सचमुच धरती के नाम समर्पित कर रहा हो, इस अंदाज में भीगे हृदय से और गद्‌गद् स्वर में वही दोहा बोलता रहा—बोलता रहा—

'देव-देवीने पारे मेलतां
सौ को मरघां ने बकरा शां ढोर।
पण मारे धरती ने खोले मेलवो
मोंघी माटीनो रमतेरो मोर।।'[1]

---

1. 'सब कोई तो देवी-देवता को मुर्गे, बकरे चढ़ाते हैं लेकिन मैं तो धरती की गोद में महंगी मिट्टी का हंसता-खेलता मोर समर्पित करना चाहता हूं।'

3

ज्योतिषी ने भविष्य कहा

मनुष्य जाति के लिए संतान-प्राप्ति—उसमें भी पुत्र-प्राप्ति, शायद सबसे बड़ी कामना होगी, नहीं तो वाला के सिर पर जितने बाल थे उतने ही रुपयों का कर्ज भी उसके सिर था। साथ ही लोगों के कहने के अनुसार घर की खपरैल और बूढ़े की देह दोनों ही गिरने-गिरने को थीं।

और साठ साल पर जन्मा लड़का कब बड़ा हो और कब बुढ़ापे की लकड़ी बने, कब चाकरी करे!!

पर सच कहें तो बूढ़े के खयाल में चाकरी का सवाल ही नहीं उठता था। कोई आधा दरजन बच्चे हुए थे—बूढ़ा कहता, 'ये तो तकदीर में न होने पर भी हमें खिलाने को दिए थे। साल-दो-साल खिलाने का मौका देकर वापस ले लिए मेरे नाथ ने!' लेकिन आखिरी दो बच्चे तो पैदा होते ही मर गए थे, इसका जवाब बूढ़े वाला को नहीं मिल रहा था।

पत्नी तथा गांव वाले कुछ और ही कहते, 'नाथ ने तो नहीं लिए, उसने तो सीधे हाथ दिए थे, पर उस बैरिन ने निर्वंश का बचा खाने को जंतर-मंतर करके मरवा डाले।'

वह बैरिन और कोई नहीं; वाला के छोटे भाई परमा की बहू माली थी। पर बूढ़ा वाला, सारी उम्र—लगभग हरेक बच्चे के पीछे डुग्गियां बजवाने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा था, 'डाकिनी-शाकिनी सब कहने की बातें हैं! मुल्क-मुल्क के गारुड़ियों को तो ले आया और सारा घर साफ कर डाला। फिर भी—एक भी न बचा! सब राम की लीला है!'

आखिर मनुष्य ही तो है। बूढ़ा इस बार झुक-झुककर विनती कर रहा था, 'हे मेरे नाथ! अगर इस बार भी ऐसा ही करना हो तो बेटे से पहले उसकी मां को और फिर मुझे मौत दे देना। पर बेटे को लेकर हमारी मौत मत बिगाड़ना...और सब तो ठीक, पर अब मुझसे भाई की बहू के उलाहने नहीं सहन होंगे और शायद गले में फांसी लगाकर मरने की बारी आएगी।'

बूढ़े की इच्छा थी, 'कोई ज्योतिषी मिले तो बेटे की कुंडली बनवा लूं।' एक-दो

बार पांच कोस की दूरी पर बसे कोई हजार की आबादी वाले डेगडिया गांव का चक्कर भी काट आया। वैसे वहां ब्राह्मणों की जनसंख्या तो अच्छी थी, पर कोई ऐसा नहीं था जो काशी तक हो आया हो। फिर भी बूढ़े ने मन बनाए रखा। चाहे जैसा हो, है तो ब्राह्मण ही! उसकी जीभ पर सच ही होगा, वह जो लिखे सच ही निकलेगा।

पर बदनसीबी की बात तो यह थी कि ये काने-गूंगे ब्राह्मण भी गरीब वाला से बहाने बनाते रहते, 'दो दिन के बाद, अभी पंचक हैं' और पीठ पीछे मजाक उड़ाते, 'पटेल भाई में अक्ल होती तो पूछना ही क्या था! घर में खाने को अन्न नहीं और बेटे की...'

इतने में वाला की इच्छा भगवान ने ही एक दिन पूरी कर दी। एक ब्राह्मण यात्री मुखिया का घर पूछता हुआ दोपहर के वक्त आ पहुंचा। भाग्यशाली मुखियानी ने ज्यों ही उसे, कंधे से झोला उतारते देखा कि डांटना शुरू कर दिया, 'मुखिया का घर, मुखिया का घर करते ये निगोड़े न जाने कहां से भटकते-भटकते चले आते हैं।'

ब्राह्मण ने कंधे से उतारा झोला फिर कंधे पर रख लिया, 'कुपित मत हो, मां! भगवान ने हम-जैसे पथिकों के लिए ही वृक्ष...'

पर इतने में वाला ब्राह्मण के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, 'ऐसा भी हो सकता है, ब्राह्मण देवता? मनुष्य तो मनुष्य के पास ही आएगा न! चलिए, मुझ गरीब की झोंपड़ी पवित्र कीजिए।'

फिर भी ब्राह्मण नहीं जाता, पर बूढ़े ने उसके कंधे से वह झोला ही ले लिया। ब्राह्मण को जाना ही पड़ा।

उस इकहरी देह के ब्राह्मण के मुख की रेखाएं ही कह देती थीं कि वह काशी का पंडित है। पहनावे में भी लंबा अंगरखा, फेंटकर बनाई गई धोती की चुनटदार लांग और सर पर मुर्गे की कलगी-सी गोलाकार पगड़ी।

पूछने पर पता चला कि नजदीक का—दस कोस का ही है। परदेश जा रहा था। 'क्यों?' के जवाब ने तो बूढ़े को बेहद खुश कर दिया, 'भगवान ने ही खुद इस जन्मपत्रिका बनाने वाले को मेरे घर भेजा है!'

ब्राह्मण के पास दूध से बनी रोटी थी, परंतु वाला की इच्छा थी कि वह यहां 'जूठन छोड़े'। घर में तांबे-पीतल का बरतन नहीं था। वह तो भाई के घर से या फूली भाभी के घर से ले आता। पर बूढ़े ने गरमी के इन दिनों में मिट्टी का नया घड़ा भर लाना ही उचित माना, 'चलिए उठिए, खिचड़ी की तैयारी कीजिए महाराज!' घड़ा अड़ार से उतारते हुए बूढ़े ने कहा। पर ब्राह्मण ने ऐसी गरमी में झंझट में पड़ने से साफ मना कर दिया और बूढ़े की जिद छुड़वाने के लिए ही लड़के की कुंडली तैयार करने का काम शुरू कर दिया।

बूढ़ा ब्राह्मण से भी आगे बढ़ जाने वाला। 'ना, पहले आप भोजन कीजिए—मेरे घर का अन्न पेट में डालिए, इसके बाद ही— '

आखिर ब्राह्मण को मानना पड़ा, 'ठीक है। आप ईंधन लाकर चूल्हा बनाइए और मैं कुंडली का काम करूं। इधर खिचड़ी भी पक जाएगी, उधर हमारा काम भी हो जाएगा।'

बूढ़े की खुशी की सीमा न थी। पत्थर रखकर चूल्हा तैयार किया, पतीली-थाली भी मांग लाई। खिचड़ी बीनकर रखी...ज्योतिषी को काम में मशगूल देख गांव वालों को बुला लाने की बात याद आई। रिवाज के अनुसार घर-घर कह आया, 'चलियो भाई, एक ज्योतिषी आए हैं, सो बच्चे का नामकरण करना है।'

और घड़ी भर में बूढ़े का छोटा-सा दालान लोगों से भर गया। सामने से परमाजी मुखिया और उनका पुत्र रणछोड़ भी आ बैठा।

जैसी गठीली काठी वैसा ही मोटा उनका पहनावा था। हथ-बुनाई की धोती और वैसा ही मोटे पोत का अंगरखा— छोटा घेरदार— अहीर-सा। चालीस से ज्यादा उम्रवालों ने पगड़ी पहनी थी और सबने साफा बांधा था।

इन तीस आदमियों के बीच कई हुक्के घूम रहे थे, कुछ नारियल से बने बदरंग थे तो दो-तीन दो-दो सेर वजन के नक्काशीदार, सुंदर 'बदरी-हुक्के' थे।

एक ओर वह ब्राह्मण अपनी गणना में मस्त था। दूसरी ओर सब गांव वाले गप्पें हांक रहे थे। गप्पों में किस गांव से किसके ढोर की चोरी हुई और कौन उसे वापस ले आया से लगाकर किस गोरे ने नए सिक्के—'कलदार बम्बईगरे' को शुरू किया तक बातें थीं। इन दिनों चलते सिक्के— बादशाही, चित्तोड़ी, सालमशाही वगैरह का क्या होगा, इसकी फिक्र भी होने लगी थी। पर यह फिक्र करने वाले तो दो-तीन ही थे— परमाजी, फूली-मां का शंकर और बूढ़ा मावजी।

वैसे इनके पास भी उंगलियों की पोरों पर गिने जा सकें इतन ही रुपए पैसे थे, पर इनके मन तो...

और इसीलिए तो कुंडली तैयार करने में मग्न बैठे ब्राह्मण की एकाग्रता का खयाल किए बिना परमा मुखिया ने सवाल किया, 'ए महाराज, यह गोरा कितनी छूट काटता है?'

ब्राह्मण ने अपनी झल्लाहट को हंसकर प्रकट करते हुए इस विषय में अपना अज्ञान बताया और वाला को सामने बिठाकर— कवि अपनी उत्तम रचना को जिस आनंद और उल्लास से सुनाता है, उसी प्रकार ज्योतिषी ने लड़के का भविष्य पढ़ना शुरू किया, 'भाई का नाम मिथुन राशि पर पड़ता है, चाचा!'

सभी सोच में पड़ गए, 'मिथुन राशि तो ठीक, पर नाम कह दीजिए न!' परमाजी ने कहा।

'क, छ, घ— मिथुन।' ज्योतिषी बोले। खयाल आते तुरंत ही अर्धाक्षर के साथ नाम के उदाहरण भी दिए : 'क से नाम रखा जाए तो कंचनलाल, काशीनाथ, कनकचंद।' पर अब भी उन लोगों के चेहरों पर उलझन थी। खयाल आया, 'आपकी जाति के

अनुसार कुबेर, कचरो, कनको, कालू— '

बूढ़ा वाला बोल उठा, 'बस, बस। हमारे लिए तो काले-कुबड़े नाम ही अच्छे। कालिया ही ठीक है।'

और लोग भी सहमत हुए, 'कालिया रखिए तब भी और कचरा रखिए तब भी, ठीक ही है।'

और ब्राह्मण ने 'कालू नामाभिधान' उस कागज पर लिख दिया और कुंडली पढ़नी शुरू की।

लोगों को तो चंद्र में या राहु-केतु में तनिक भी रस न था। इसीलिए तो फूली मां के जवान पुत्र शंकर ने कहा, 'वह सब तो ठीक है, महाराज! पर यह बताइए कि वह निकलेगा कैसा?'

ब्राह्मण फिर हंसा, 'कैसा कि— ' और उस कुंडली पर नज़र घुमाते उसने पहला वाक्य कहा, 'आपका पुत्र स्वावलंबी होगा, चाचा!' ग्रामजनों के प्रति कुछ गर्व से आत्मश्रद्धा भरी दृष्टि फेंकते हुए आगे कहा, 'लिख रखना यदि सच न निकले तो।' और फिर से कुंडली पर आंखें स्थिर कीं, 'बिना मुखिया बने मुखिए का काम करेगा। आंगन में घोड़ी बांधेगा और जाति व राज्य में इज्जत बढ़ाएगा। अपने बाप-सा बहादुर निकलेगा— '

सभी 'बाप-सा' सुनकर चकित हो गए। इस ब्राह्मण को कैसे मालूम कि अपनी जवानी में ये पूरे शूर थे—उन मुगलों को एक साथ खत्म किया था, इस बात का इसे कैसे पता चला? या फिर बूढ़े के मुंह पर जो दो-तीन घाव हैं उन्हें देखकर?—जो भी हो, लोगों को ब्राह्मण के कथन में विश्वास जगा।

'वह जीएगा कितने बरस, महाराज?' बूढ़े ने पूछा और जब ब्राह्मण ने 'आपसे भी अधिक' कहा तब तो बेहद खुशी के मारे उसकी आंखें आंसू से छलक उठीं—'आपका वचन सिद्ध हो, इतना चाहिए!'

'इसका विवाह होगा या नहीं? कितने बच्चे होंगे?' वगैरह कितने ही सवाल पूछने थे पर क्षोभ हुआ, शायद कालिये की तकदीर में औरत ही न हो तो!

लेकिन इतने में तो मावजी चाचा ने सवाल किया : 'और शादी वगैरह?'

'दो पत्नियां हैं, चाचा!'

परमा का पच्चीस वर्षीय बड़ा पुत्र रणछोड़ ठहाका लगाकर हंस पड़ा, 'यहां एक की ही सांसत है...और...हा...हा...क्या देखकर बोलते होंगे, महाराज?' जाने-अनजाने रणछोड़ के साथ और लोग भी सहमत होकर हंसने लगे, पर दूसरे पल तो उनके मुंह भी शंकर-मावजी की तरह पीले पड़ गए।

वाला चाहे कितना ही धीर-गंभीर क्यों न हो, था मनुष्य ही। कुछ खीज गया, 'अरे भाई! विवाह नहीं होगा तो इससे क्या? मुझे तो इतना ही चाहिए कि वह जिंदा रहे, कुशल रहे।' और झुंझलाकर खड़ा हो गया।

सच पूछो तो बुड्ढे के मन में औरत न मिले यह जैसे उलाहना था, वैसे ही दो औरतें (अलबत्ता एकसाथ) भी शापरूप था। पर यह सब पूछने के अनुकूल उसका मिजाज नहीं था।

ब्राह्मण ने उनको फिर से बिठाया, शांत किया, 'आप तो समझदार हैं, चाचा! दुनिया तो जैसा देखे, वैसा कहे, पर इस गरीब ब्राह्मण का वचन याद रखना—अरे, आपके जीते जी ही...मंगनी होगी। अगर न हो तो इस ब्राह्मण के नाम पर थूकना...अब तो संतोष हुआ न?' अंतिम शब्द बोलते समय ब्राह्मण की आंखें चमक उठीं। भीतर से श्रद्धा के फव्वारे उमड़ने लगे।

ब्राह्मण को पोथी लपेटता देख बुड्ढे को लगा, 'क्या दूं? क्या न दूं? वह बोल उठा, 'अभी तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, पर एक पड़िया दूंगा, महाराज!'

ब्राह्मण कुछ भी हां-ना कहे, इससे पहले ही बूढ़े का छोटा भाई परमा मुखिया बूढ़े पर खीज उठा, 'घर में भैंस के नाम काला बाल भी है जो खुशी के मारे ऐसी डींग हांकता है? और तू अपने-आपको चाहे जो कुछ समझता रहे पर— '

इतने में तो शंकर, मावजी आदि दो-तीन आदमी बधाई के समय जैसे फूली-मां ने कहा था इसी तरह बोल उठे, 'बेटा चंगा रहेगा तो कल सुबह दशा पलटेगी।'

'पलटेगी तब की बात तब, पर अभी तो— ' परमा मुखिया इन लोगों पर भी नाराज हुआ, 'आप तो भला समझते ही नहीं? वाचादान के बाद यह ब्राह्मण की जाति दरवाजा रोककर दक्षिणा लेगी, न दो तो तुम्हारी फजीहत— '

मुखिया के ये शब्द सुनकर ब्राह्मण ऐसा फीका पड़ गया कि काटो तो लहू न निकले! मानो वह कोई महापाप कर बैठा हो इस तरह जीभ टिटकार उठा, 'च्चक्! च्चक्! च्चक्! यह क्या बोले—मुखिया? न मिले तब भी मैं कहां पसीजे हुआ हूं कि— ' पर इतने में तो उसकी सूरत लाल हो उठी—मानो ब्रह्मतेज झिलमिला उठा, 'परंतु याद रखना,' परमा पटेल से कहा, 'वाला चाचा की सच्ची निष्ठा होती तो—कर्ताहर्ता तो ईश्वर है, दो ही वर्ष में उनकी दशा में सुधार न हो तो मेरे नाम पर जूते ठोकना, जाओ।'

और इसके साथ ही पास में पड़ा झोला उठाते वह खड़ा हो गया। खाट पर सेवा-पूजा की गठरी देख बैठ गया। उसमें से जंत्र निकालकर देते हुए कहा, 'लो, चाचा! धूप देखकर बच्चे को बांध देना' और उस पूजा की गठरी को ठीक से बांधे बिना झोले में डालते ही झोले को कंधे पर लेकर खड़ा हो गया और चल दिया।

गांववालों ने कुपित ब्राह्मण को मनाने की बहुत कोशिश की। वाला तो गद्‌गद् हो गया। खुद परमा भी बीच में खड़ा रहा, पर ब्राह्मण न माना सो न माना। आंगन छोड़ते कहता गया, 'अब तो जब वाला चाचा की दशा पलट जाए तभी मैं इस आंगन में और इस गांव में पैर रखूंगा,...और पलट जाएगी, इस गरीब ब्राह्मण का वचन है, याद रखना...' और सभी अवाक होकर जाते हुए ब्राह्मण की ओर ताकते रह गए।

ब्राह्मण अदृश्य हुआ कि वाला ने आंसू भरी आंखें अपने छोटे भाई की ओर घुमाकर कहा, 'मैंने तेरा कौन-सा गुनाह किया था भाई कि इस ब्राह्मण को मेरे आंगन से भूखा निकाल दिया?'

'यह सब तो तू करवाता है, तू डोकरे!' भतीजा रणछोड़ उलटकर चीख उठा।

परमा सफाई देने लगा, 'चिंता होती है सो कहे बिना रहा नहीं जाता और आप सब उसे बना देते हैं औंधा।'

सामने से एक स्त्री की आवाज़ आई, 'औंधा ही समझें न!' सभी का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। परमा मुखिया की पत्नी क्रुद्ध होकर पति पर व्यंग्य कस रही थी, 'तुम्हारे तीन बेटे हैं। इसलिए भाई का निर्वंशिया खाना था, फिर उलटा क्यों न समझें? ये निगोड़े इतना भी नहीं सोचते कि जो पेट में समाए वे हांड़ी में क्यों नहीं समाएंगे?'

गांववालों को लगा कि अब यहां खड़े रहने में मजा नहीं है, एक-एक कर सभी चले गए। बूढ़ा वाला उन्हें समझाता ही रह गया, 'अरे भाई! वह ब्राह्मण भी भूखा गया और आप लोग भी गुड़ लिए बिना चले जा रहे हैं? मेरे घर का कंकरी भर गुड़ तो लेते जाओ।'

दो-तीन आदमियों ने जवाब दिया, 'बहुत दिन हैं अभी गुड़ खाने को। अफीम खाया उसी में सब कुछ आ गया।...कालिया चंगा रहेगा तो हमारे मन गुड़ ही गुड़ है...।'

और इस आखिरी वाक्य को सुनकर तो परमा की औरत आग-बबूला हो उठी, 'ए मारिए, ताने मारिए! कालिया! नाम तो देखो, नाम! काले मुंह वाला पैदा हुआ है कि— ' वाला की ओर हाथ करते कहा, 'याद रखना, डोकरे! नाम रखते ही ब्राह्मण भूखा उठ गया और ये तेरे चहेते भी गुड़ लिए बिना ही चले गए, सो देखना— ' यकायक भभूके से ज्वाला निकली, 'घोड़ी पर तो बैठेगा वहां...आसमान में, पर आंगन में एक गधा भी बांधा जा सके तो याद करना! बाप रे...बाप!'

गुस्सा सहन न हो पाने से वाला की पत्नी घर से बाहर आ गई, 'बोल, बोल तो सही! पर याद रखना कि सती शाप देती नहीं और कर्कशा का— '

बूढ़ा वाला कांप उठा, 'इसको कर्कशा कहा कि गजब— ' और पत्नी के मुंह पर हाथ रखते हुए विवश स्वर में कहा, 'मत बोल! मत बोल! भगवान ने खुशी से दिया होगा तो उसका कुछ नहीं बिगड़ सकेगा। जा, तू घर में चली जा। रार से बढ़कर दुनिया में कोई शाप नहीं।'

पत्नी गुस्से के घूंट निगलती होंठ पीसती हुई लौट गई।

जबकि परमा की औरत शब्दकोश में न हों ऐसी गालियां और शास्त्र में न हों ऐसे शाप बरसाती रही।

वाला की आत्मा कलप उठी। मन ही मन भगवान से विनती करता रहा, 'तुम से

कुछ भी छिपा नहीं, मेरे नाथ! मुझे तो लड़ना भी नहीं आता— और लड़ूं भी क्यों? मेरी रक्षा के लिए तो हजार हाथों वाला तू बैठा है।'

और घर में जाकर पहला काम किया, उस जंत्र को धूप देकर कालू के हाथ पर बांधने का।

परमा की औरत माली तो अभी तक शोर कर रही थी, पर अब तो वाला अपार संतोषी हो गया था, 'बिना मांगे ही ब्राह्मण ने कह दिया— शाप और मंतर तो अब झख मारेंगे!'

4

धागे

आषाढ़ी तीज की रात थी, आसमान डोलने लगा था। ढलती रात में आंधी ने धरती पर घमासान मचा दिया था। मुरगा बोलते ही धरती और आकाश एक हो गए थे। अलस्सुब मेह गर्जना करता डूंगरों की उत्तरी कतार में चला गया! हवा, बवंडर और बिजलियां भी उस लश्कर के साथ जाते जाते गायब हो गईं। लोगों ने देखा कि एक रात में—पिछली दो-चार घड़ियों में ही, धरती ने मानो करवट ले ली है। कल तक वहां पैर भी नहीं रखा जाता था, सांस भी छूट जाए ऐसी भाप निकल रही थी; जबकि आज यह ऐसी ठंडी, सुखद और मनोरम हो गई है कि लेटकर सो जाने को मन हो, जगह-जगह पर डबरे छलकने लगे, मेंढक भांति-भांति के सुर अलापने लगे। झंखाड़-सी दिखनेवाली वह वनराजि, इस एक ही रात में जलाप्लावित हो गई, आंखों को तृप्त करने वाला हरा रंग धारण कर मंद-मंद मुस्कराने लगी। पंछी भी वर्षा के साथ ही आसमान के किसी कोने से टोलियां बना-बनाकर उतर आए हों खेलने के लिए, वर्षा की बधाई गाने को...इस तरह एक ही रात में धरती की काया पलट गई थी।

पर अकेली धरती ही क्यों? भयंकर उग्र होकर बहता पवन भी आज तो शीतल हवा झल रहा था। मुक्त हाथ से धरती की सुगंध को बिखेर रहा था, कोंपलों को हंसा रहा था, शाखाओं को झुला रहा था। जबकि नदी-तट की सघन वनराजि में और दूर के डूंगरों में आंखमिचौनी का खेल चल रहा था।

और वह सूरज! कल तक आकाश की भट्ठी में जलती ज्वालाएं धधकता आग का गोला था, परंतु आज तो वह भी गुलाल उड़ाता हंस रहा था। पानी से छलकते डबरों में अपना मुंह देखते बालकों के साथ वह भी उनमें झांक लेता था। बालक उसे पत्थर मार-मारकर भगाते, फिर भी वह झांकता दिखाई देता था और बालकों के साथ बालक बनकर खेल रहा था।

सारी रात खाली खूंटे से बंधे ढोर भी घर से बाहर निकलते ही आज की यह सारी लीला देखकर मानो सब-कुछ पा चुके थे। वे मुंह नीचा भी नहीं करते थे और उन्हें आज नदी-नाले में जाकर घास की जड़ें कुरेदने की उतावली नहीं थी। वे टहलते-

टहलते चल रहे थे।

मगर आज इन ढोरों के साथ बैल नहीं थे। हों कैसे? उनकी तो आज बड़ी जरूरत थी। उन्हें आंगन में बांधकर सानी के टोकरे उनके मुंह के सामने रख दिए गए थे। सानी खतम होते ही घर की टांड में आषाढ़ी सुबह के लिए हिफाजत से रखा चारा लादा गया, कहीं-कहीं तो इतने बड़े पुआल के ढेर बनाए गए कि बैल भी ढंक जाएं। कुछ बैलों के गले में घुंघरू बंधे थे। हल जोतने के लिए घर की मालकिनों ने कसार के अदहन रख दिए थे, बूढ़े वाला जैसे गरीब आदमी के घर भी पाव-भर घी लाया गया था। जिन घरों में काम करने वाले थे, वहां नहाने के लिए गरम पानी आंगन के अलाव पर रखा गया था। तीन सौ साठ दिन जिसके घर झगड़े चलते रहते, उस परमा मुखिया के घर भी आज तो शांति थी। इतना ही नहीं, जनम लेने के बाद जो कभी हंसी नहीं, उस माली-सी औरत के चेहरे पर भी आज खुशी की मुस्कान थी। हर समय बोले जाते, 'मरे, आग लगे, जल जाएं' आदि शब्दों को भी आज के आषाढ़ी दिन उनके निवास-स्थान होंठों से निर्वासन मिल गया था। चिड़चिड़े मिजाज वाली औरतें भी आज ऐसे स्नेह से परोस रही थीं जैसे परदेश कमाई के लिए जाते पुत्र को माता भोजन करवा रही हो। वाला की पड़ोसन मंछा चाची बैलों के कंधे हल चढ़ाते मालजी चाचा को सिखावन दे रही थी, 'याद रखना, कुछ भी बोलना मत, गणेश का नाम लेते-लेते सीधे पीपल वाले खेत में जाना। बीज का टोकरा, तंबाकू और सब-कुछ मैं ले आऊंगी।'

बैलों की गरदन पर पुराने घुंघरू बांधने वाले ने हंसते हुए कहा, 'हां, नहीं तो आज आषाढ़ी दिन कोई बकवास न कर बैठे।'

'अरे! मैं पागल थोड़े ही हूं, वाला?' बूढ़े ने बैल हांकते कहा।

'पागल तो नहीं, पर भोले जरूर हो, बड़े भाई!'

'नहीं, यह तो आप लोगों ने मुझे...' पर अकड़ के साथ खड़ी मंछा चाची ने, इस डर से उन्हें रोका कि वह कुछ बोल न बैठें, 'हां-हां, भगवान का नाम लेते-लेते सीधे जाइए।'

'भगवान का नाम तो रात-दिन लेते ही हैं!' कहते मुहल्ले में चले जाते बूढ़े ने जो कहना नहीं चाहिए था वही कहा— और वह भी ऊंची आवाज में; 'ए...आगी लाना मत भूलना।'

'आग' शब्द सुनते ही सारा मुहल्ला कहकहा लगाकर हंस पड़ा। खुद मंछा चाची भी बिना हंसे रह न पाई, 'मरो...तुम! इतना पढ़ाया फिर भी— '

'इसमें कोई हर्ज नहीं, भाभी! अग्नि तो देवों का भी देव है!' वाला ने कहा, और 'जय गणपति तोंदीले!' कहते हुए बैलों के कंधों पर हल चढ़ाकर जोते बांधकर वह भी किसी युवक की तरह धरती माता की गोद रौंदने चल निकला।

कुछ देर को गांव के चौराहे, घुंघरू और घंटियों की मीठी झनकार से गूंज उठे, जो खेत कल तक खाली थे और शायद ही कोई पशु या मनुष्य जहां दिखाई देता

था— आज किसानी हलचल से भर गए। कोई बीज का टोकरा लिए आता था तो कोई टोकरा उतारकर लौटता था। वह बच्चों के लिए तो आनंद-उल्लास का दिन था— वे तंबाकू, हुक्का, पानी का लोटा या आग, सारी चीजें खुशी-खुशी ला-ले जा रहे थे।

और सारे वयस्क भी यही अनुभव कर रहे थे। नहीं तो कल तक नहरुआ के दर्द के कारण खाट पर बैठा रहने वाला, पानी पीने के लिए भी नीचे पैर न रखने वाला भला आज हल हांकने के लिए कैसे तैयार हो जाता? मुखिया के रणछोड़ का बुखार भी मानो गर्मियों की धूप के साथ भाग गया था, केवल बूढ़े वाला ने ही आज अपने बुढ़ापे को एक ओर नहीं किया। गांव के सारे पुरुष तैयार थे। अंधा बूढ़ा लालजी भी लाठी के सहारे-सहारे खेत के किनारे जा बैठा था— मानो घर की छांह से उन बादलों की छाया अधिक शीतल लगती हो। मानो घर के छप्पर से आकाश का छप्पर अधिक सुखदाई हो गया हो! ...

हरेक किसान की फिलहाल एक ही धुन थी, 'यह खेत जोतकर उस खेत में पहुंच जाऊं। अगर इन दो दिनों में बारिश न हो तो मकई की खेती अच्छी होगी, बाद में ये बड़ी क्यारियां भर जाएं तो धान भी...'

परंतु वाला के मन में तो वही बात थी। 'कालिए की कहीं मंगनी हो जाए तो गंगा नहाए...छोरा रह गया तो फिर रह जाएगा। इन दो सालों में मंगनी हो गई तो ठीक, नहीं तो फिर कोई भी उसकी ओर नहीं देखेगा।' बूढ़े ने जोर से सांस ली, 'हे भगवान! और सब तो ठीक, पर भाई के घर के ताने सहन नहीं होते।'

बूढ़े का दुख सच्चा था। मंगनी की बात तो दूर रही, अगर कहीं मंगनी के बारे में पुछवाते भी तो जाने कैसे बात फैल जाती और देवरानी चट ताना मारती, 'ऐसे बड़े असामी हैं तो फिर बेटे की मंगनी की बात क्यों हर जगह टल जाती है?'

'तेरे हो जाए सो बहुत, नाहक क्यों— '

पर वाला अपनी बात पूरी करे इसके पहले तो माली छाती ठोककर कह देती, 'हां, हां, मेरे तो पालने में से ही पसंद हो जाते हैं, पालने में से। और यों ही पसंद नहीं हो जाते। पाहुनों के पीछे बारह मास में दो-दो चारपाइयां टूटती हैं और— '

बूढ़े को संताप होता— अपने लिए नहीं, भाई के घरवालों के अभिमान पर और कहता, 'बड़ाई मत कर, मत कर! क्यों इतना फूलती हो? हमारा धन तो पुछल्ला कहलाता है। पूंछ घुमाता जाए और पूंछ घुमाता आए। और मैंने तो अपनी नज़र से देखा है, इसलिए— '

बूढ़े के ये वचन भी उलटा ही असर करते। परमा खीज उठता, 'तुम ऐसे खुश होते हो तो ऐसे ही सही' और परमा का बड़ा पुत्र रणछोड़ तो मारने के लिए भी आगे बढ़ आता। उसके पीछे पिल्ले-सा सात-आठ साल का नानिया भी बढ़ आता। पर बूढ़े के भय से रणछोड़ दूर ही खड़ा रह जाता, सुनाता रहता, 'सोच-सोच! तू हमारा बुरा सोचता रह। पर याद रखना, अगर मेरे घर के ढोर या आदमी का एक बाल भी बांका

हुआ तो फिर देखना मजा!'

ऐसे झगड़े तो कई बार होते—एक सप्ताह भी खाली चला जाए तो अहो भाग्य! बूढ़े को तो अनेक बार वह संस्कृत श्लोक आपबीती जैसा लगता जिसे उसने सुना नहीं था कि 'जंगल में पड़े रहना बेहतर है, पर इन भाइयों के साथ— '

जवानी की उम्र होती तो वाला शायद सामान बांध लेता। भाई का सारा परिवार मानो खा जाने को बैठा हो। झगड़े से वह यहां तक डरता कि कई बार उलटा ही चाहने लगता, 'कालिये की मंगनी न हुई तो न सही, इससे ही परमा के घर वाले अगर खुश रहते हैं तो...' बूढ़े को ऐसे झगड़ों से किसी अनिष्ट का डर हमेशा लगा रहता। बार-बार कहता, 'हंसिये की चोट से तो बच भी सकता है, पर दांतों की चोट से तो बचना मुश्किल है।'

गांव वाले भी परमा मुखिया के घर से ऐसे ही डरते थे। सलाह देने पर रार ठन जाती, फिर पक्ष लेने की तो बात ही कहां! और इसीलिए कालू की मंगनी से संबंधित किसी भी तरह की सिफारिश करने में गांव वाले और सगे-संबंधी सभी ठिठक जाते।

मर्द निकली एक फूली-मां। 'ये मुखिया के घरवाले ऐसा समझते हैं कि कालिए की मंगनी करने की किसी में हिम्मत नहीं है, पर...।'

पर फूली-मां भी करे क्या? इस इलाके में बिना मंगनी की एक भी लड़की नहीं थी। और हो भी कैसे? सूतक में ही मंगनी हो जाती। फूली-मां 'आशा-भरी' गर्भवती स्त्रियों को ध्यान में रख शांत रही। उन्होंने वाला से भी बात न की, अपने बेटे शंकर से भी मन की बात न कही।

ठीक दो मास के बाद सावन की बौछार में गांव के दूर के रिश्तेदार की औरत ने एक कन्या को जन्म दिया। खुद फूली-मां के हाथों सूतक हुआ और वृद्धा ने धर्म के काम में ढील न हो इसलिए उसी क्षण भतीजे की बहू से बात पूछ बैठी। पूछा क्या, आज्ञा ही दी, 'इस लड़की की मंगनी वाला के कालू के साथ हो गई है, यही तुझे समझना है।' लड़की की मां को कालू की तंदुरुस्ती और रूप से भी वाला का स्वभाव अधिक पसंद था, जबकि कालू की मां तो उसकी सखी-सी ही थी। दूसरी ओर अच्छा हो या न हो, पर फूली-मां ने कह दिया तो बस! इसीलिए उसने जवाब दिया, 'मेरी ना नहीं है, चाची! अगर आपका भतीजा मान जाए।'

'वह क्या कहेगा?' फूली-मां में हिम्मत जगी। मौका मिलते ही उन्होंने भतीजे से बात की और उसे भी मना लिया। पर वह भी बोला, 'लड़की की मां मानती हो तो मुझे हर्ज नहीं, पर उसके ननिहाल वालों के बारे में सोचा है?'

'ननिहाल वालों से पूछना तो चाहिए।' रिवाज के अनुसार फूली-मां ना कैसे कहतीं! वे कुछ निराश हुईं, क्योंकि लड़की की ननिहाल परमा मुखिया के रणछोड़ की ससुराल भी थी।

'कोई फिक्र नहीं। ये लोग परमा मुखिया के समधी हैं तो मेरा भी तो थोड़ा-सा

रिश्ता है।'

फूली-मां से किसी ने पूछा होता रिश्ता कैसे, तो अद्‌भुत मेल बिठाती कि वह मेरी सौतेली मां के मामा की मौसी की बेटी की बेटी ही मेरे भतीजे की बहू की मां है। वैसे वह नामगांव के साथ ऐसा मेल बिठाती कि जैसे मूल से लेकर पत्तों तक पेड़ का सारा ही संबंध जोड़कर दिखा रही हों। इनकी याददाश्त भी गजब थी। गांव की ही नहीं, आसपास के आठ-दस गांवों की और वह भी सात-सात पीढ़ियों की वंशावली भाट की जबान से भी अच्छे ढंग से कह सुनातीं; कौन कहां से आकर बसा और कौन-सी जमीन किससे किसके हाथ गई, यह सब भी। कई बार हिस्से बांटते वक्त होने वाले झगड़े में या किसी की सगाई के समय इधर-उधर का संबंध बीच में आ जाता तब, जब तक फूली-मां के मुंह से कोई शब्द न निकले तब तक सारा का सारा काम धरा रह जाता।

ऐसे कई झगड़ों का समाधान उन्होंने किया था। पिछले दस साल से तो जाति के दूसरे झगड़ों में भी फूली-मां हिस्सा लेतीं और इन एक-दो साल से तो उनके सलाह-मशविरे के सिवा शायद ही किसी लड़के-लड़की की मंगनी होती।

कालू की सगाई का काम तो खुद इन्होंने अपने सर ही ले लिया था। उन्हें भरोसा था कि लड़की के ननिहाल वाले भी इनकार नहीं करेंगे और इसीलिए खुलेआम कहतीं, 'माली को मुझे इतना ही दिखाना है कि वाला भाई का भी गांव में है कोई। कालिए की सगाई करवा दूं तभी मेरा नाम फूली।'

और हुआ भी ऐसा ही। लड़की के ननिहाल वालों ने कोई आनाकानी नहीं की, बल्कि खुशी से कहा, 'आप जैसे लोग जब पूछने आएं फिर चाहे वह किसी शूद्र का ही नाम क्यों न हो...।'

'यह नहीं, आपके घर से एक आदमी मेरे साथ आए और दामाद के घर हमारे साथ कसार खा जाए तभी मैं मानूं।' वृद्धा जानती थी कि सगाई के मामले में जब तक इससे संबंधित सभी एक बार मिल नहीं लेंगे तब तक चार साल में भी बात ठिकाने नहीं आएगी। और जब सप्ताह के अंदर ही वहां आ जाने का उनसे वचन ले लिया तभी मेहमानदारी के लिए तसले में परोसे गए कसार को छुआ।

सप्ताह के पंद्रह दिन हो गए। खुद फूली-मां का भतीजा सुबह की शाम और शाम की सुबह दिखाता रहा। परमा मुखिया की पुत्रवधू चार-छह दिन तक मायका ससुराल करती रही।

पर बुढ़िया ने जो मन में ठाना था वही करवाया। मंगनी का दिन तय हुआ और वाला के नाम संदेश भेजा गया, 'कल सोमवार के दिन गला की बेटी की सगाई लेकर आ रहे हैं।'

बुड्ढा वाला तो पागल-सा हो गया। मानो भगवान पधारने वाले हों! तिल बोना भी छोड़ दिया। आठ-दस घर घूम आया और सेर की जगह दो सेर घी इकट्ठा किया। गेहूं

लाकर पत्नी को खुद ही पीसना तैयार करके दिया। सवागुने दाम देकर बनिए से पांच सेर गुड़ ले आया। इसके अलावा सगाई लेकर आने वाली पाहुनी-स्त्रियों के रात के पड़ाव के लिए दो-चार गुदड़ियां भी मांग लाया।

पत्नी के उल्लास का तो पूछना ही क्या! और उल्लास क्यों न हो? लोगों के आंगन-आंगन में भटकते, पैर के तलवे घिस जाने के बाद कहीं लड़के को कोई देखने वाला मिलता, जब कि गांव के अच्छे सुखी-संपन्न माने जाते घरों में से एक घर अपनी खुशी से सगाई लेकर आ रहा था। खुद परमा पटेल के तीन लड़कों में से एक की ही सगाई सामने से आई थी।

इसीलिए तो परमा पटेल के घर का सारा वातावरण झुंझला रहा था।

वह थी सोमवार की सुबह। बड़े लड़के रणछोड़ की बहू एक साल की लड़की को पीट रही थी, तो रणछोड़ पत्नी को गालियां दे रहा था। जब कि माली तो खुद पति को, परमा मुखिया को ही सुना रही थी, 'मर जा, मर जा, मुए नामर्द! यहां से चलकर कहीं साधुओं में जा मिल। कहां गया वह निगोड़ा रणछोड़वा? मुआ ऐसा नातवां मेरे पेट से कैसे पैदा हुआ? भगा दे अपनी औरत को उसके मायके। उन मायके वालों ने ही इस घर को डुबोया है। बार रे, बाप! ऐसे हितेच्छु समधी के सिवा अपनी भानजी को मेरी छाती पर कौन पटकता?'

इसके बाद सास-बहू के बीच आग सुलगी, रणछोड़ और मां के बीच चिनगारियां उड़ीं और माली का पक्ष लेते खुद बाप-बेटे भी लड़ पड़े। मंझला— पंद्रह बरस का नाथा— बैल लेकर खेत में हल ज़ोतने चल पड़ा, 'फोड़ो सब मिलाकर खोपड़ियां।' जबकि आठ साल का नानिया खंभे के आगे खड़ा खड़ा रो रहा था— ढोल-ताशे पर जैसे शहनाई का सुर मिला रहा हो।

सगाई लेकर आई हुई इन चार स्त्रियों में अगर फूली-मां न होतीं तो माली वाला के दरवाजे की चौखट पर जरूर सिर फोड़ लेतीं और लहूलुहान होकर कहतीं, 'हमसे पूछा नहीं, कहा नहीं और तुम सब सगाई लेकर आई हो सो बिना आग हमें जलाने को न!' और ऐसी-वैसी बहुत-सी धमकियां देतीं।

पर करे क्या? फूली-मां तो ऐसी सत्रहों मालियों को अपने आंचल के छोर में बांधकर घूमती थीं। वह तो राह ही देख रही थीं, 'आए तो सही मेरे सामने।'

'आए तो क्या करेंगी, फूली-मां?' घर के बीच सुंघनी लिए बैठीं इन पांच-सात स्त्रियों से एक युवती बोली।

जवाब में फूली-मां जो बोलीं वैसा कोई पुरुष भी पुरुषों के बीच बोलने से पहले हिचक जाए।

पर ये स्त्रियां तो फूली-मां के बाहुबल से भी अधिक कोई बात उनमें मानती थीं। इसीलिए तो सब एक ही बात सोच रही थीं, 'माली अगर आए तो वाला के आंगन में खंभा होकर चिपक जाए या जलकर राख का ढेर हो जाए!'

केवल ये स्त्रियां ही नहीं, आसपास के इलाके में सभी स्त्री-पुरुष फूली-मां को डाकिन मानते थे। फूली-मां के कानों तक भी यह बात आई थी और बात शुरू करने वाले उन चार-पांच जनों की उन्होंने खबर ले ली थी, 'डाकिन हूं तो कर साबित या मेरी बदनामी का जवाब दे, हरामी!'

डाकिन कागज़ पर थोड़े ही काम करती होगी कि कागजात लाकर या उस डाकिन के 'वीर' को पकड़कर कोई कुछ साबित कर सके?...

पंच को न्याय करना पड़ा— उन लोगों को दंड देने पर ही उनका छुटकारा हुआ। साथ-साथ फूली-मां की बड़ाई भी लोगों को कबूल करनी पड़ी : जो पैसे मिले, फूली-मां ने खुद नहीं लिए, बल्कि कड़ाही से बड़े-बड़े बर्तन खरीदवाकर पंचों के सुपुर्द कर दिए थे।

यदि कोई फूली-मां को खुश देखकर पूछतीं, 'ए फूली-मां! आपको लोग डाकिन क्यों कहते है?' तो फूली-मां हंसकर जवाब देतीं, 'कौन जाने, बहन? जो हो, इतना सही है कि सभी 'डाकिन-डाकिन' कहते हैं लेकिन हर अच्छे-बुरे अवसर पर न्यौता ज़रूर देते हैं। क्या करें, मटके के मुंह पर तो छन्ना बांधा जा सकता है, पर कुएं का मुंह कैसे बांधने जाएं?...और मेरे क्या नहीं है? शंकर-सा आज्ञाकारी बेटा है और बेटे के घर भी बेटी है। मैं डाकिन होती तो अपनी संतानों को ही न खा जाती? बोलने दो बोलने वालों को। लेकिन, बिरादरी में बड़े बादशाह का बेटा भी आ जाए तो भी मैं उसके दबाए नहीं दबने की। कुछ तो इसीलिए निगोड़ों ने मुझे जबरन डाकिन बना डाला है कि उनका मन ऐसा होगा। पर निगोड़े इतना नहीं समझते कि औरतें तो राज्य चलाती हैं। यह वे गोरे आए हैं न— कहते हैं कि उनमें कौन-सी रानी?' याद करते हुए, 'कोई है तो सही— हां, विक्टोरिया रानी राज्य करती है। उसमें अक्ल होगी तभी न? पर यह बात तो हमारे लोग समझते ही नहीं— ' और बात समाप्त करते कहतीं, 'छोड़िए उनको, कहेगा वह, उसका मुंह बरसाएगा। नहीं तो, जो दुरुस्त है उसका कोई क्या करने वाला है।'

फूली-मां की बात सही थी। अलबत्ता, लोगों में चर्चा तो अनेक प्रकार की चल रही थी। कोई कहता कि 'एक आदमी ने काली-चौदहवीं की रात को बुढ़िया को नदी की ओर जाते देखा था;' तो कोई कहता, 'अरे देखने वाले ने घड़िया पर बैठकर साधना करते भी देखा है।' पर किसने देखा था, यह बात किसी ने तय नहीं की थी। इसके अलावा किसी के घर सगाई की बात चलती तथा इनकार हो जाता, और दुर्भाग्य से उनका कोई बच्चा बीमार पड़ जाता तो तुरंत ही लोग कहने लगते, 'देखा न? मना किया तो यह लड़की बीमार हो गई!' भूत-प्रेत के पेशे पर लोगों ने तो फूली-मां का नाम चलतापुर्जा ही कर रखा था कि न मानने वालों को भी मानना पड़े। एक बार तो एक ओझा से लंबी चोटी पकड़कर कबूल भी करवाया था, 'ना रे भाई! मैं तो गप्प मार रहा हूं...' और गिड़गिड़ाने लगा, 'क्या करूं, भाई! पापी पेट पालने के लिए ये सारे ढोंग

करने पड़ते हैं!'

पर सच पूछो तो इस प्रसंग के बाद लोगों ने फूली-मां को पक्की डाकिन ही मान लिया था, 'ओझा जैसे वीर बुलाकर मंत्र जपते कि तुरंत ही फूली-मां दीवार से प्रकट हो जातीं।' कोई कहता अपने-आप अरगल खिसक गया और किवाड़ ने मार्ग दे दिया।

पर डाकिन के रूप में बदनाम होने के बावजूद लोगों को केवल एक फूली-मां ही प्यारी थी। उनके सामने बहूरानियां दुखड़ा रोने जातीं, तो सास बहू को सिखावन देने के लिए कहतीं। यहां तक की पुरुष भी, बिरादरी की, व्यवहार की बनिए के कर्ज संबंधी फैसले की बात करने फूली मां को ले जाते।

प्रसूति के काम में तो वह डॉक्टर मानी जाती थी। पच्चीस-पच्चीस कोस से कई बार बुलावे आए थे। इसके अलावा किसी की 'कंकाई' तोड़नी हो या 'गला' करवाना हो, 'छमाई' बिठानी हो या 'कोयली' मसलवानी हो—बच्चों के बहुत-से रोगों के इलाज वह जानती थीं। मगर हाय रे दुनिया! लागों ने इन स्पष्ट अंगरोगों के बारे में भी अपने तर्क तैयार कर रखे थे, 'वह तो शरीर मसलती रहे और हाथ-पैर खींचती रहे सो वह दिखाने के लिए है—असल में बच्चा तो मंतर के जोर से ही ठीक हो जाता है।'

ऐसे डर और मान्यता के कारण ही माली वाला के आंगन में पैर नहीं रख पाती। पैर रखना तो और बात, आनेवाली स्त्रियों के नाम तक नहीं ले रही थी। वाला को गाली वह भी देती 'हम रिश्तेदारों को जिन्हें सारा गांव पूछता है, तू भाई होकर भी नहीं पूछता?' फिर भी वाला की पत्नी मेहमानों को भोजन करवाने से पहले देवरानी को बुलाने गई, पर माली यह कहकर कि 'उनको खिला जो तेरे हों' गांव में चली गई। वाला और उसकी पत्नी को बहुत दुख हुआ।

फूली-मां परमा के घर की जलन देखकर उलटे खुश हो रही थी। बल्कि वही उनका सबसे बड़ा आनंद था, इतनी सारी मेहनत का वही एक मुआवजा था।

रात को देर से भोजन करने के बाद वाला के उस छोटे और स्वच्छ दालान में बैठे-बैठे सब बातें कर रहे थे, उसी समय फूली-मां ने कहा, 'इस परमा मुखिया और माली को जलाने के लिए ही मैंने यह रिश्ता खींच-तान कर बिठाया है।'

आंगन के एकपलिए के खंभे के पीछे खड़ी माली ने यह सुनकर दांत पीसे। बड़बड़ाई, 'हां रांड़, हां! तू तो जन्म के पहले से ही मेरी जड़ में बैठी है। वह मैं जानती हूं। जलेंगे तो मेरे भूतभाई! तू तो उन्हें जला जो तेरे हों।'

'ऐसा कैसे कहा जा सकता है, फूली भाभी! आपको मेरे घर की चिंता तो तब से है जब से ससुराल आई हैं। झूठ कैसे बोलूं?' वाला ने कहा।

'सो तो ठीक है, वाला भाई! पर आप मेरा स्वभाव जानते हैं?' बुड्ढे की ओर उंगली ऊंची की, 'सच बताना, आपका कालिया करीब डेढ़ साल का हो गया, एक बार भी आपने उसकी मंगनी की बात मुझसे की?'

'ना, झूठ कैसे कहूं? नहीं की।'

'तो फिर बस। अब आप ही कहें—मेरा बेटा कुंआरा है?'

एक महिला ने मज़ाक में कहा, 'है ही फूली मां! शंकर भाई का भगा कुंआरा ही है।'

फूली मां इस क्षण गंभीर थीं, 'ना, ना, लड़की के मां-बाप खुद कहें, अपने सर लेने की क्या जरूरत?'

'हमारे लिए इतना प्रेम!' कालू की मां बोली।

'ना, रूपी! प्रेम नहीं, भाव भी नहीं, कुछ भी नहीं। मुझसे इस माली के ताने सुने नहीं जाते थे। और परमा भी ऐसा समझता था कि वाला भाई गिड़गिड़ाता आए तो— '

'और मैं सिर कटवा लेता, लेकिन उससे यह कहने नहीं जाता कि तू मेरे कालिए की कहीं मंगनी करवा दे।' बूढ़े ने कहा।

'मैं यह जानती थी, और इसीलिए तो—यह दिखाने को ही तो मैं यह रिश्ता खींच लाई कि लोग देखे कि वाला भाई का भी कोई अपना है।'

'यह खींच लाने जैसा ही था।' उस महिला ने हां में हां मिलाई।

पर वाला का ध्यान कहीं और था। वे भगवान का रहस्य खोजने में लीन थे, 'ओ मेरे राम! ओ मेरे भगवान! कैसी है तेरी लीला! लाख किसी का बुरा चाहे, तू उसका भला कर ही देता है— ' बूढ़े की अंतरात्मा प्रसन्न हो उठी, 'हे नाथ! हे भगवान! कहां के धागे कहां जाकर मिलाता है, मेरे नाथ!'

और इसके बाद तो बूढ़ा वाला भगवान की लीला के और गुजरी आपत्तियों के धागे गूंथने में—जिंदगी के राज समझने में डूब गया...फूली मां की बात का समर्थन करता वह भी बेध्यानी से बोला, 'सच है!...हां-हां...'

5

माली का प्रेत

सावन की वह चांदनी रात एक क्षण को चमचमाती थी तो दूसरे ही क्षण अंधेरा ओढ़कर सरकने लगती थी। झींगुरों की ताल-सुर युक्त आवाज से रात का मौसम अनुकूल था।

बच्चों का रोना रुक गया। अड़ार में बंधे ढोरों को घास डाली गई। पुरुष लोग भी मकई के मचान पर सोने चले गए। सारा दिन निराई का काम करते और घास-चारा लाते थकी हुई स्त्रियां भी सो गई थीं।

लेकिन कहीं-कहीं चक्कियां चल रही थीं। एक-दो जगह से दही मथने की घम्-घम् आवाजें भी आ रही थीं। इसके सिवाय सारा गांव सुनसान था। कभी सियारों की रुलाई की आवाज आ जाती तो कुत्ते गांव में शोर मचा देते परंतु वह भी क्षण-दो क्षण को ही होता।

शहर में पहरा देने वाले चौकीदार की तरह बीच-बीच में उन खेतों से रखवाली की आवाज आती रहती थी, 'हो...ओ...ई!'

पर आधी रात बीती कि चक्की और छाछ, सियार और रखवाली— सभी पर रात का जादू छा गया। दालान में सोते परमा मुखिया के हुक्के ने भी दीवार को टेक लिया और सोने लगा।

न सोई तो केवल फूली-मां और वे पांच-सात स्त्रियां। माली भी आंगन में खंभे की ओट में तभी से खड़ी थी। इतनी देर तक तो वह अपने सारे जीवन में भी कभी खड़ी नहीं रही होगी!

मगर इसका उसे खयाल थोड़े ही था। उसका जी तो फूली मां की बातों में ही उलझा हुआ था। यह तो आश्चर्य की बात है कि इतनी देर से वह चुप रह पाई।

इतने में ही कालू की मां बोली, 'और इसमें मेरे कालिए की सगाई लेकर आज आप आईं! कल सुबह देखना, उसका मुंह जल-भुनकर कबाब— '

और माली छिपे रहने का भी खयाल भूल गई। उस खंभे से मानो प्रेत प्रकट हुआ, 'ऐ रांड़! क्यों मेरी जड़ उखाड़ने बैठी है? किसी और के पेट का लड़का ले आई है और अब— '

बूढ़े वाला की पत्नी ने अपनापन छोड़ दिया। 'किसी के पेट का' सुनते ही न जाने कहां से गुस्सा उबल पड़ा। गोद के सामने खेलते बच्चे को धकेलकर खड़ी हो गई, 'आज तुझे जिंदा छोड़ूं तो तू ही मेरी मां बनो!' कहती हुई वह रणचंडी की तरह माली की ओर बढ़ी।

माली के मन में बहुत दिनों की डाह थी। उसे बुढ़िया को पीटने का आज मौका मिल ही गया, वह 'आ जा तू भी' कहती दो कदम आगे बढ़ी।

मगर बुढ़िया के कोप को आज वह पहचान नहीं पाई थी। बुढ़िया के आगे बढ़ते ही वह पागल की तरह जुट गई। वह दोनों ओर से माली के कान और बाल पकड़कर भैंस की तरह उसके मुंह पर धपाधप सर पटकने लगी।

'ओ मां रे...मर गई रे...!' माली चीख उठी।

दालान से परमा पटेल और पिछले कमरे से रणछोड़ दौड़ आए। वाला, फूली-मां वगैरह तो कालू की मां के साथ ही खड़े हो गए थे।

अच्छा था कि फूली-मां आगे थीं, नहीं तो परमा और उससे बढ़कर रणछोड़ तो कालू की मां का काम ही खतम कर देते। और इन बाप-बेटे का काम तमाम करता बूढ़ा वाला। गांव में कहावत प्रसिद्ध थी, बिगड़ा वाला किसी का भी नहीं।

पर इतने में तो सिंहनी-सी फूली-मां गुर्राई, 'खबरदार, निगोड़े, औरत जात को किसी ने छुआ भी तो!' और अपनी सारी ताकत का उपयोग करके जीभ चलाकर बुढ़िया ने दोनों को अलग कर दिया।

नाक से लहू टपकाती, रोती-कराहती और गालियां देती माली अपने घर की ओर रवाना हो गई। कालू की मां तो कांपती हुई चेतावनी दे रही थी, 'और सब कहना, पर अगर मेरी जात पर किसी ने लांछन लगाया तो— गरदन पर बैठकर लहू पी जाऊंगी, हां...'

डर के मारे या और किसी कारण से भी माली ओलती के नीचे बैठकर मुंह धोती गई और घर वालों को गालियां सुनाती गई, 'मैं तो कहती हूं कि तुम तीनों बेटे फट पड़ना और निगोड़े लकड़बग्घे, तू तो खाट से उठना ही मत...बाप रे बाप! घर में दो-दो मूंछ वाले थे लेकिन वे देखते ही रहे?' वह हाथ का लोटा छोड़कर उंगलियां तोड़ती दांत पीसती हुई बोली, 'सत्यानाश हो तुम्हारा, जड़ से ही उखड़ जाए सब!'

पिछले कमरे में सोई हुई रणछोड़ की पत्नी मन में खुश होती रही। नाथा की पत्नी भी जाने की बात सोचती-सोचती चारपाई में ही दुबकी रही। रणछोड़ भी फूली-मां के भय से या वह तो 'लंबी जीभ वाली मां ही लगती है' इस खयाल से सो गया। परमा मुखिया भी दोनों पक्षों के नाम दो-दो गालियां बोलता शांत हो गया। जबकि वाला के घर तो जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। एक फूली-मां खाट में पड़ी-पड़ी कालू की मां से कह रही थी, 'हा-अ-हा! मुझे खुशी हुई। वह तो भाई लाठी को ही मानेगी। टेढ़े के साथ टेढ़ा ही होना पड़ेगा। आज से वह रांड़ अगर तेरा नाम तक ले तो मेरे नाम पर

जूती ठोकना।'

'कुछ नहीं, चाची! दो दिन के बाद सब वही का वही। कमीनों के नाक थोड़े ही होती है? और मेरे भी आज भाग फूटे कि मैंने...'

बाहर दालान में पड़े बूढ़े वाला को भी पछतावा हो रहा था, 'इस कालिए की मां को आज ही यह क्या सूझा? मूर्खा ही कही जा सकती है न! उस कहावत में कहा है न कि रानी को सताकर थाने में पहुंचो और गोली को सताकर कोने में बैठो। माली से तो दूर रहना ही बेहतर है...।' और वह बार-बार यही सोचते रहे, 'कभी कुछ नहीं होता और आज ही उसे क्या हो गया? नाहक झगड़ा किया! झगड़ा हो, यह अच्छा नहीं है। जो बोलेगा उसका मुंह गंधाएगा। मैं कह-कह के थक गया, पर किसे पता था कि आज...'

थोड़ी देर बाद तो उनकी आंखें भी झपक गईं। सारी टोली शांत थी। सिर्फ माली गालियां देती-देती थककर बिलखने लगी थी, 'मां-बाप! तुम्हारी जड़ कटे...मायके में नहीं, भाई...घर के भी सारे लोग दुश्मन हो बैठे; मां-बाप! मैं किसका सहारा ढूंढूं? किसके पास जाकर मैं अपनी बेचैनी तोड़ूं...'

ढलती रात भी बीत रही थी, पर कालू की मां को नींद नहीं आ रही थी। एक लंबी सांस लेकर उसने बगल की खाट पर सोती फूली-मां को पुकारा, 'फूली-मां! जागती है क्या, फूली-मां?' उसकी इच्छा तो यहां तक थी कि फूली-मां को झकझोरकर जगा दे। पर हिम्मत न बंध पाई। सोचा, 'जागती हों तब भी मेरी जाए बला, कौन जाता है उस रांड़ को चुप करवाने!' ऐसा ही कहतीं, जबकि यह तो गहरी नींद में हैं! उसने एक निःश्वास छोड़कर करवट ले ली, 'जिएगी तब तक वह न तो खुद सुखी रहेगी और न किसी और को सुखी होने देगी।'

ठीक उसी क्षण मंछा चाची को बोलते सुना, 'अब तो चुप रह, माली! तुझे तो नींद नहीं आती होगी, पर दूसरों को तो दो पहर जरा झपकी लेने दे।'

माली मानो कुछ सुन ही नहीं रही थी, 'मां-बाप, मुझे अकेली बेसहारा छोड़कर— '

'क्या नहीं है तेरे? कैसे है अकेली, बेसहारा? शेर-से तीन बेटे हैं— '

'मां-बाप, पति और बेटों के होते हुए भी सुख न मिला! ...'

'सो कैसे मिले? दूध के उफान-सा जी है तेरा! वैसे देखें तो सारे गांव में किसी को ऐसा सुख नहीं जैसा तुम्हें है और यों देखें तो सारे गांव से ज्यादा दुख तेरे घर वालों को ही है। चलते-फिरते घुड़की और लड़ाई! दिन उगे बिना रहे तो तेरे घर में कलह हुए बिना रहे। फिर ऐसा दुख दुनिया में कहां ढूंढने जाएं?'

'चाची! मेरे घर में सात बाप की प्रजा भारी पड़ी है, मैं करूं भी क्या?...'

'क्यों, करना क्या? तू भी तो बूढ़ी हो चली, जरा जीभ को संभाल कर रख।...'

और इसके बाद मंछा चाची ने बड़ी सिखावन दी, 'तुझसे वाला सौ-गुना सुखी है। वह बूढ़ा जो कहता है कि 'धन से बदन राजी होगा, धन से पेट पाला जा सकता है,

पर जी को तो चैन चाहिए।'—इसमें तिल-भर भी गलत नहीं है, तू ही बता, तुम सब पेट पालते हो, इसी तरह वह भी पेट पालता है। कपड़ों पर तो दो थिगलियां उसके ही ज्यादा होंगी। इतना ही नहीं, सारे दिन बूढ़े-बुढ़िया कैसे मेल से रहते हैं! कभी लड़ाई या गाली तो क्या, एक-दूसरे को 'तू' कहते भी सुना है?...बस तब, भड़ास निकालना छोड़ो और जरा इज्जत से रहो। चल अब, घर में जाकर सो जा।' और माली को अंदर पहुंचाकर मंछा चाची अपने घर गईं।

पर खाट में पड़ी माली को तो मंछा चाची की सिखावन और बातों ने शांति देने के बजाय ज्यादा दुखी ही किया, 'ये निगोड़े लोग भी—इस बूढ़े को घर में खाने को भी नहीं और हमसे ज्यादा सुखी कहते हैं...तब ये बुड्ढे-बुढ़िया दोनों मिलकर साथ में जल क्यों नहीं जाते? सुखी...सुखी कैसे? कल पांच पाहुने आए तो पांच घर भटकने पर घी मिला और— '

इसके भीतर से कोई बोला, 'फिर भी वह तुझसे ज्यादा सुखी है!'

माली फिर बड़बड़ाई, 'सुखी? उनका सिर! फूलड़ी डाकिन ने सत्रहों सिफारिशें की होंगी तभी तो बेटे की मंगनी हुई और— '

फिर अंदर से विरोध उठा, 'झूठ मत बोल। रात को तूने ही फूली-मां के मुंह से सुना है, वह तुझ पर ही बिगड़ी हुई थीं। तू ही फूली नहीं समाती थी और हर किसी को ताने सुनाती थी तो ले! खा अब! ऐसी ससुराल तो मेरे तीन बेटों में से किसी को भी नहीं मिली, और वह भी सामने से सगाई लेकर। तेरे एक बेटे की सगाई सामने से आई थी—वह भी सच पूछो तो दुनिया की नजर से। बाकी, तू कहां नहीं जानती? तेरा घरवाला छिपकर तीन चक्कर खा आया था तभी! और यहां तो बूढ़े ने किसी से सिफारिश भी नहीं करवाई...कीमत तो इसी की है!...'

माली की चिढ़ बढ़ गई, 'तब मरेंगे ये निगोड़े। सुखी होंगे तो भी मुझे कहां उनके घर मातमपुरसी करने जाना है?' और ऊबकर उसने करवट ले ली।

लेकिन कोई अब भी उसे सता रहा था, 'जो कुआं खोदे सो गिरे...देख तो सही! तेरे जी को जरा भी चैन है? बाकी, बाहर से तो अपनी धुन में गधा भी मस्त है—इसके घर में दियासलाई लगाकर चलती बनूंगी, हां!—वह रोती आवाज से बोल उठी।

पास की खाट में जगती हुई नाथा की बहू कहे बिना रह न पाई, 'अब तो जरा सोने दीजिए! प्रेत आ गया है क्या देह में?'

'तेरी मां का— ' माली ने जीभ को पकड़ लिया, 'चुप पड़ी रह तू भी। तू हो जा सुखी, मुझे नहीं होना। ले देख, मैं तो यह चली बाहर।'

परंतु बाहर निकलने पर परमा को गहरी नींद सोते देखकर माली की अकुलाहट और बढ़ गई। गुस्सा तो ऐसा बढ़ गया कि परमा की छाती पर चढ़कर दांतों से उसे काट ले, 'हां तो, क्यों न सोए? दुख तो सिर्फ मेरे ही हैं, बुरी तो दुनिया में एक मैं ही हूं...'

क्रोध सहन नहीं हो पा रहा था, सो माली ओलती के पास वाले खंभे के सामने बैठ गई...कुछ भी न सूझने पर खंभे पर धडिंब्-धडिंब् सर कूटने लगी, 'हाय हाय रे! बहू मुझसे कहती है कि चली जा रांड़...'

परमा मुखिया और रणछोड़ जग पड़े जबकि नाथा की बहू तो गूंगी ही हो गई...बाहर आते ही बोल पड़ी, 'हाय रे! लोग क्या कहेंगे?'

'लोग कहेंगे कि—वह खुद सुखी रहने वाली नहीं!'—कहते हुए परमा पटेल झुंझलाकर पूछने लगे, 'तुझे क्या हुआ है सो तो बता मुझे? इस आधी रात के वक्त किस बात के लिए जाग लगाती है? साला प्रेत चढ़ गया हो तो वह भी ऐसा तो नहीं करता!...

उजाला होता तो माली की उन वहशी आंखों को देख सभी को कहना पड़ता कि सचमुच ही प्रेत-बाधा आ गई है। कोई इलाज भी करवाते। पर एक तो अंधेरा था और दूसरे माली ने आज शाम से ही लड़ाई शुरू की थी। इसलिए तो घरवालों ने यह सोचकर कि 'ईर्ष्या अंधी हो गई है' उसे खास महत्व नहीं दिया।

रणछोड़ उसे खींचकर घर में ले गया। 'तू सो जा मां, सिर ढककर सो ही जा तू!' और उसने माली को गुदड़ी में गाड़ दिया।

माली बाहर से तो शांत हो गई; लेकिन अंदर से नींद की गुदड़ी ओढ़ लेने पर भी प्रेत उसे नोच रहे थे : 'बा...प, बाप! मंगनी तो करवाई है, पर उस कलमुंहे को ब्याहने दूं तब मुझे 'धत् कुतिया' कहना, जा!'

6

साधु की लंगोटी

बेटे की मंगनी हो जाने पर बुड्ढे वाला के बदन में और ताकत आ गई। बैल मुरदार थे, अगर परमा मुखिया के जवान बैल उसके पास होते तो देखते मजा! एक हल से दो हल की पैदावार ले लेता।

सच पूछें तो बेटे की सगाई के साथ ही चिंताओं का अंबार लग गया। घर में दो ही चारपाइयां थीं। कोई रिश्तेदार आए तो हर बार कहां मांगने जाए? गुदड़ियां सिलवानी पड़ेंगी, लेकिन कैसे? धोतियों और साड़ियों से सालभर में चार खोल तैयार हो सकती हैं, पर वह भी तब जब आधे घिसने पर ही उन्हें एक ओर रख दिया जाए! वाला के पास आधे घिसे तो क्या, थिगली चले तब तक पहनने वाले कपड़े थे। इसके अलावा घर का छप्पर भी गिरने की तैयारी कर रहा था। और दुधार गाय के बिना भी कैसे चल सकता है? बेटे का ससुराल-पक्ष लंबा-चौड़ा था; कोई-न-कोई आएगा ही। फिर भी घर में दो-चार गाएं हों तो निबाह हो सकता है। पर हालत यह कि बेटे की ससुराल में बीस-बीस भैंसें झूलती हैं और यहां एक भी नहीं। बिना भैंस पटेल का आंगन कैसा दिखे!...और इन सब झंझटों से भी बड़ा झंझट था बैलों का। दोनों बैल बूढ़े होने को थे...। इस तरह वह गिनने बैठे तो चिंताओं की कोई सीमा नहीं थी।

एक बार जाड़े के दिनों में बूढ़े के खेत में होला खाते सात-आठ आदमी बैठे थे, जिनमें खास थे कालू का ससुर गलो, फूली-मां का शंकर तथा वेचात। बात पर बात निकलते बूढ़े की चिंताओं की बात निकली और बूढ़ा कहे बिना रह न पाया, 'मुझे तो ऐसा लगता है कि भगवान ने मनुष्य को इस माया की पूंछ गजब पकड़ा दी है...देखो न, कालिए का जन्म हुआ तब तक हमें कोई चिंता नहीं थी। बहनें थीं वे अपनी-अपनी ससुराल चली गईं। फिर चिंता थी हमें हम दोनों के महज पेट पालने की। इतने में भगवान ने हमारे बुढ़ापे की ओर निगाह की और बेटे की यह माया लगाई। अब गिनो, एक पर एक कितने झंझट बढ़ गए हैं?' फिर हंसकर सुंदर दाढ़ी हाथ की हथेली से कान की ओर चढ़ाते हुए वह बोला, 'यह तो उस साधु की लंगोटी जैसा किस्सा हो गया है!— '

'तो उस साधु की लंगोटी का किस्सा हमें सुनाइए, वाला चाचा!' बूढ़े को मजे में

देखकर शंकर ने कहा।

फिर तो कासम के साथ और सभी ने आग्रह किया, 'कहिए, कहिए वाला चाचा, लंगोटी की कहानी तो आज सुनाइए ही!'

सर्दियों के दिन और सुबह का वक्त। अपनी इच्छा से बनाए गए मचान पर एक ओर खाट थी। खाट के नीचे तलवार पड़ी थी। दूसरी ओर पुआल की साथरी थी। साथरी पर एक कमठा और दसेक तीर का तरकश पड़ा था। बीच में अलाव तेज जल रहा था। खाट पर कालू का ससुर गलो होला तैयार करने—गूंथकर एक की हुई ऊमियों को घिसने के लिए आधी खाट खाली रखकर पायताने की ओर रखी गुड्डी पर बैठा था। तीन साल का कालू और इसी उम्र का उसका साला—गला का बेटा कोदर, मचान के सामने खेल रहे थे। शंकर और एक दूसरा युवक—दोनों ऊमियों के 'मोरले' गूंथ रहे थे। दोनों सामने पड़ी फसल से दो-दो तीन-तीन ऊमियां मिलाकर गूंथने वालों को देते जा रहे थे। वेचात सेंकता था जबकि वाला हुक्का भरने की जिम्मेदारी संभाल रहा था।

'कहिए तो वालाजी, लंगोटी वाली कहानी तो मुझे भी सुननी है।' गला ने समधी से आग्रह किया।

'सुनी तो होगी सभी ने, पर आपकी इच्छा हुई है तो कहता हूं। लीजिए, हुक्का पीजिए।'

'जरा नमक-मिर्च मिलाकर, वाला चाचा!' वेचात ने जिसकी मसें भीगी नहीं थीं, सिर पर से साफा उतारते हुए कहा। उसने गरदन पर हाथ फेरा जैसे किसी काम के लिए तैयार हो रहा हो।

और बूढ़े वाला ने गला साफ करके हुंकारा देने का काम शंकर के सिर छोड़कर कहानी शुरू की :

'नीलकंठ महादेव सरीखे एक मंदिर में'...बूढ़ा हंस पड़ा—'भूला, भूला—मैं या मुझ जैसा एक साधु रहता था। साधु ने कहा कि उसके पास दो लंगोटियों के सिवा कुछ नहीं है, बारी-बारी से एक को पहने और दूसरी को धोए। यही सब कुछ उसके पास था।

संजोग से एक दिन सुबह नहाने के समय उसने देखा कि रोज की जगह पर लंगोटी नहीं है। साधु उलझन में फंस गया। महादेव भी अपने जैसा। हां, रामजी की या किसन की मूर्ति होती तो आखिर उनके कपड़ों से एक धज्जी फाड़ लेता। पर जैसे साधु महाराज, वैसे ही महादेव...खैर भाई, साधुजी तो बस्ती से चुटकी मांगने के साथ लंगोटी भी मांग लाए और उसे सुखाने की जगह बदल दी।

फिर सुबह हुई और देखते क्या हैं कि लंगोटी नहीं मिल रही! साधुजी सोच में पड़ गए—ससुर का बच्चा यह कौन चोरी करता है?

तो भाई, साधुजी फिर से एक लंगोटी मांग लाए। पर इस बार तो उन्होंने रतजगा

ही शुरू कर दिया— देखूं तो सही, ससुर का बच्चा, कौन चोरी कर जाता है? और वह लट्ठ लेकर धूनी पर जागते ही रहे। नजर सामने वाली अलगनी पर लटकती लंगोटी पर ही थी।

जगते-जगते आधी रात बीती। साधु ने दो-तीन चिलम भर जो गांजा था वह भी फूंक डाला। फिर भी चोर का पता नहीं चला— लंगोटी अब भी लटक रही थी...। रात को तो भाई, नींद ही खतम कर सकती है! साधु की आंखों से गांजे का नशा उतरने लगा और नींद का नशा छाने लगा। फिर भी यह थी जोगीहठ। झंपती आंखों को भी चेतावनी दे दी— ससुरी, बंद हो गई तो लुआटा ही ठूंस दूंगा।

ठीक उसी समय बाहर रखी लकड़ियां जरा-सी खड़कीं। रंग में आ गए बूढ़े ने खाट के नीचे से लाठी खींची— लट्ठ लेकर साधुजी खड़े हो गए। दरवाजे में छिपकर लट्ठ तानकर खड़े रहे, अभी चोर घुसे...अभी फटकारूं।... ऐसी लगाऊं कि साले चोर की खोपड़ी ही तोड़ डालूं। मन में यह ठानकर साधुजी ने सांस भी ऊंची कर ली।

पर भाई, अभी आए...अभी आए, पर आए तब न? साधु को लगा— जरूर साला चेत गया। ठीक है, ससुरा फिर आएगा। आज उसकी खबर तो जरूर लूंगा।

यह सोचकर साधुजी फिर से धूनी पर आकर बैठ गए। सुरती भरकर चिलम का कश खींचने ही वाले थे कि भौंचक हो गए! अलगनी पर टंगी लंगोटी गायब! सर्र्र् करते साधु को शंका हुई— खुद नीलकंठ तो कहीं चोरी नहीं करते!

बात सुनने वालों में से दो-चार जने होला तैयार करना छोड़कर फटी आंखों से वाला की ओर ताकने लगे। एक जन तो बोल उठा, 'महादेव ने साधु की परीक्षा ली होगी!'

शंकर कासम के साथ बुड्ढा हंस पड़ा। कहा, 'महादेव ने तो नहीं...। हां, तीसरे रतजगे पर साधु को मालूम हुआ कि यह तो लंबे कान वाले महादेव थे!'

अब भी दो-तीन जने समझ न पाए।

'चूहा मामा, भाई!' गला ने बात स्पष्ट किया। और इसके साथ ही वे सभी हंसने लगे, 'ओ-त्तेरे के चूहे मारूं! हमने तो सोचा कि सचमुच महादेव ने साधु को देखने के लिए...' और बात समाप्त हो गई, ऐसा सोचकर कहा, 'तो यह है लंगोटी की कहानी है, वाला चाचा!'

'अरे अभी तो लंबी है! आगे ही तो असली मजा है!'

'हां, फिर वाला चाचा?' शंकर ने समर्थन देते हुए कहा, 'साधुजी देखते हैं कि वह तो चूहा मामा है।'

'और वह भी एक-दो नहीं, पांच-सात का झुंड। साधु भी कितनों को मारे! लंगोटी को भी कहां जाकर छिपाए?...वे सोच में पड़ गए। लंगोटी भी बार-बार कौन दे और साधु को भी मांगने में लज्जा आने लगी...

'आखिर गलाजी जैसे किसी व्यक्ति ने उपाय दिखाया : ऐसा कीजिए महाराज, घर

में बिल्ली ब्याई है, महीना ही हुआ है। ले आइए एक बच्चा।

'साधु महाराज खुश हो गए...और जब उस बच्चे ने रखवाली की तो साधुजी उस बच्चे पर फिदा-फिदा! उसे खेलाने लगे— तू तो मेरा अच्छा काम करता है, बेटे! मेरे रतजगे दूर किए हैं तूने!

'और इस तरह साधुजी की एक बड़ी फिक्र टल गई। इतना ही कि बिल्ली के लिए अब एक घर ज्यादा घूमना पड़ता था!'

गला ने होले का सूप दिखाते हुए कहा, 'लीजिए, होलक का फंक्का भरते जाइए?'

शंकर बोल पड़ा, 'ये होलक खाएंगे या कहानी कहेंगे?' और हंसकर कहा, 'चुटकी-चुटकी ज्यादा मिले, इसीलिए तो मैंने कहानी शुरू करवाई है...'

पर बूढ़ा वाला ऐसा था कि शंकर जैसे दस को जेब में रखे। कहा, 'तुझे मालूम नहीं है तब! तुझसे मैंने चार दशक ज्यादा पानी पिया है जग का, हां! तूने समझा कि चुटकी होला ज्यादा मिले पर मैंने सोचा कि मेरे मुंह में दांत नहीं हैं और तुम सबको होला खाते देखकर मुंह में पानी आएगा, इसीलिए चलो— '

'हूं...!' वेचात के साथ दो-चार जने शंकर को सामने देखकर खुश हो उठे। सिर हिलाते किसी ने कहा, 'ऐसी बात है!' किसी ने यह भी कह दिया, 'कहते हैं न कि वाला चाचा भोले हैं!'

'हां, साधुजी बिल्ली पर खुश हो गए, फिर...?' शंकर ने बात को आगे बढ़ाने के लिए कहा।

'और खुश हुए इसलिए कि माया लगी, पर भाई, बिल्ली को तो— अभी वह बच्चा था— मां चाहिए; यह साधु किस काम का! और सारा दिन बेचारा म्याऊं-म्याऊं किया करता और महादेव के छोटे मंदिर के पीछे भटकता रहता।

साधु फिर से सोच में पड़ गया : म्याऊं-म्याऊं करते साला मर जाएगा। फिर ये चूहे मेरा जी खाएंगे...फिर करना क्या चाहिए? साला दुबला भी हो गया है!

साधुजी जहां जाते उस बिल्ली की बात किया करते और हर किसी से पूछते रहते— साला, उसका करना क्या चाहिए?

और तुम्हारे-मेरे जैसे किसी ने उपाय जताया— साधु महाराज, एक गाय रखिए। दूध के बिना तो बेचारा बच्चा मर जाएगा।

और भाई, गाय देने वाला भी एक हरि का लाल मिल गया। गाय भी एक तो ब्राह्मण को दान में दे दी और बाद में हरहाई हो गई थी, इसीलिए— तब ब्राह्मण और साधु सभी एक-से ही न? — यह सोचकर साधु को दे दी...लीजिए महाराज! आज वार भी अच्छा है, ले जाइए...'

'मेरा बेटा, साधु ने तो बला बढ़ा ली, भाई!' बेचात बिना कहे रह न पाया।

'अभी बढ़ी कहां है? अब...' पर खयाल आते ही शंकर ने हां-में-हां मिलाना ही

उचित समझा, 'हां, गाय लेकर साधु महाराज ने मंदिर की राह पकड़ी...'

बूढ़े ने सर के छिदरे बालों पर हाथ फेरा। वैसे आगे के भाग में तो बहुत कम बाल थे पर पीछे की ओर— गरदन पर लंबे बालों का झुंड था। चोटी एक हाथ लंबी थी, बल्कि वेणी ही थी। उस चोटी को चौड़े कंधे से होकर छाती के आगे ले आते हुए बोला, 'फिर तो भाई, साधुजी का काम बढ़ गया। गाय के लिए सारी सिवान घासचारे से भरी पड़ी थी, पर रात में खूंटे पर भी घास डालना पड़ता न! साधु ने लुहार के घर से एक टेढ़ी-मेढ़ी हंसिया मांग ली। किसी के घर से फांस मांग ली, तो किसी से फांसे से दामनी बना देने के लिए सिफारिश की। गाय के लिए सानी भी सिवान से 'पुंवाड़िये' काटकर इकट्ठा करने लगे...

'और इस तरह दो मास में बाबाजी की नाक में दम आ गया। बिल्ली बाई तो दूध पीकर हट्टी-कट्टी हो गई और बाबाजी से दुलार करने लगी, पर बाबाजी की पसलियां दीखने लगीं। सोच में पड़ गए— ससुरा इस झंझट का अब क्या करना? अगर गाय को भगा दें तो दूध बिना बिल्ली मर जाए और, बिल्ली मर जाए तो फिर से रतजगे सर पर आ पड़ते हैं!

'बाबाजी तो पूरे फंस गए, भाई!'— कासम बोला।

बुड्ढे ने जोर से सांस लेकर कहा, 'सोच-सोच में साधु ने कुछ दिन काट दिए। इतने में फिर तुम्हारे-मेरे जैसा कोई सिवान में हल की लकड़ी काटने गया होगा तो मंदिर में तंबाकू पीने जा पहुंचा। बाबाजी गोबर बुहारते-बुहारते उसके सामने अपना दुख गाने लगे— सारा दिन इसी झंझट में पूरा हो जाता है! मुझसे तो महादेवजी की सेवा भी ठीक ढंग से नहीं हो पाती; फिर भजन-भाव की तो बात ही कहां रह पाई, बच्चे!...

वह बोल उठा— तो ऐसा कीजिए महाराज, उन टीलों पर भील लोगों के झोंपड़े हैं, उनमें से किसी को काम पर बुला लीजिए न! वह घासचारे का एक बोझ सुबह लेता आएगा और गोबर बुहारता जाएगा। दे देना एक रोटी कि निबट जाएगा!

खुशी के मारे बाबाजी की दाढ़ी-मूंछ एक-एक इंच बढ़ गई— अरे रोटी तो एक की दो दे दूं, पर ऐसा कोई मिलता है? गाय-बिल्ली को दो रोटियां देनी ही पड़ती हैं, तो साथ-साथ दो और सही।

और फिर बाबाजी कहावत के अनुसार बोले— महाराज जय सीताराम तो...

वेचात के साथ दो-तीन और भी बोल पड़े— बच्चे, तेरे ही घर बसेरा!

'वैसा ही कर बैठे। उसी के पीछे लगे,' अब तो बच्चे, आज तू आया है तो मेरा इतना काम करके ही जा। किसी-न-किसी को ठहरा ही दे। ला तेरी कुल्हाड़ी, तू मेरा काम कर और मैं तेरा काम करूं।

पर भाई! होगा वह गलाजी-सा भला आदमी, सो बोला— मैं अपना और आपका दोनों काम एक साथ कर आता हूं। उसी ओर जा रहा हूं। —और वह खड़ा हो गया।

तू भोजन मेरे ही साथ करना, बच्चे! —महाराज ने उसे न्यौता दिया।

पर गलाजी को जातिभ्रष्ट थोड़े ही होना था? किसे पता, साधु किस जाति का हो? और उसके पास भी संबल तो था ही— मेरे पास तो यह तोशा बंधा है— कहता हुआ वह भला आदमी कंधे पर कुल्हाड़ी उठा, उन झोंपड़ों की तरफ चलता बना।

पर साधु के मन में धीरज नहीं था, वह कहता रहा— ऐ बच्चे, महादेव तेरा भला करेंगे, दो की तीन रोटियां दूंगा, मगर जरूर...'

'कोई चेलकी ले आना!' शंकर ने जोड़ा।

'मेरा बेटा; साधु ने तो किया घोटाला!' वेचात बोल उठा।

'और हुआ भी घोटाले जैसा ही भाई,' हंसी बिखेरते वाला ने कहा, 'वह आदमी एक औरत को ही पकड़ लाया। एक बच्चा कमर पर, दो उंगलियां पकड़े हुए।

उसने सिर पर से दो मन भारी लकड़ी नीचे डालते हुए कहा— लीजिए महाराज, एक गरीब बाई को ले आया हूं। इसका पति इन तीन बच्चों को छोड़कर कुछ दिन पहले मर गया है। गरीब है बेचारी! दो रोटी देना, और यह बुहारना, पानी भरना, घास-चारा लाना— ये सब काम कर जाएगी।

इसके बाद तो उसने उस बाई को भी कहा— महाराज को दुख न पहुंचे और महाराज भी तेरे भूखे बच्चों को देखते नहीं रहेंगे...। — फिर वह भी उठ खड़ा हुआ— अब आप दोनों का काम है खुद ही तय कर लेना, मैं चलू— और वह तो भाई, चिलम खाली करता, लकड़ी सिर पर लेकर चलता बना; बाबाजी और उस बाई को अकेला छोड़कर।

'ओ...हो!' वेचात ताली बजाता ऊंचा हो गया।

'साधु तो पूरा फंसा, भाई!' दूसरा बोल उठा।

वे दो-चार जने तो पेट पकड़कर हंसते ही रहे, 'मेरे बेटे ने पूरा घोटाला किया यह तो!'

'ऐसा ही हुआ, भाई!' वाला ने बात आगे बढ़ाई, 'उस वीराने में आग और उपला साथ मिले, फिर क्या बचे?

तुर्रा यह कि चौमासा था। सूखे पेड़ों में भी कोंपलें फूटें, जबकि यह तो...बूढ़े वाला ने बात को पलट दिया, 'बेचारी वह चेलकी उन खोह-नालों में कैसे झोंपड़ी से मंदिर तक आती-जाती!'

'चेलकी ने मंदिर में ही पड़ाव डाला!' शंकर ने बात को सीधी राह पर चढ़ा दिया।

जबकि वाला ने समेटना चाहा, 'ठीक दस मास के बाद जति बाबा की आंख 'फट्' से खुल गई...मंदिर के पीछे बंधी मढ़ी से बच्चे की रुलाई सुनकर कान के पर्दे भी खुल गए! — ओ मेरे बाप! मैं कहां इस बला में फंसा? अब कौन मेरा बाप मुझे भीख देगा? अब तो खुद कमाई करनी पड़ेगी! उसके लिए बैल चाहिए, बैल के लिए सानी, दामनी, मोटी, हल, जुआ, जोता, बीज...

और इस तरह सोचते-सोचते साधु का सिर चकरा गया— यह सारी झंझट खड़ी हुई ससुरी इस—

और झट से उसके आठ इंच की चिंदी को खींच निकाला। निकालकर धूनी में डाल दिया और मुट्ठियां बांध, उस घने जंगल की ओर। आना—

'आना जल्दी डूंगर!' सभी एक साथ बोल उठे।

हाथ में हुक्का लेते हुए बूढ़े ने हंसने की कोशिश करते हुए साथ दिया, 'पर हम साधु थोड़े ही हैं, इसीलिए तो शास्त्र में साधु से संसारी को बड़ा माना गया है!'

गलाजी बोले, 'हां, हमारे सामने हर कोई हाथ पसारता आए, पर हमें तो मेघराजा के सिवा— '

पर वेचात आदि का जी तो अभी तक उस कहानी में रमा था। उन लोगों के कानों को तो मंदिर के पीछे वाली इस मढ़ी में नवजात बच्चे की रुलाई अब भी जैसे सुनाई दे रही थी और इसीलिए तो वेचात ने पूछ लिया, 'ए, वाला चाचा, फिर उस बाई का और बच्चे का क्या— '

पर इतने में शंकर खड़ा होते बोल उठा, 'हुआ सब-कुछ, उठ, चल, आना हो तो।'

और इसके साथ ही मचान में से वे सात-आठ कद्दावर काठियां खड़ी हुईं। वे अपने हथियार और कपड़े संभालने लगीं। गला ने बाहर निकलकर बरगद के नीचे खेलते लड़कों को पुकारा जबकि वाला ने सर पर पगड़ी रखते हुए जवाब दिया, 'तुझे मालूम है? साधु तो होगा बनिया-ब्राह्मण— इसके सिवा और जात का होता तो भागता ही नहीं! पर किसान की जात को दुख के दिन बिताना अच्छी तरह आता है! भाई, अगर साधु की तरह वह भी भाग जाए तो धरती का अंत ही आ जाए न?...पर भागे क्यों पगले? साधु के जाते ही उसने समझ लिया कि इस तरह खाट में पड़े रहने से गुजारा नहीं होगा, और वह खड़ी हो गई। कसे हुए कछोटे पर कमर में धोती बांधी और कट्-कट् करती चढ़ गई डूंगर पर— '

बुड्ढे ने मड़ैया से बाहर निकलने पर नदी के उस पार के डूंगरों पर एकटक दृष्टि फेंकी। स्वगत ही उसने कहा, 'तुम सबको दिखे न दिखे सो तो राम जाने, पर मुझे तो स्पष्ट दिखता है; वह बैठी तवा लिए, वह चुन रही गोंद।'

इतने में ही तीन साल के कालू ने आकर बूढ़े का स्वप्न भंग कर दिया। बेटे को उसने फूल की तरह उठा लिया और मजबूत काठी पर— कंधे पर बिठाते हुए, शंकर आदि की ओर देखकर बोले, 'ऐसी है संसार की बात।' आगे कदम उठाते हुए कहा, 'बेचारे साधु की क्या ताकत कि दुख के दिन मेहनत से बिता सके? यह तो भगवान ने भला सिरजा किसान कि...मुझे इतने...अरे, हम सभी को दुख है पर देखना तुम, एक के बाद एक को खुशी से जी लेंगे। क्यों बेटे?' बुड्ढे ने कालू की तरफ देखकर कहा।

और कालू भी 'हुं..! जी लेंगे, हुं...' कहता रहा। उसके स्वर गूंजते रहे।

7

चाचा की गोद में

इसके बाद के दिन कालू को स्वप्न की तरह याद आते हैं। सितारों से झिलमिलाते उस आसमान की ओर एकटक देखते, स्मरणतल में डुबकी लगाकर याद करने लगता है तो जैसे छप्पर खुलने लगता है। सरल स्वभाव का उसका युवा ससुर गला, जंगल की नीलगाय से छोटे और नए बैल लेकर आया है। गाड़ी में कुछ भर-निकाल रहा है। चारेक साल का वह खुद, कोदर और छोटी-सी राजू, रोड़े ला-लाकर घर बनाने का खेल खेलते हैं...

दो शरारती सांडों को छोटी गाड़ी में जोतकर बूढ़ा बाप गांव बाहर के खेतों में ले जाकर साध रहा है। वह और राजू भी पीछे-पीछे जाते हैं... सांड भड़कते हैं; ऊबा हुआ बाप कालू और राजू को गाली देता है, चीखता है, 'छोरे, बाड़े में चला जा, यह अभी मार डालेगा, अभागे, अरे रास्ते से हट जा एक ओर।' और छोटी गाड़ी की खड़खड़ आवाज, भागते सांडों की बजती हुई खुरें और बाप की चीखें— अब भी कालू के मन में गूंज उठती हैं...'कैसे सुहाने दिन थे...और इस गांव का सिवान भी कैसा हराभरा था...'

मुंह में तेल भरकर जैसे कोई तैराक कुएं के तेल तक पहुंचकर तेल फूंके और जैसा उजाला हो जाए, तल में पड़े तांबे-पीतल के घड़े और मिट्टी के बर्तनों के ठीकरे कीचड़ और पत्थर वगैरह ज्यों झिलमिला उठें— वैसे ही कालू की दृष्टि में चार दशक— छप्पन के अकाल के पहले के बीस साल से अब तक का जमाना दिखाई देने लगा— चमकने लगा।

खुद बैठा है इस खेत में— अरे, जहां यह मचान था वहां एक जबरदस्त जाला था। उस ओर जीर्ण बरगद का चौथाई हिस्सा ही बच पाया है। जहां कुआं खोदा है, वहां खोह थी और नदी तीर तो...अब तो सारा बराबर हो गया है पर उस समय, किसमें ताकत थी कि दिन-दहाड़े भी वहां जा सके!...

एक लंबी सांस लेते हुए कालू ने तंबाकू निकालने के लिए बगल में रखा हुआ पांच बटन वाला काला कोट उठाया। न जाने क्यों उसका मन फिर से भूतकाल के गलियारे में ही चला जाता था, 'आज लोगों के कपड़े भी कैसे हैं, उस वक्त तो थे

अहीर जैसे, कमर पर घेरदार और छोटे-छोटे कुर्ते, धोती भी छोटी और उम्र बढ़ी कि सिर पर पगड़ी बांधना शुरू कर देते थे, और आज तो मुझसे बुड्ढे आदमी के पास भी पांच बटन वाला कोट और साफा है।...' हुक्का लेते हुए उसी ओर ताकता रहा, 'अरे इस हुक्के को ही देखिए। नए-नए आ रहे हैं और दिन-ब-दिन कैसा आकार और कैसी खूबसूरती?...पर किस काम की खूबसूरती? पांच बरस में तो फूट जाता है, 'बदरी हुक्के में भी छेद हो जाते हैं। और उस समय के बदरी हुक्के तो इतने भारी थे कि उनसे आजकल के नौजवानों की कलाइयां भी दुखने लगें।...

आज तो आदमी में से ताकत कम हो गई और कपट बढ़ गया। नहीं तो मेरे बाबा और चाचा के बीच कितना बड़ा बैर चलता रहता था, फिर भी...'

और हुक्का पीते-पीते कालू उस करम को देखता रहा, घर के बीच खाट पर बूढ़ा वाला मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। गांव-परगांव के सगे-संबंधियों से वह छोटा-सा दालान और सारा घर भर गया था। सातेक साल का कालू भी भटकना, शरारत करना छोड़कर खाट के पास खंभे से सटकर खड़ा हुआ था।...

क्षण भर पहले जो अवाक् था, वह बूढ़ा वाला कुलबुलाया, आंखें खोलकर इशारे से पानी मांगा, मानो नींद से जगा हो— इस तरह चारों ओर आंखें फेरीं। घूमती नजर कालू पर आई। पल-दो पल वहीं थिर रही। फिर से वह नजर घूमी और इस तरह पूछा जैसे पाताल से आवाज आ रही हो, 'भाई, मेरा छोटा भाई परमा!'

पीछे सिरहाने बैठा परमा खड़ा हो गया, 'ओ भाई!' सामने आकर चारपाई की पाटी पर हाथ टेककर आंखों से आंखें मिलाकर कहा, 'यह रहा, भाई— '

'भाई!' बुड्ढे की आंखों से पानी की धारा छूटी। उसने गला साफ करने की कोशिश की, 'भाई, मेरा यह छोरा! किसके सिपुर्द करूं? इसके ससुर गलाजी तो मुझसे भी पहले चले गए। इसका अब तेरे सिवा और कौन है?'

पिता की गद्गद् आवाज सुनकर नासमझ कालू रो पड़ा। मां ने उसे खाट के पास बुलाकर गोद में ले लिया।

परमा भी जैसे सोच में पड़ गया। भाई को क्या जवाब दे? दिलासा देने की हार्दिक इच्छा जगी पर वह लजा गया, संकोच होने लगा, 'कौन मानेगा?'...ज्यों-ज्यों वह बड़े भाई की ओर देखने लगा त्यों-त्यों उसका दिल ज्यादा अकुलाने लगा। रुलाई भरी आवाज में कहा, 'भाई! तू कहता था कि एक कोख में समाए पर!...इतनी बड़ी धरती पर न समाए। वह बात सही है।' परमा की आंखों पर मानो एक बांस पानी चढ़ गया, जबड़ों के टीलों को लांघता वह धार-धार रोने लगा।

पिता ने कालू को अपने पास बुलाया। उस रोते पुत्र को चुप रखने की, उन आंसुओं को पोंछने की बड़ी तमन्ना थी, पर अपने आंसू ही पोंछे नहीं जा सकते थे, फिर...

उसने गला साफ करते कहा, 'बेटे! अपने इस चाचा को...तू 'चाचा' कहे तभी

मेरा जी सद्‌गति पा सकेगा!'

कालू ने कभी परमा को 'चाचा' कहके नहीं पुकारा था। शायद ही इसकी जरूरत पड़ी हो। और कैसे पड़ती? वह शायद ही परमा के घर जाता। और जाता भी कैसे? माली का फूला हुआ मुंह, वे ईर्ष्या भरी आंखें उसके आंगन में पैर पड़ने ही नहीं देती थीं। रणछोड़ भी इससे चिढ़कर बात करते। हां, वह मंझला नाथा उसे प्रेम से बुलाता, पर घर में उसकी कुछ चलती ही नहीं थी। इस कारण कालू का संबंध चाचा के घर के साथ कुछ भी बंध नहीं पाया। जरूरत पड़ने पर परमा को बुलाना होता तो भी 'आप' कहके निपटा लेता।

'बोल बेटे!...ये तो तेरे चाचा लगते हैं...हम दोनों तो मां-जाए भाई हैं। एक ही कोख में लोटे थे। बोल, 'चाचा' बोल बेटा, तभी...।'

फिर मां ने भी कालू को समझाना शुरू किया...

परमा ने कहा, 'वह नहीं कहेगा तो मेरा चाचा होना थोड़े ही मिट जाएगा?' उसने कालू को गोद में लेने की कोशिश की। इसके बाद फिर भाई को दिलासा देने में लग गया।

कालू मान गया, मानो जबरन चिमटी हुई जीभ को बलपूर्वक उठाता हुआ 'चाचा' कहा, और परमा के पैरों के पास आकर खड़ा हो गया। परमा ने हर्षावेश में उसे उठा लिया और गोद में ले लिया।

इस मंगल दृश्य को देखनेवाला वाला बोल पड़ा, 'चाचा कहा और तूने उसे गोद में...'

और बुड्ढे वाला की कमजोर गरदन एक ओर ढल पड़ी, यद्यपि संतोष की भावना अब भी उसकी सुंदर मूंछ-दाढ़ी पर जगमगा रही थी।

बूढ़े के शव को नीचे उतारने के लिए झुके हुए नाथा तथा अन्य संबंधियों के चित्त में भी आज यह चाचा-भतीजे का मिलन रम रहा था...

यह पसंद न आया हो, जहर-सा लगा हो, तो अपने घर ओलती के नीचे बैठी माली को; यहां जो हाजिर थे उनमें रणछोड़ भी थे जिनका मुंह ज्यादा तमतमाया हुआ था।

चार दिन के बाद चाचा, शंकर तथा फूफे के साथ जाकर बनिए के घर से छोटा कालू पिता का बारवां खरीद लाया और बिरादरी को जाति-भोज के लिए न्यौता दिया। एक ओर पांच सौ आदमियों की बिरादरी भोजन कर रही थी, दूसरी ओर माली परमा की खबर ले रही थी, 'जामिनदार होकर तूने अपने भाई का करट करवाया और कलमुंहे को बगल में लिया तो क्या मेरे तीन बेटों से तू नहीं अघाया तभी न!...'

परमा ने बहुत कुछ कहा, 'मैं जामिन नहीं हुआ हूं, लेखे में मेरा नाम निकले तो तू देखना— '

पर माली उखड़ पड़ी, 'तो तुझे इसके साथ जाना ही क्यों पड़ा? भाई के लिए

कलेजा कबाब हो रहा था इसीलिए न? सीधी टोली में भोजन करने बैठी सारी बिरादरी ने हलवे के कौर रखती-रखती भी दांतोंतले उंगली दबा ली, 'यह कैसी औरत है?' कोई-कोई तो ठिठोली भर कर रहे थे. 'बहू के बाप का बिरसा खाना है तो बहू के मुंह की दो गालियां भी खानी पड़ेंगी, भाई!'

दूसरी ओर परमा मुखिया पर दया खाने वाले भी बहुत थे। साथ-ही-साथ उसे बखानते भी थे, 'घर में काली नागिन है, फिर भी भाई को भूखा न जाने दिया। कहने वाले ने कहा है कि लाठी से पीटे पानी अलग नहीं होता सो गलत नहीं कहा...'

जबकि वाला सरीखे वृद्ध लंबी सांस लेते यह मांगते रहे, 'भाई मिले तो ऐसा ही मिले कि मौत तो सुधर जाए!'

8

धरती के बीज

सात-आठ साल की उम्र का कालू अभी तक धोती पहनना भी नहीं सीखा था, लेकिन उसे बैल चराना सीखना पड़ा। वह माता के दुख और आंसुओं को समझने लगा!

चाचा ने उसे गोद में लिया तो सही, पर वह भी क्या करे? करीब दस साल से हल पर हाथ नहीं रखा था और रखे भी क्यों? लड़के बड़े हो चुके थे, इसके अलावा अधिक काम होने पर एक-दो हल जोतनेवालों को मजदूरी पर बुला लेते थे। इसलिए उस उम्र में बारिश का मजा और उत्तरा-चित्रा नक्षत्रों की धूप सहना मुश्किल था। फिर भी सह लेता थोड़ी-बहुत, पर ऐसा करने पर घर में कलह होता।

घर छोड़ने की नौबत आ जाती।

फिर भी परमा ने रणछोड़ को समझाने की कोशिश की, 'जो भी हो तेरा भाई है, सगे चाचा का बेटा! तू इसकी तकलीफ को नहीं देखेगा तो दूसरा कौन देखेगा? और दुनिया क्या कहेगी? लोग बड़े परिवार की कामना करते हैं तो यह मुश्किल के समय हाथ बंटाने के लिए ही न?'

वैसे रणछोड़ को भी कालू पर कुछ दया आई, पर उसकी घर में कहां चलती थी? बारह मत्थे वाली मां की इच्छा के सिवा कोई पानी न पी सके, फिर कालू को सहारा देने की तो हिम्मत ही कौन करे?

और माली ने तो साफ-साफ सुना दिया, 'अगर उस कलमुंहे को जरा भी सहारा दिया, कुएं में गिरने जा रहा हो तो भी यदि किसी ने उसे रोका तो उस घड़ी से वह मेरा बेटा नहीं और मैं उसकी मां नहीं। और यह सारी साहिबी किसकी है, जानते हो? तुम्हारे भिखारी बाप की तो दो थिगलियों-सी ही जमीन है। वह घर भी खुद मैंने बनवाया है, अपने बाप के पसीने की कमाई से...पहने कपड़े भी उतार लूंगी, हां!'...

अलबत्ता भीतर से तो माली की इच्छा थी ही, विवश होकर पैर छूने आए तभी मदद की जाए। और यह इच्छा अपने सिफारिशी पति से भी कह सुनाई, 'अगर उस कलमुंहे की मां मेरे घर आकर बदले में काम कर जाए, झाड़ने-बुहारने को वह तैयार हो तो...।'

और माली आषाढ़ी मेह की राह देखती, अपने तुंबे-से गालों में हंसी भरती वही

का वही सोचती रही।

'करेगी नहीं तो जाएगी कहां? बुढ़िया है—अवस्था हो गई है, तो फिर अपने घर का काम कैसे कर पाती है...बेटे की कुंडली क्यों बनवाई, आंगन में घोड़ी बांधेगा और बिना चौधराई चौधराई करेगा...ठीक है! इसका बेटा चौधराई तो बाद में करेगा, पर अभी इससे बैल न चरवाऊं तो दुनिया भी फिर क्या जाने मुझे!'

पर माली को मालूम नहीं था कि जगत में किसी का किसी के बिना कुछ पड़ा नहीं रहता।

उसने सबके बाद में देखा कि कालू की खाद खेत में पहुंच गई है और जलावन की लकड़ी भी बाड़े में लाद दी गई है। घर के मामले में तो दस साल तक चैन था। कालू के ससुर ने ही मदद करके जीते जी उसे ठीक-ठाक करवा दिया था। खपरैल को ठीक करने की जरूरत थी जिसे शंकर, मावजी और कासम घांची (तेली) आदि ने ठीक करवा दिया।

'पर यह तो बेकार की ताक-झांक है न?' परमा ने सोचा, भाभी से, कालू की मां से कहूं 'कि वह आकर अपनी देवरानी से मदद मांगे...'पर परमा हिम्मत नहीं कर पाया। पत्नी के स्वभाव को देखते हुए उसे लगा कि 'इससे तो गांव वाले निबाहते रहें यही बेहतर है।' इसके अलावा भाभी का भी संदेश था, 'वह तो बिच्छू का आंकड़ा है।'

फिर भी बुड्ढे ने शंकर के द्वारा कहलवाया और सोचा था वैसा ही जवाब भी मिला, 'मेरे बेटे को जनम बिगड़वाना हो तो मुझे अपनी देवरानी के पास सहारा मांगने के लिए भेजना। तुझे याद है शंकर, तेरे चाचा जो कहते हैं? लुआठे का चरखा बेहतर क्योंकि वह मर जाता है पर ताने के चरखे तो मरने पर ही मिटते हैं! इसलिए इस बात का तो नाम ही मत लेना...'

रूपा के इन शब्दों को बेटे के मुंह से सुनकर फूली-मां भी मृत्यु-शय्या पर पड़ी-पड़ी खुश हो उठीं, 'यह बात है तब! वाला की कुहनियां खाई हैं!' और निःश्वास छोड़ते बड़बड़ाई, 'कालिए का ससुर जिंदा होता तो उसे दुख का खयाल भी आता।'

पर कुदरत के सामने किसी का इलाज नहीं! कालू की ससुराल में भी सब छोटे-छोटे थे। कोदर भी उम्र में कालू-सा ही, सातेक साल का था। तीन कोस की दूरी पर बसता उसका मामा संपन्न आदमी था, इसके अलावा कोदर के घर की स्थिति भी अच्छी थी, सो खेत-मजदूर भी मिल गया था। और कालू के तो ऊपर आसमान और नीचे धरती थी!

आषाढ़ बरसा और किसानों ने एक साथ बैल जोते। घुंघरू खनकाता हर कोई खेतों की ओर चल निकला।

छोटा कालू बैलों को घास-चारा डालकर, क्षण में जुए पर जोतें ठीक करता तो फिर हल पर हाथ फेरता, रस्सी-पैना देख लेता और इस तरह इधर-उधर जाता

अकुलाता रहा। गांव में कोई बच्चा दिखे तभी तो खेत में भी जी लगाए न?

बार-बार मां से पूछता रहा, 'जोतूं मां, हल?...उस दिन मैंने हांका नहीं था? मेरे बापू होते तो अपनी बात का सबूत दिलवाता! है न, मैंने अकेले ही पारसाल दंवरी नहीं जोती थी?'

आंसू बहाने के सिवा मां और क्या जवाब देती? और देती तो भी कालू मानता नहीं। उसने तो एक ही सनक पकड़ी थी, 'मैं कोंछ भरकर बोऊंगा— तू चल खेत में, बीज लेकर। मुझे हल जोत दे। मैं ऐसा हांकूंगा कि बस...'

और यों छोटा-सा किसान तत्पर हो उठा— अकुला उठा...मां पर चिढ़ने लगा।

पर मां जानती थी कि लड़का हल जितना बड़ा भी नहीं है, तब फिर हल सीधा पकड़े रखना, बैलों को सीधे चलाना और बोना— यह सब इन कोमल हाथों से कैसे हो सकता है!

कालू की मां को इस पचास साल की उम्र में कभी इतना दुख नहीं हुआ था। पति की मृत्यु पर अहिवात उतारते हुए जितना दुख हुआ था, उससे भी अनेक गुना दुख इस आषाढ़ी प्रहर में आंगन में बैलों को बंधा हुआ देखकर हो रहा था।

क्यों न हो? घर-घर धमाल था, उल्लास था, उत्साह के फव्वारे छूट रहे थे। कोई बीज लेकर जा रहा था तो कोई हुक्का लेकर। किसी लड़के के हाथ में जलता गोहरा था तो किसी की जेब में तंबाकू थी।...

सामने वाले घर में माली, दालान के छोटे चबूतरे पर बैठकर सुंघनी खींच रही थी और एक के बाद एक सूचनाएं दे रही थी, 'कहां गई नाथिया की बहू? जा, खेत में पानी का दूसरा घड़ा पहुंचा आ। एक घड़े से चार आदमियों का कैसे चलेगा?' फिर रणछोड़ की बहू को हांक लगाई, 'और जीवली, तू क्या करती है? देख तो उस पतीली में कितना कसार है? दोपहर के कलेवे में वह कसार ले जाना और रोटियां घट रही हो तो बना दे। नानिया को तो गेहूं की रोटियां चाहिए!'

यह सुनकर कालू की मां की घर के बाहर मुंह निकालने की भी हिम्मत नहीं हो पाती थी। मन में बड़ी इच्छा थी, 'जोत दूं हल, मैं खुद हांकूंगी।' पर करे क्या? शास्त्र में यह मना है या नहीं यह तो शास्त्री जानें, लेकिन बाकी लोग इसे नहीं समझ पाएंगे, यह कालू की मां जानती थी। धरती की सतह पर किसी औरत ने हल के छोर पर हाथ रखा हो— हल हांका हो, यह अभी तक सुना नहीं था, फिर देखना तो कैसे संभव हो?

पति के वचन पल-पल याद आने लगे, 'दस कोस की दूरी को पहुंचा जा सकता है मगर आषाढ़ी सुबह में एक कोंछ बीज की दूरी कभी नहीं मिट सकती— जिंदगी भर खलती रहती है— '

अलबत्ता, शंकर, कासम घांची वगैरह ने कहा था, 'फिक्र मत करना रूपा चाची, अपने खेत बोकर आपके खेत बो देंगे।' पर इस हिसाब से तो दो-दो मन की— पंद्रह-सोलह कोंछ बीज की दूरी हो जाती थी। आंगन में बंधे बैलों पर नजर पड़ते ही वृद्ध

का वाक्य भी याद आ गया, 'आषाढ़ी सुबह में किसान के आंगन में बैल बंधे देखो तो निश्चित मानो कि उसका भाग्य कहीं चरने गया है—घर में नहीं है।'

और रूपा की आंखों से टपाटप आंसू चू पड़े।

उसने घर के काम में जी लगाने की कोशिश की पर आज घर में मानो कुछ काम ही नहीं था। आटा तो डेढ़ गुना पड़ा था और कूटने के लिए भी पूरे चौमासे के चावल निकाल रखे थे। पानी भी सुबह ही भर लाई थी और कालू को कसार खिला दिया था, स्वयं उसे भूख ही नहीं थी। कुछ सूझ नहीं पाने पर वृद्धा ने घर में बुहारी लगाना शुरू कर दिया। बुहारती-बुहारती दालान में आई और—

न चाहते हुए भी, माली के घर की ओर बैरी आंखें घूम गईं। चार-पांच औरतें टोकरियां लिए माली के पैरों के सामने बैठी थीं। परमा मुखिया को बीज तोलने में लगाया गया था।...

न चाहते हुए भी माली के शब्द कानों से होकर हृदय के आर-पार निकल गए।

माली उन स्त्रियों को, संबोधित तो कर रही थी, पर सुना रही थी जेठानी को, 'ले जाओ, जितने बीज चाहिए ले जाओ। बोओ! बोओगी तो कुछ पैदा होगा, नहीं तो घर बैठे क्या उड़ती धूल पैदा होगी?' फिर कालू के बहके सांड़-से उन बैलों की ओर देखकर कहा, 'आंगन में बैल बंधे रहें तभी न घोड़ी बांधी जा सके?' और 'खी...खी' करती हंस पड़ी। उन स्त्रियों को भी उसका साथ देना पड़ा।

पर जैसे, यह भी कम हो, सीधे रूपा से ही कहा, 'हम तो बाप की कमाई लाई हैं, पर आप तो खुद ही कर्मी हैं, फिर भी आज आषाढ़ी सुबह में हाथ-पर-हाथ धरे बैठी हैं?'

देहरी पार करते रूपा का पैर ऊंचा ही रह गया, भीतर पड़ने के बजाय लौट आया। पीठ भी मुड़ी। उस वृद्ध चेहरे की झुर्रियों से मानो यौवन प्रकट हुआ। गहराई हुई आंखों से आत्मगौरव की चिनगारियां झरीं। बैलों को घास इकट्ठी करके देते बच्चे से कहा, 'जोत बेटा हल। ले, मैं हल बाहर निकाल कर दूं।'

कालू तो मां की ओर ताकता ही रह गया जैसे अब भी विश्वास न हो!

पर इतने में उसने मां को दालान से हल निकालते भी देखा।

और उस छोटे किसान का मन किलकारी मारने को हो आया। उस पल बैलों की ओर मुड़ा, 'उठो-उठो, चलो, अपना हल जोतें...'

मां ने दोनों बैलों को जोतकर रस्सी बेटे को पकड़ा दी। दूसरे हाथ में पैना पकड़ाते हुए कहा, 'हांको अपने बरगद वाले खेत में, मैं बीज लेकर आ रही हूं।'

माली तो बैलों की जोड़ी के पीछे जा रहे कालू को तिरछी आंखों से देखती ही रही। ऊंचे सांड़ पर बंधे हल के पीछे छोटे-छोटे कदम भरता कालू ऐसा लग रहा था, मानो बली राजा के पीछे चला जा रहा वामन ही हो।

पर माली रूपा को बीज की टोकरी लिए खेत में जाती देखकर हंसने लगी। चिढ़

के साथ बोली भी, 'निगोड़े! ये दिवालिए! ऐसा क्यों करते हैं? ये इतने दाने खाने के काम आते, मुफ्त में क्यों बिगाड़ते हैं? बित्तेभर का छोरा क्या बोएगा!...'

और उन स्त्रियों से दशा और अवदशा की बात करने लगी, 'अवदशा हो तब उलटा ही सूझे। देखा न अभी? यह और कोई नहीं करवाता पर अवदशा करवाती है।'

इतने में खेत में घड़ा छोड़कर लौटी नाथा की बहू की बड़बड़ाहट सुनाई दी, 'बहुत अच्छा लगता होगा आप लोगों को— '

बहू के शब्दों में रोष और तिरस्कार सुनकर माली और भड़क गई, 'क्या हुआ?' माली को चिंता थी, बेटे तो आपस-आपस में नहीं लड़ पड़े?

'होगा क्या, आपकी जेठानी ने कोंछ लगाया है— कछोटा लगाकर मक्का बो रही हैं! बहुत अच्छा लगता होगा आप सबको...'

'हाय-हाय रे बाप! यह रांड़ कहती क्या है! कलमुंहे की मां हल हांक रही है?'

'हल हांकने में भी क्या कसर छोड़ी है? कालू भाई तो बित्ते भर का है न? छोर पर हाथ टेककर— ढेलों में वे खुद हल के सहारे चलता है न?'

घर से बाहर बढ़ आते परमा पटेल को देखकर ही शायद माली हंसती-हंसती कहने लगी, 'भाई के खेत में भांड़ कैसा नाच रहा है!...ही...ही...'

परमा पटेल का नखशिख जल उठा, 'तुझ-सी भाग्यशाली देवरानी मिली है सो...' और तुरंत ही खेत की ओर चल पड़ा। झुंझलाहट तो थी ही, 'औरतों की जात से तो भगवान तौबा! घड़ी में क्या कर बैठे, कहा नहीं जा सकता!...नहीं तो फिर इस कालिए की मां जैसी सयानी...? पर वह भी घड़ी भर में सात पीढ़ियों की आबरू पर पानी फेर कर बैठ गई। अरे राम-राम! भीलड़ी की तरह— हम पटेलों की जाति में तो अगर भूल-चूक से हल की छड़ी पर हाथ रख दिया तो तबाही हो जाती है! गजब हो गया...!'

पर इस ओर माली के आनंद की सीमा न थी। बाहर से तो वह भी मानो कुपित कालिका ही थी। कालू की मां ने मानो सात पीढ़ियों की घर गिरस्ती, ढोर-डंगर और खेत-खलिहान— सब-कुछ लुटवा दिया हो, इस तरह हाय मारती रही...कालू की मां को बोलती रही, 'आबरू के नाम सारे कुटंब-कबीले की तबाही कर दी रांड़ ने, लड़के के लिए सिर ऊंचा रखने लायक भी न रहने दिया...।'

पर माली और परमा ही क्यों? लगभग सारा गांव हाथ मल रहा था, 'हाय हाय रे बाप! यह क्या औरत है, भाई!...'

गांव के बाहर खेतों में हल खड़े छोड़कर सभी कालू के खेत की ओर बढ़ गए थे, 'गांव की और सींव की नाक काट दी इसने! निकाल दो इस बुढ़िया को हेंगे के नीचे से— फेर दो ऊपर पटेला— छड़ी पर हाथ रखा है सो एक कन भी अनाज पैदा हो तो करना याद!...अरे अकाल पड़ेगा, अकाल!'...

'शंकर, कासम घांची आदि ने तो कहा कि 'छड़ी पर हाथ रखने की बात तो गलत है, कालिया ही हल हांक रहा है, वह छोरा बित्ते भर का है पर उसे कम मत

समझना।' हल हांकने की बात को उन लोगों ने बीच से ही उड़ा दिया। भीलड़ी की तरह कांछ लगाने की बात भी कम नहीं थी...

कालू यह सारी चर्चा और धमाचौकड़ी देखकर रोने लगा। लेकिन मां अटल थी। हर किसी को बोलने देने के बाद उसने थोड़े ही में साफ-साफ कह दिया, 'आपके मन में ऐसा होगा कि निठल्लू बनकर घर में बैठे रहो, भूखों मर जाओ! पर मजदूरी में क्या छोटाई है? छोटाई तो दूसरों के गरजी रहने में है! आपको इसमें छोटाई दीखती हो तो घर जाकर अपनी औरतों से कह दीजिए, कहिए कि दूसरों के घर बुहारने का काम कर खाना, पर कोई— '

और आंसू भरी आंखों से देख रहे पुत्र को मां ने आज्ञा दी, 'उठ बेटे, हांक बैलों को!'

लोग तो इस औरत की ओर ताकते ही रहे। दो-चार जनों ने कहा भी 'फिलहाल तो ठीक है, पर अगर जैसा कहा जाता है बारिश न हुई और पैदावार में उलट-पुलट हो गई तो देख लेना बुढ़िया अपनी दशा...'

शंकर, कासम और परमा पटेल वगैरह तो कालू की मां का सवाल अपना ही समझ रहे थे, 'बात तो सही है, मेरी बेटी! मजदूरी में क्या छोटाई है? छोटाई तो गरजी जिंदगी में है'— और कासम तो स्वगत ही लौटते लोगों को सुना रहा था, 'कहावत में कहा है वही सही है, गंदे-कंगाल रहना पर किसी के गरजी मत रहना!'...

यह कहावत तथा 'मज़दूरी में क्या छोटाई है?' जैसे सवाल दोपहर के बाद गांव की कुछ स्त्रियों के होंठों पर चलने लगे।

क्यों न चले? दोपहर को कलेवा देने गईं तो बहुत-से पतियों ने कालू की मां का उदाहरण देते हुए कहा था, 'तुझ जैसी के जिम्मे छोटे बच्चे आ पड़े तो या तो बच्चों को छोड़कर नातरा कर ले या फिर लोगों के घर बुहार कर गुजारा करे! पर— देखा न रूपा मां को!...धन्य है उस औरत की हिम्मत!...जरा जाकर सीख आओ कि जीना कैसे चाहिए!'

मानो जीना सीखने के लिए ही आई हों इस तरह शाम को रूपा मां के घर आठ-दस स्त्रियां, जो बाद में पंद्रह हो गई थीं, रूपा से एक ही सवाल पूछती थीं, 'मुझे तो आश्चर्य यह हो रहा है कि रूपा मां, आपकी हिम्मत कैसे हो पाई?' पर रूपा के मन में न अभिमान था न क्षोभ, आवाज उनकी अपनी थी, होंठ भी उनके ही हिलते थे पर बोलने वाली आत्मा तो मानो स्वयं वृद्ध वाला की ही थी, 'क्या करें, जब सिर पर आ पड़े तो,' और जोर से सांस लेकर, हंसकर कहा, 'भला हो उस ताने मारने वाली का। वह ताने नहीं मारती तो मैं कांछ भी नहीं मारती और दो-चार साल तक मुझे पराई आशा पर ही आंखों के आंचल फैलाने पड़ते!'

यह जानकर-सुनकर माली की अंतरात्मा बिन्ना पानी तड़फड़ाती मछली जैसी हो गई।

इतने में ही वर्षा की कमी लगने लगी और माली ने मौका पा लिया, घूमते-फिरते कहना शुरू किया, 'औरत जात ने हल की छड़ी पर हाथ रखा है। बारिश की एक बूंद भी पड़े तो करना याद, माली क्या कहती थी?'

पर इसमें माली क्या कहने वाली थी? सारे गांव को और आस-पास के इलाके को भी भरोसा था कि रूपा ने हल हांका है, इसलिए बारिश नहीं होने वाली है।

आस-पास के गांवों से संदेशे आने लगे, 'मुखिया को मालूम हो कि उस हल हांकने वाली औरत को पटेले के नीचे से निकाल दो नहीं तो मक्का और धान सूख जाएंगे!'

परमा मुखिया ही नहीं, सारा गांव सोच में पड़ गया। बारिश की आगाही करने वाले से भी पूछ-पूछकर ऊब गए, आसमान को ताक-ताककर भी थक गए, और पंचमी, सप्तमी, ग्यारहवीं— ऐसी मुद्दतें बांधकर भी हिम्मत खो बैठे थे। दूसरी ओर हरी-लहराती फसल भी सूखने को थी। फसल देखकर हर किसी के मुंह से एक ही शब्द निकलता था, 'गजब हो गया!'

इच्छा-अनिच्छा से एक शाम सारा गांव इकट्ठा हुआ, परमा मुखिया के घर ही। शंकर, वेचात भी सभी के साथ सहमत थे कि रूपा को खेत में सुला रखना और ऊपर से बैलों से जोता हुआ हलका-सा पटेला निकलवा देना। इसके सिवा बचने का— कुदरत के कोप को शांत करने का और कोई उपाय नहीं है। अब समय बरबाद करेंगे, दो दिन विलंब करेंगे, बारिश की राह देखेंगे तो मक्का-धान जड़ से सूख जाएंगे— पर कौन जाए रूपा से कहने को?

और इस बात पर परमा पटेल के दालान में खींचतान होती रही। एक कहता है, तू जा; और दूसरा कहता है, तू जा।

सामने वाले दरवाजे में रूपा भी गांव के इकट्ठा होने का कारण जानती थी और इसीलिए तो उस 'अंतर्यामी' से वह विनती कर रही थी। 'किस लिए मुझ दुखियारी को ज्यादा दुखी करता है, भगवान! सगे-संबंधियों ने तो खबर भी न ली सो न ली, पर तू भी? और मैंने ऐसा बुरा क्या किया है, भगवान! अरे रे, बड़ी मुश्किल से मैं अपना गुजारा कर रही थी। वह भी तुझे खल गया, राम!' और मृत वाला से फरियाद करने लगी, 'आप भी वहां जाकर वहां के हो बैठे? आप तो मुझे छोड़कर चलते बने, पर अब मेरी यहां देखभाल करने वाला कौन है?...देखते नहीं आप? यह सारा गांव है— कुछ तो कीजिए! खोटे भगवान से दो बातें— '

वृद्धा की कलपती आत्मा ने मानो पुकारकर कहा, 'झूठी बात! मैंने छड़ी पर हाथ रखा ही नहीं और रखा हो या हाथ रखा गया हो इसी कारण बारिश नहीं हो रही, यह तो निहायत झूठ है...मैं पटेले के नीचे से नहीं निकलने वाली, चाहे सारा गांव टूट जाए!...देखूं तो सही, कौन मां का लाल मुझसे कहने आता है! निगोड़े का सिर ही तोड़ डालूं, हां...'

और यों अटल बन बैठी रूपा परमा के दालान में बढ़ चुकी खींचतान को सुनती रही, आने वाले की राह देखती रही।

'देखिए चौधरी, आपकी भाभी है, आप ही उसे ले चलिए खेत में...हां, हां शंकर, बुढ़िया के साथ तेरा रिश्ता अच्छा है। तू ही जा...तब फिर भेजिए कासम घांची को, वह जाएगा तो दो बातें कहेगा भी सही।'

परंतु कासम ने तो बिलकुल इनकार कर दिया, 'गांव में तो क्या, पर सारी दुनिया में अकाल पड़े तो भी इस जुबान से तो रूपा चाची से ऐसा नहीं कहा जा सकता कि आप चलिए। और मैं तो इसे मानता भी नहीं हूं भाई, सच बात तो यही है।'

और दो-चार क्षण सारा बरामदा बेचैन रहा, 'अरे भाई, आप सभी इनकार करते हैं तब बुलाए कौन? या फिर शर्म में और मर्यादा में रहकर सारे मुल्क को भूखों मारना है?'

जबकि देहरी पर बैठी माली हंसती-हंसती बड़बड़ाने लगी, 'निगोड़े चार आदमी जाकर खींच नहीं लाते उसे?' और ऊंची आवाज़ में वह सलाह देने जाती है इतने में ही रूपा को दरवाजे से बाहर निकलते देखा, बोलते सुना, 'आपके बिना कहे ही मैं आगे हो रही हूं, चलिए। मेरे एक के पाप के कारण आप सबको मरना पड़े, ऐसा क्यों करें? उठिए, चलिए!' रूपा की आंखों में अजीब प्रकार का तेज था, मुंह पर ऐसा गौरव था मानो सती होने निकली हो। पैरों में भी वैसी ही अडिगता। नीम के पास रुकते हुए उसने कासम को पास बुलाया। गले में उभरते रुदन को हंसी से छिपाने का निरर्थक प्रयत्न करते हुए कहा, 'कासम!...भाई! और तो कुछ नहीं कहना पर, मेरा कालिया तेरी गोद में है...बैलों में गया है इसलिए किसे पता शायद— ' और वाक्य अधूरा छोड़ कर रूपा ने सीधे मुहल्ले से खेतों की ओर चलना शुरू कर दिया।

कासम तो शून्यमनस्क की तरह ताकता रहा— अरे उस बरामदे में भी पांच-छह चारपाइयां हैं, पर सब जैसे कागज के पुतले हों! कासम से कहे गए वे शब्द आधे ही सुनाई दिए थे, फिर भी हर किसी के दिल में दहशत भर गई थी, 'गजब हो जाए शायद!'

और ऐसा ही होना था। रूपा ने निर्णय किया था, 'गांव और इलाके के खातिर हेंगे नीचे से एक बार तो निकल जाना ही और फिर बारिश हो या न हो— वात्रक के उस गहरे दह में आत्महत्या— '

यह सब न कहने पर भी लोगों को रूपा के चेहरे से, उसकी तनी हुई पीठ से भी भास हो गया था, 'उसका कलपता जी शाप देगा तो'— पर दूसरी ओर बिना शाप— बारिश न होने से सब मर रहे थे, इसका क्या करें?

कासम घांची ने दालान की तंद्रा तोड़ी, 'क्यों भाई, आपमें से कोई उठता क्यों नहीं?'

'हां...हां?' परमा मुखिया ने हुंकारी भरी।

'उठो तब।' वेचात का चाचा खड़ा हुआ और पीछे-पीछे सारा दालान।

माली ने गांव वालों को सयानापन सिखाया, 'यों भी उसे हेंगे नीचे से निकालना तो है ही, तब फिर दिखावे के लिए ही हेंगा लेते जाओ। उसकी अकल तो ठिकाने लगेगी।'

पर इन शब्दों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ध्यान दें भी कैसे? ध्यान तो था किसी अगम्य भयंकर भावी पर।

, घर से निकली रूपा बीच में आते खेत छोड़कर सीधी अपने उस बरगद वाले खेत में ही गई। पहुंचते ही बाड़ के काम में लग गई। वहां आ पहुंचे गांव वालों से कहा, 'मेरी जरूरत पड़ने पर बुला लेना।'

फिर से वेचात के चाचा ने मौन तोड़ा, 'मंगवाओ भाई बैल। लाइए हेंगा, किसका लाना है? इधर-उधर होते रहने में तो दिन ढल जाएगा!'

एक का ही काम था, पर नाना के साथ तीन और युवक बैल लेने गए। आठ-दस जन इधर-उधर के खेतों में पड़े पटेले देखने, तुलना करने और तय करने के लिए चले।

इसके बावजूद उस बरगद के नीचे की संख्या जरा भी कम न हुई, बल्कि उसमें वृद्धि होती रही। गांव में जो भी लोग थे वे सभी खिंचे आ रहे थे। सूर्य भी मानो यह 'तमाशा' देखने के लिए पश्चिमी डूंगर पर रुक गया था।

बहुतों की नजर रूपा पर थी तो कुछ बैल-हेंगे की राह देख रहे थे। एक कासम उस ईशान कोने में उठते बादल की ओर छिपी नजर से देखता जा रहा था। मन में खुदा की बंदगी भी कर रहा था, 'खुदा के बंदे की लाज रखना तेरे हाथ में है, परवरदिगार!'...

अलबत्ता शंकर, वेचात, रामा आदि का ध्यान भी उस उठते बादल की ओर गया ही था, पर वे सोच रहे थे, 'ऐसे बादल तो हर रोज घिर आते हैं!'

जबकि कासम को किसी ने दृढ़ विश्वास दिलाया था, 'हेंगा जोतते-जोतते तो जल-जल बंबाकार!'

इतने में ही तो परमा पटेल का नाना अपने चार बैलों को लेकर हाजिर हो गया। बैल देखते ही कासम आग बबूला हो गया, 'साले बंदर, तुझे लाज होती तो ऐसे उजाड़ सांड़ लेने दौड़ता? आदमी को मार डाले बिना छोड़ेंगे ये?'

परमा पटेल तो नाना को पीटने दौड़ा, 'तुझे किसने कहा यह अकल लड़ाने को— '

'किसने क्या, मेरी मां ने कहा...'

इतने में ही रणछोड़ ने उसका पीछा किया और वे शब्द अधूरे ही रह गए।

उस ओर से रूपा भी आ पहुंची, 'चलो न, भाई!'— उसे नहीं बोलना था फिर भी बोल पड़ी, 'आदमी के दिल पर पैर रखने की तो एकमात्र आदमी को ही आदत है, बाकी ढोर तो विवश होकर ही कुचलते हैं! जोत दो, चलो। अगर बारिश हो गई तो मन

मन में ही रह जाएगी।'

इसी समय लोगों को दोनों बातों का एक साथ खयाल आया—एक ओर बादलों का यह घिराव फैल रहा था, दूसरी ओर जुआ कोई लाया नहीं था। हर कोई एक-दूसरे की ओर देखने लगा। किसी की हिम्मत न थी कि कहे, 'ले आओ जुआ!'

और अब उसकी जरूरत भी क्या थी? ईशान से तूफानी वायु छूट चुकी थी, वह बादलों की भीड़ भी रूठे रुद्र की तरह भीतर ही भीतर गरज रही थी। जटा की भूल-भुलैया में से पानी छूटने लगा था।

उन लोगों को लगा कि ये बारिश के छींटे नहीं हैं, आग की चिनगारियां हैं; यह रूपा का शाप बरस रहा है!

वह मानव समूह फिर धरती के साथ जड़ हो गया। कासम ने मौका हथियाया, 'क्यों? अब क्यों सभी पुतले हो गए? रूपा चाची ने गजब किया था, अब क्या हुआ?'—पर उसने चेहरे के भाव के साथ आवाज भी बदल दी, 'अब तो ऐसा कहिए कि भगवान ने हम सबकी लाज रख दी, नहीं तो रूपा चाची को हेंगे के नीचे से निकाला होता और तब तुम्हारे गांव की जड़ निकल न जाती तो मूंछ मुड़ा देता मैं! पर'—और वह रूपा की ओर मुड़ा। हाथ जोड़ते हुए गद्गद् कंठ से इतना ही बोला, 'वाला चाचा के मुंह से सुना तो था कि मनुष्य से बड़ा दुनिया में दूसरा कोई देव नहीं है पर आज तो मैंने अपनी आंखों से देखा, रूपा मां तुम्हारी सहायता को खुद मेघराजा को आना पड़ा।'

हर्ष के आंसू के साथ मंद-मंद हंसकर रूपा सचमुच किसी देवी के समान दीप्तिमान हो रही थी।

शंकर ने भी क्षमायाचना की, 'हमारा इतना गुनाह'—रूपा को क्षोभ हुआ। बीच में ही बोल उठी—

'चल चल, पगले! इसमें गुनाह किस बात का, लो चलो। भगवान ने तुम्हारी और हमारी लाज रखी कि बस!'

फिर भी वे प्रौढ़ लोग मन-ही-मन तो रूपा मां का वंदन करते रहे। जब कि कासम ने अपने बच्चों के द्वारा प्रणाम करवाया, इसके बाद तो उस बरसती बरसात में रूपा मां के चरणों में बालकों का हल्ला मचता रहा...।

तमाशा देखने को आई हुई माली का मुंह ऐसा हो गया कि काटो तो खून न निकले! पीठ फेरते स्वगत बोली, 'निगोड़ों ने ढील की, नहीं तो—जाह रे जाह, एक जरा उतावली की होती तो रांड़ की नाक कट जाती। लोगों में बात— '

वापस लौटे लोगों को आनंद से पछतावा ज्यादा हो रहा था, 'जाह रे जाह! गजब हो जाता, हां...जो भी हो पर रूपा है तो सती, इसमें तो तिल-भर भी शक नहीं'—

और उस रात तो लगभग सारे गांव की स्त्रियां रूपा के घर आ बैठीं, 'कहिए-कहिए, रूपा मां! सच कहना, आपने किस माता का स्मरण— '

और रूपा सजल नेत्रों से स्वगत बोली, 'स्मरण तो सच पूछो अपने पति का ही किया था, बहन! या— ' और हंसकर कहा, 'कुछ गालियां दी थीं भगवान को, बाकी— '

और लोगों ने कड़ियां मिलाईं, 'रूपा मां ने वाला चाचा से विनती की और वाला चाचा पहुंचे होंगे सीधे भगवान के पास और भगवान ने हुक्म दिया होगा सो मेघराजा को ताबड़तोड़ बरसना पड़ा। वर्ना कहीं बादल का पता नहीं और आज ही ठीक उसी वक्त कहां से बरसात आ गई?'

दूसरे दिन तो आस-पास के इलाके में भी बात फैल गई, 'रूपा मां ने गजब किया...अरे बिना बादल बारिश बरसाई...कुछ बरसाई थी नरसिंह मेहता ने कि कुछ बरसाई इस रूपा ने...घोर कलियुग में भी पड़े हैं इस रूपा मां जैसे सच्चे मनुष्य! यह सही है कि धरती कभी बीज नहीं खोती। यह तो आंखों देखी मिसाल है!...'

9

घोटाला

इसके बाद तिल की बोवाई के समय तो कालू को अकेले ही हल हांकना था। अलबत्ता, मां साथ तो आती ही थी और अब तो बैल भी बदलकर शंकर के लाए गए थे।

मां ने हल जोतकर देते हुए कहा, 'हांको बेटे, धीरे-धीरे!' और उसने हलि निकालना समझाया। एक हलि पूरा हुआ तब तक वह साथ-साथ घूमी। दूसरा हलि निकलवाकर वह घर जाने लगी, 'बैल सताएं या हल को कुछ हो जाए तो उस ओर तेरे साले का मजदूर हल हांक रहा है उसे बुला लेना, इतने में झाड़ू देकर पानी भरकर मैं आ पहुंचूंगी। हल सीधा-सीधा निकालेगा तो सरल पड़ेगा। बैलों को पैना मत भोंकते रहना। वे अपने आप सीधे चलेंगे।'

अब तक कालू का हाथ ठीक से बैठ गया था। कूंड के पास कूंड करने की समझ आ गई थी और संतुलन भी आने लगा था। लेकिन थकान भी उतनी ही बढ़ गई थी जैसा कि लोग कहते थे, 'सूखी लकड़ी के पीछे घूमना है यह तो!'

पर अभी उसका उत्साह कम नहीं हुआ था; बल्कि, अकेले हाथों हल हांकना था इसलिए पहले-सा ही उत्साह अभी भी था। इसीलिए तो उसने मां से कहा, 'हां-हां, वह सब तो मुझे मालूम है। तू खुशी से जा। साथ ही ढोरों को बांधकर ही आना।'

और सचमुच मां को अदृश्य होते देखकर ही कालू को चैन मिला। क्यों न मिले? कूंड टेढ़ा-मेढ़ा हो जाए, मेंड़ गिर जाए तो कोई देखने-पूछने वाला नहीं था। कभी ढेलों के साथ हल बाहर निकल आता तो कालू हल के साथ उछल-घूमकर आड़ा पड़ जाता, देखने वाला, हंसने वाला या ठिठोली करने वाला भी उस समय छाती पर तो कोई नहीं था! खेत-भर दूरी पर रणछोड़-नानो हंसें या रोएं तो भी कालू को क्या? खुद सुने-देखे तभी चिढ़ आए न?

उसके मन में यहां तक था, 'मां के आते-आते यह बीघा पूरा कर डालूं।' इसीलिए एक क्षण तो वह गांव की ओर उस गलियारे के नाके पर नजर डालता था और फिर बाकी रही जमीन को देख लेता था। जोती गई जमीन पर एक नजर डाल लेता और बैलों को पैना भोंकता, 'चलो बाप उतावले। मां के आते-आते तो इस कोने को

पार कर दें। हां...रे! भार क्या पड़े हैं?'

परंतु इतने में ही उस गलियारे से निकलते दो बालकों को देखते ही, उन्हें पहचानते ही कालू के दिल पर किसी का भार चढ़ बैठा।

वे थे कोदर और राजू— भाई-बहन। राजू ने लाज ढांकने के लिए नहीं, पर सुखी घर के हुलास पूरे करने के लिए फूलवाली घाघरी पर ओढ़नी ओढ़ी थी। सिर पर मोती से गूंथी हुई इंडुरी पर पानी का लोटा लिया था। लोटे पर सुबह का बाल-रवि नाच रहा था।

कालू ने देखा, राजू मुड़-मुड़कर पीछे चल रहे कोदर से कुछ पूछती जा रही थी। कभी उन लाल गरदन वाले ऊंचे सारस युगल के बारे में पूछती थी तो कभी उछल-कूद करते मेंढक दिखाती थी।

परंतु कालू मन में सोच रहा था, 'वह मेरी बात कर रही है। मेरी ओर हाथ लंबे करती है।' —और उस छोटे प्रियतम को— पति को क्षोभ होने लगा। शर्म आने लगी। इसीलिए यह छोटा-सा पुरुष तनकर सीना निकालकर हल हांकने लगा, न जाने ढेला आ जाए और हल के साथ उछल पड़ूं। इस चिंता के साथ सावधानी भी पर्याप्त रखी...।

पर राजू जब ठीक उस बरगद के नीचे आ गई तभी उसकी नजर कालू पर पड़ी। इसके साथ ही छोटी-सी पैनी आंखें हंस उठीं। हंसने के कारण गोल गलगुथना और गेहुआं मुंह विस्फारित हो गया। मोती-से सफेद दांत झलकने लगे। बिना बोले ही उसने एक निगाह कोदर की ओर तो दूसरी कालू पर डाली।

कोदर राजू से भी ज्यादा खुश हो उठा था। उसकी नजर तो कालू पर ही जम गई थी। हर्षावेश में पूछ डाला, 'मुझे हांकने देगा, कालू? एं?'

'हां हां!...पर तुझे नहीं आएगा, भाई!' कालू ने चिंता के साथ कहा। कोदर भी ठिठक गया और यह देखकर ही कालू ने कहा, 'आ आ, मैं तुझे सिखाऊं, चल!'

कोदर जाए सो राजू को भी जाना चाहिए। और उसने इस छोटे-से किसान के मुंह पर जमी पसीने की बूंदे देखकर या पानी पिलाने पर वह हल हांकने का खेल खेलने देगा इस लालच से, तुरंत ही पूछा, 'तुझे पानी पीना है?' कालू को नजर बचाता देख राजू जरा आगे बढ़ी, 'हें?' इसके साथ ही कोमल गरदन हिल गई और लोटे से पानी भी छलक गया।

दूसरी ओर कोदर हल की छड़ी पर लग गया था, 'तू पानी पी, इतने में— ला पैना दे मुझे।'

'अरे अरे? मेंड़ टूटा!'— कालू हल की धारता संभालता बोल उठा।

राजू के उस छोटे-से भेजे में क्या था सो तो राम जाने। या तो कालू पर दया आई होगी या फिर वह पानी पीने को मुड़े और अपने को हल हांकने का मौका मिले यह भी हो सकता है, और तीसरी बार कहा, 'पी न?' इस बार तो वह बिलकुल बैलों के

पैरों के पास आ गई, 'पी न पानी?'

कालू को भी लोटा देखा तब से प्यास लगी ही थी परंतु इससे भी अधिक राजू की बला टालने की इच्छा प्रबल थी। कुछ सूझ न पाने से उसने कोदर को पैना दे दिया और राजू के सिर पर से लोटा लेकर मुंह से लगाया।

राजू हल को भूलकर 'गटक-गटक' पानी पीते कालू की ओर ताकती रही। कालू ने पेट से दुगुना पानी पिया— डेढ़ सेर का लोटा आधा कर डाला तिस पर भी राजू ने आग्रह किया, 'पी जा सारा! मैं फिर से भर लाऊंगी।'

दूसरी ओर कालू को पल्ला छुड़ाना था, 'नहीं पीना भाई! ले न, लेती हो तो!' और राजू के सिर पर लोटा थमा कर वह हल की ओर बढ़ा। देखता क्या है कि कोदर सीधे के बजाय आड़ा हल हांक रहा था।

'अरे अरे? हल का फाल लग जाएगा। बैलों को रोक दे, खड़े रख, कोदर!' कहता वह दौड़ गया।

पीछे-पीछे राजू भी लोटा छोड़कर दौड़ गई हल के पास। 'मुझे हांकने दे न?' उसने कालू का हाथ पकड़ा।

जब कि कालू यह कहते घबराता रहा कि—'घोटाला मत कर भाई साब, मेरी मां आएगी तो लड़ेगी अभी!'

कोदर कहता है, 'मुझे', और राजू कहती है, 'मुझे'। जब कि कालू इस खींचतान में हल सीधा करने की कोशिश करता रहा। 'अबे, तुम मुझे एक बार हल सीधा तो करने दो...कोदर, मत भोंक बैलों को!...लड़की से तो हल नहीं हांका जाता, ले भाई साब!'

कोदर पैना भोंकता है और कालू रस्सी खींचता रहता है। सयाने बैल भी इस धमाल में धींग बन गए। भड़क कर भागने लगे। रस्सी को पकड़ रहा कालू भी पीछे-पीछे खिंचा जाने लगा। कोदर का मुंह लटक गया; जबकि राजू को मजा आया, वह छोटे-से हाथों से तालियां बजाती हंस पड़ी।

उस ओर बारह-चौदह की उमर के परमा पटेल के नाना को भी मजा आया। नाथा ने हल रोक दिया, 'अगर हल का फाल लग गया तो— पराए बैल हैं और— '

'तुझे जलन हो रही है न?' नाथा के आगे हल हांकते नाना ने कहा, जब कि रणछोड़ कुछ भी न बोला।

पर नाथा का ध्यान कालू की ओर था, 'अबे, रस्सी छोड़ दे छोरे, बैलों को जाने दे, वे तो रुक जाएंगे'— और उस ओर दौड़ता है इतने में तो नाना ने समाचार दिए, 'वह उसकी मां आ रही है दौड़ती-दौड़ती। वापस आ जा चतुराई किए बिना।'

अच्छा हुआ कि हल जुए से अलग हो गया। नहीं तो कोई बैल जरूर खोंड़ा हो जाता। पर अभी कालू के हाथ से रस्सी नहीं छूटी थी— छोड़ देने का खयाल ही न आया था, मुरदा गांठ-सी हो गई थी।

पर कोदर को खयाल आया, पैना लेकर बैलों को सामने से रोकने के लिए वह दौड़ा। पीछे राजू भी— और इतने में तो हांफती हुई मां भी आ पहुंची।

तीनों बच्चे एक-दूसरे का दोष दिखाने लगे, कालू ने कोदर पर तोहमत लगाई तो कोदर ने राजू पर, 'इस राजुड़ी की ओढ़नी देखकर चौंके हैं वे, इसी ने ही सारा घोटाला किया।' राजू तो अब भी खुश थी, कालू को अंगूठा दिखाती कह रही थी : 'ले, हांक ले! मुझे हांकने नहीं दे रहा था सो, ले...ले!'

मां इन बच्चों में से किसे दोष दे? खुद उससे भी वे बिगड़े बैल मानते नहीं थे।

नाथा को आना ही पड़ा।

दूसरी ओर घोड़ी पर बैठकर आते राजू के मामा ने भी रणछोड़ के हल के पास आते ही घोड़ी रोक दी। हाथ बढ़ाकर अपने भतीजे-जमाई से 'राम राम' किया। उस ओर कालू के खेत की ओर नजर करते पूछा, 'यह सब क्या घोटाला है, रणछोड़ जी?'

घोटाले-सा ही था न? कालू की मां हल उठाकर ला रही थी तो कोदर-राजू उसके पीछे-पीछे आ रहे थे, जब कि नाथा बैलों को शांत करता हुआ जुआ ठीक कर रहा था, और कालू हाथ में पड़ गई रस्सी की लकीर सहला रहा था।

रणछोड़ ने कहा, 'जानते नहीं? आपकी समधन ने भीलड़ी की तरह कछोटा लगाकर इस साल मक्का बोया है न! दामाद हल चला रहा था सो बैल भड़क उठे। यह तो अच्छा हुआ कि हमारा नाथा जा पहुंचा नहीं तो— '

नाथा बोल उठा, 'तितर-बितर का रवैया और भीतर भटकता है भोंड़।' यह वाक्य उसकी मां माली का था।

'बैठ जा बे चुप, यह सब बोले बिना।' रणछोड़ ने आंख दिखाई।

घोड़ी पर बैठा हुआ राजू का मामा तो उस घोटाले की ओर ही ताक रहा था। हांक मारी, 'छोरे, यहां आ जाओ यहां, ए कोदर, छोरी राजुड़ी!'

मामा पर नजर पड़ते ही बच्चे दौड़ गए, 'मामा आए...मामा आए...' जब कि राजू कहती रही 'मुझे घोड़ी पर बैठना है...मामा मुझे...मामा मुझे!...'

पर मामा का मुंह इस समय फूला हुआ था। स्नेह दिखाने के बजाय डांटने लगे, 'वहां क्या कर रहे थे छोरे? अपने खेत में जाना छोड़कर...'

और राजू को उठाकर गोद में लेते हुए कहा, 'अब दूसरी बार वहां गई तो— जानती नहीं है मुझे!' और कोदर से खेत में जाने के लिए कहा, 'जा, जाकर पानी पिला आ, मजदूर बेचारा प्यास से— '

कोदर ने रुआंसा होकर कहा, 'पानी तो राजुड़ी ने कालू को पिला दिया और मैं क्या लेकर— '

मामा के लिए ये शब्द भी असह्य हो गए। स्वगत बोले, 'राजुड़ी को तो— क्या करूं! हीन करम की जनमी है सो सभी के लिए सिर नीचा करने का समय आया है। राजा भोज की लड़की गंगू तेली के घर देनी पड़ी हमें!' और फिर कोदर की ओर घूर

कर कहा, 'जा, वह लोटा ले आ। वहां रणछोड़जी के उस घड़े से भरकर ले जा!'

'हां हां, जा। लोटा ले आ, भर दूं,' रणछोड़ ने कहा। चाचा ससुर की बात के सिलसिले में एक भारी सांस लेते हुए कहा, 'हमें भी बहुत चिंता होती है; इस लड़की को देखकर दुख होता है कि कौए के गले में मणि! आपकी भतीजी तो हर रोज जलपती रहती है। और क्यों न जलपे? रिश्तेदार भी बराबरी का हो तो ठीक; नहीं तो उसके आंगन में पैर रखने का मन— '

'मन की तो अब बात ही करने जैसी नहीं, रणछोड़ जी! आपने देखा है कभी मुझे? राजुड़ी की मंगनी हुए चार-पांच साल हो गए पर समधी के घर का दरवाजा किस दिशा में है वह भी नहीं मालूम!' और जोरों से सांस लेते उन्होंने घोड़ी को ऐंड़ लगाई।

'मनोर जी, आईए पधारिये' स्वागत करती कालू की मां से कहने को तो बहुत कुछ इच्छा हुई, 'ठीक किया, समधिन! हल हांक कर हमारी आबरू भी बढ़ा दी!' लेकिन, 'हां' भी नहीं कहा, मानो सुना ही न हो।

और समधिन पर जो चिढ़ थी वह सारे रास्ते राजू पर उंड़ेलता रहा, 'खबरदार अगर फिर से कभी उस खेत में या उसके घर भी खेलने गई तो...कभी घोड़ी पर ही नहीं बिठाऊंगा, हां!—देखो तो सही इसे! है बित्ते-सी और अभी से पानी पिलाने को— पर ठीक है!' मनोर मामा के आखिरी शब्द स्वगत बोले गए थे। बाकी को वह मन ही मन बोले जा रहे थे।

10

काली गरमी में वसंत

जैसा कि लोग कहते हैं, कालू का हाथ भाग्यशाली है या मां-बेटे की तनतोड़ मेहनत का यह परिणाम है या जो भी है, कालू की पैदावार उस साल अच्छी हुई।

इसका अर्थ यह नहीं कि लेनदार आंगन से उठ गए। लोग कहने लगे, 'करछी पर महेरी लगी, मेरे भाई! कोदो खाते थे, अब मक्का खाने लगे।'

और दूसरे साल तो लेनदारों का ब्याज नहीं तो ब्याज का ब्याज तो अवश्य अदा किया जा सकता था, पर तभी कालू की ससुराल वालों ने नुक्स निकाला, 'चूड़ियां-हंसली पतली हैं सो मोटी करवा दीजिए।'

कालू की मां ने जाकर समधिन को मनाने की कोशिश की, पर खास विरोध समधिन का नहीं, मामा का था और उसने साफ-साफ सुना दिया, 'हमारे घराने के अनुसार जेवर चाहिए। हम और कुछ नहीं जानते। हो सके तो 'हां' कहिए और न हो सके तो 'ना'।'

रूपा जानती थी कि किसी भी तरह मामा को खामी निकालनी है और उस बहाने सगाई तोड़ डालनी है। उसने बनिए को बहुत चिरौरी करके लौटा दिया, 'अब तो मेरा बेटा पैदा करने लगा है, सेठ। इस साल जरा मुश्किल है। बाकी, अगले साल से तो कमाई करके आपको ही देना है।' परंतु तीसरे साल फिर विवाह का विचार चला।

राजू के मामा की इच्छा तो किसी भी बहाने से सगाई तोड़ देने की थी, और राजू की मां कहतीं, 'राजुड़ी के बाप ने अपने हाथों यह रिश्ता कायम किया है सो मंगनी तो नहीं तोड़ूंगी।'

'पर मंगनी तो फूली-मां के डर से की थी। अब तो फूली-मां है नहीं? स्वर्ग से आकर तो तुमको खा नहीं जाएगी? खुद गलाजी जिंदा होते तो वे भी अब तक सगाई तोड़ देते!...'

फिर भी राजू की मां ने नहीं माना। इधर मामा ने भी अपनी जिद न छोड़ी। लग्नपत्रिका लिखवाते समय उसने फिर बहन को समझाया, 'अब भी सोच ले, बहन! क्यों अपने हाथों इस हीरे-सी बेटी को कुएं में डाल रही है? बड़े दुलार से गेहूं की रोटियां खिलाई हैं और वहां ससुराल में कोदो खाते-खाते गला छिल जाएगा, हां। ठीक

कह रहा हूं...अब भी समय है, मान जा।'

पर राजू की मां का मन ही नहीं मानता था। उसने कहा, 'उनके हाथों हुई सगाई मैं तो नहीं तोड़ूंगी। आपको तोड़नी हो सो आप जानें...ऊंहूं! मैं तो यह पाप अपने सिर नहीं लूंगी।'

'तू सिर न ले, फिर मुझे क्या गरज है?' कहता हुआ मामा बाहर दालान में आया। गांव वालों के साथ बैठे ब्राह्मण से कहा, 'लिख डालिए महाराज, लग्न; मैं तो जा रहा हूं अपने घर—काम है। लिखने के बाद वर के घर जाकर दे आइए।'

अलबत्ता, गांव वालों ने—शंकर, कासम घांची आदि ने उसे घोड़ी पर पलान कसते रोका, परंतु जाने क्यों, बहन ने नहीं रोका; इतना ही कहा, 'भोजन करके गए होते, भाई?'

'कर लिया भोजन!' भाई ने रोष व्यक्त किया।

ऐसे भी बहन भाई का रोष समझ गई थी, पर करे क्या? भाई को मनाने का एक ही उपाय था, लिखा जा रहा लग्न रोक देना और भाई के पसंद की किसी लड़के के नाम लग्न लिखवाना।

और ऐसा कैसे हो सकता है? जब से यह सगाई बदलने की बात भाई ने शुरू की थी तब से लेकर अनेक बार—जागती हो तो कल्पना में और सोती हो तो स्वप्न में मृत पति ने उससे कहा है, 'देखना! मैंने धन-धान्य देखकर बेटी नहीं दी। वह तो बेला, बेला की छाया है! असल में तो मैंने कुल देखा है। रिश्तेदारों का सद्भाव देखा है और कुछ देखा है तो दूल्हा! और बेटी की जात तो आप-कर्मी है...' लोगों को ऊंगली उठाने का मौका नहीं दूंगी! मरे हुए का वचन नहीं तोड़ूंगी...'

और इसीलिए भाई के रूठने को नजर-अंदाज करके उसे सुना-अनसुना कर दिया।

लगभग सारे गांव के स्त्री-पुरुष आए थे, पर परमा पटेल के घर से केवल रणछोड़ की बहू ही आई थी और वह भी सास की परवाह किए बगैर। परमा पटेल तो घोड़ी पर बैठकर ग्रामांतर करने दो दिन से चला गया था।

रणछोड़ की बहू ने फूफी (राजू की मां) से कहा, 'चाचा को लौटा लाइए न फूफी, शायद कन्या को लग्न में पहुंचाने भी नहीं आएंगे!'

'न आएं तो न सही, पर मुझसे राजुड़ी की सगाई न आज बदली जा सकेगी और न कल ही। हां, वे अपने आप बदलना चाहें तो बदल दें!'

'वे ऐसे बदलना पसंद करेंगे?' फिर भी भतीजी का विचार था चाचा को अपने घर ले आने का, पति तथा सास के साथ मिलकर उन्हें मनाने की कोशिश करने का, कालू के नाम लिखे जा रहे लग्न को बदल डालने का—वह उठकर खड़ी भी हुई।

परंतु उसके बाहर आते-आते तो चाचा सवार हो चुके थे। घोड़ी को ऐसी एड़ मारी कि भतीजी के बोलने से पहले ही...

भतीजी पीछे से पुकारती ही रह गई, 'जरा ठहरिए तो सही चाचा, मेरी बात तो जरा

सुनते जाइए...'

परंतु एक तो घोड़ी पानीदार थी और फिर रूठा हुआ सवार; घड़ी में टीले के बाहर।

भतीजी ने चाचा का पीछा तो छोड़ा परंतु उस बात का पीछा नहीं छोड़ा, 'किसी भी तरह चाचा को समझाना है कि भानजी की सगाई बदलना आपके हाथ की बात है और उसमें उलटा पाप के स्थान पर पुण्य होने वाला है। भानजी किसी अच्छे घर में जाएगी तो आशीष देगी!'

और यह बात उसने घर आकर पति से की। रूठी सास को भी इस बात से मना लिया। सास तो इतनी अधिक धुन में आ गई, खुश हो उठी कि घोड़ी का घर में नहीं होना भी भूल गई और बोली, 'उठ रणछोड़े, कस दे घोड़ी पर पलान और ले आ मनोरजी को वापस।'

रणछोड़ भी चिढ़ गया, 'ले तो आऊं, पर घोड़ी कहां है? बूढ़े का दिन फिरा है कि— '

हाथ मलती माली तो बूढ़े को पांच-पांच मन की गालियां ही देती रही...बाहर निकलकर टोली के नाके पर नजर की। तेज़ चलती नाड़ी बेसब्र थी, 'भगवान करे और कोई घोड़ी आ जाए!'

पर देखती है तो घोड़ी के स्थान पर शंकर, कासम आदि के द्वारा 'धर्म के काम में ढील क्या?' उस हिसाब से लग्न-पत्रिका के साथ रवाना किया गया गोल पगड़ी वाला वह ब्राह्मण दिख गया।

माली के गेहुंए चेहरे पर काजल छा गया।

रूपा का चेहरा ब्राह्मण को देखते ही खिल कर कुंकुम वर्ण का हो गया, ब्राह्मण को खाट पर बिठाकर गांव में दौड़ गई, 'चलिए बहन, लग्न पूजना है।'

और लग्न का सही-आनंद तो गीत गाने वाली इन युवतियों को ही लेना था न? खुद विवाह करने वाले तो आठ-दस साल के बच्चे थे, उनके लिए तो यह कोई खेल था— विनोद था। जबकि मां-बाप के लिए आनंद से अधिक आ पड़े अवसर को पूरा करने की चिंता थी।

घड़ी भर में कालू का घर गांव की युवतियों से खलबला उठा जैसे किसी वृक्ष के नीचे सतभइयां जमा हों।

एक तो गरमी का फुरसती दिन, उसमें फिर लग्न-प्रसंग; वह भी सबसे पहला। लग्न पूजने के बाद युवतियों ने आंगन में घेरा डाला। युवक भी छंट-छंटकर आने लगे, गीत में शामिल होने लगे।

प्रौढ़ों ने, वृद्धों ने दालान में चारपाइयां संभाली। गांव के नाई ने आंगन में एक ओर आग सुलगाई, और हुक्के भरना शुरू किए...

ठीक उसी समय जमना के पति की— कालू के फूफे की घोड़ी तरबड़-तरबड़

करती आ पहुंची।

कालू के आंगन में जगह न होने से परमा के आंगन में उसे बांधा; वह भी साले का ही घर था न? फूफे, कालू के घर में जाकर सभी से 'राम-राम' करके खाट के सिरहाने बैठे।

माली के पेट में आग तो जलती ही थी, उसमें इस 'हितचिंतक' ने आकर घी होमा, फिर उसके जलने और बड़बड़ाने का तो पूछना ही क्या!

पर उसकी वह बड़बड़ाहट यहां किसी के कान तक पहुंचे तब न? दो-दो कोस की सीमाओं तक जाते युवक-युवतियों के गीत-गुंजन के सामने, माली की चीख की क्या औकात?

जवानी मदमस्त हो गई थी। घास से बनी उस एकपलिया की छाया घेरे के लिए कम पड़ने लगी; पर झूमने वाले को तो इस समय सुध ही नहीं थी। वर्तमान को भूल ही गए थे, तीखी धूप की तो परवाह ही कौन करे? गीत-पर-गीत और उसमें भी इस गीत ने तो मानो काल्पनिक जीवन का पीछा कर लिया—

उगमणी धरती मां केसर ऊड़े छे ओ रेशमा!
उगमणी धरती मां केसर ऊड़े छे रे लोल।
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो आवे छे ओ रेशमा!
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो आवे छे रे लोल।

(हे रेशमा, पूरब की धरती में उड़ रहा है केसर! मुझे लगा कि आ रहा है ननद का भाई।)

हरेक युवती का मन ऐसा था जैसे वह खुद परदेश गए पति की प्रतीक्षा कर रही है, कुंकुम वर्ण की प्रभात जैसी आशाएं बांध रही है, कल्पनाएं दौड़ा रही है—

मीं जाण्युं बंगड़ीओ जोड़ी लावे छे ओ रेशमा!
मीं जाण्युं बंगड़ीओ जोड़ी लावे छे रे लोल।

(मैंने सोचा, वह चूड़ियों की जोड़ी ला रहा है।)

युवक भी मानो अपनी राह जोहती पत्नी की विरह-वेदना पर मंडरा रहे हों! इन गानेवालियों में से मनपसंद कोई उन्हें तीव्रता से चाह रही होगी, ऐसी कल्पना भी इन युवकों में से कोई करता ही होगा...जो भी हो, पर इतना तो अवश्य था कि वे युवक-युवतियां होश भूले हुए थे और किसी निराली दुनिया में विचरण कर रहे थे—

'आथमणी धरती मां धूल ऊड़े छे ओ रेशमा!
आथमणी धरती मां धूल ऊड़े छे रे लोल।
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो आवे छे ओ रेशमा!
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो आवे छे रे लोल।
मी जाण्युं फागण्यिूं फक्कड़ लावे छे ओ रेशमा!
मी जाण्युं फागण्यिूं फक्कड़ लावे छे रे लोल।

(पश्चिमी धरती में धूल उड़ रही है, हे रेशमा! मैंने माना आ रहा है, ननद का भाई, मैंने माना, साथ में ला रहा है फक्कड़ फागुनी ओढ़नी!)

कारण चाहे यह गीत हो या जो भी हो पर यह सच है कि कालू के घर-आंगन में कोई नहीं कह सकता कि दोपहर तपती है। और उन बूढ़ों-प्रौढ़ों के हृदय में भी जैसे इस काली गरमी में वसंत लहरा रहा था।

और सामने माली के घर में तो इस बाहर लहराती गीत की झड़ी ने चार गुनी गरमी बढ़ा दी थी।

जैसे वह गरमी असह्य हो जाने पर ही रणछोड़ बाहर निकला। निकलते ही पसीने से तरबतर फूफे की घोड़ी पर चढ़ गया। घोड़ी को एंड़ मारते हांक भी मार ली, 'फूफा, थोड़ी दूर के लिए घोड़ी ले जा रहा हैं!'

पर उस गीत ने तो मानो रणछोड़ का पीछा ही किया था। गलियारे में सुनाई पड़े सो तो ठीक, पर खेतों में भी—और आधे कोस की सिवान पर उस टीले पर चढ़ा तब भी, मानो वैसा ही सुनाई देता रहा जैसे शीतल रात के समय सुनाई दे—

'दखणाता वावलिया वावा मांड़या छे ओ रेशमा!
दखणाता वावलिया वावा मांड़या छे रे लोल,
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो...
मीं जाण्युं कमखानां कामण लावे छे ओ रेशमा!

(दक्षिण से वायु बहने लगी है, रेशमा! मैंने माना, ननद का भाई ला रहा है कंचुकी की मोहिनी!)

पर अंतिम पंक्तियां सुनाई दें उससे पहले रणछोड़ उस टीले को भी लांघ गया। और यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो न जाने उसके जले अंतर के क्या हाल होते!

मी जाण्युं कालजड़े कामण लावे छे रे लोल,
ओतराती धरतीनां बादल ऊठे छे ओ रेशमा!
ओतराती धरतीनां बादल ऊठे रे लोल।
मीं जाण्युं नणदीनो वीरो...
मीं जाण्युं मनड़ांनो मोर लावे छे ओ रेशमा!
मीं जाण्युं दलड़ांनों चोर आवे छे रे बोल।

(मुझे लगा, हृदय पर मोहिनी छा रही है, उत्तर की धरती से बादल उठ रहे हैं, हे रेशमा! मैंने माना, मन का मोर ला रहा है। मैंने जाना, दिल का चोर आ रहा है।)

और गीत रुकने पर बाद के दो-चार क्षण की शांति को देखते हुए सचमुच ऐसा लगता था मानो इस गीत गाने वालों और सुनने वालों के दिल की उस काल्पनिक दुनिया को कोई चुराकर चला गया है।

11

कुलांगार

जब रणछोड़ ने मनोर के विशाल आंगन में—एकपलिया के नीचे घोड़ी बांधी तब चैत का सूरज ढल चुका था। इसका अर्थ यह नहीं कि धूप चली गई थी, क्योंकि लू तो उग्र रूप से चल रही थी और प्राणी-मात्र का मांस सेंक डालती थी। इसीलिए कोई चिड़िया भी उस जगह नहीं दिखाई देती थी। कुत्ते भी पूरबी दरवाजे वाले मकानों में नहाने के पत्थरों के पास गड्ढे खोदकर पड़े थे। सारे लोग घरों में थे, पुरुषों ने अड़ार और भीतर के कमरों में ही चारपाइयां डाल ली थीं।

मनोर के घर के विशाल दालान, दालान के खंभों की नक्काशी, पांच तख्तियों वाले किवाड़ पर जड़ी हुई पीतल की पट्टी तथा पीतल के कड़े आदि देखते ही पता चल सकता है कि यह किसी संपन्न आदमी का घर है; परंतु घर के हाल देखते ही देखने वाले को यह कहना पड़ता था कि जैसा घर है वैसे मनुष्य इसमें नहीं रहते, नहीं तो...

तीन हाथ लंबे उस दालान का उत्तर भाग टूटी-फूटी कोठियों से छाया हुआ था। आस-पास बिखरी राख देखने पर लगता था कि कोठियों का उपयोग राख भरने के लिए होता होगा। इसके अलावा टूटे हल, गाड़ी के पहिए, टूटी चारपाई तथा कूड़े-कर्कट का भी यह संग्रह-स्थान था। कुत्तों का तो यह अड्डा ही कहा जाएगा। इसके अलावा हर रोज के उपयोग की दो-तीन चारपाइयां इधर-उधर पड़ी थीं। बीच के खूंटे देखने पर पता लगता कि रात को वहां बछड़े-पंड़वे बांध जाते होंगे। इसके बाद दो खाट की जगह लिपी-पुती थी और इसके बाद घर के मध्य भाग में दरवाजा पड़ता था।

दक्खिनी भाग की भी लगभग यही हालत थी। ओलती की ओर दीवार बनाकर दसेक हाथ की ओट बना ली गई थी जहां इस समय अच्छे हल पड़े थे, जुए लटकते थे। गाड़ी के जुए ने भी जगह रोक रखी थी और इसके बाद था अलाव, जिसके हाल देखने पर लगता था कि आजकल गरमी के दिनों में इसका शायद ही उपयोग होता है।

रणछोड़ ने दालान में प्रवेश करते ही बंद बरामदे की ओर निगाह डाली। दरवाजे में प्रवेश करते हुए वह बोला, 'कोई है घर में?' चौंधियाई आंखों के कारण पश्चिमी दरवाजा दिख नहीं रहा था।

दरवाजा खुला ही था। दस-बारह हाथ लंबी-चौड़ी उस जगह में एक ओर छोटा

चबूतरा चुनकर अड़ार की हद बंध गई थी तो दूसरी ओर कोठियां रखकर रसोईघर को अलग किया गया था। उस चबूतरे पर बिचली दीवार से सटकर चक्की रखी गई थी, जबकि मध्य भाग में, नीचे ओखली बैठाई गई थी।

जब रणछोड़ दाखिल हुआ उस समय ओखली में धान पड़ा था। एक ओर आधे मन का मूसल पड़ा था तो दूसरी ओर मनोर की पुत्रवधू नीचे लेटकर गहरी नींद सो रही थी। बगल के पालने में बालक भी सोया था।

रणछोड़ की आवाज़ से वह युवती तो न जगी, पर कोठियों की ओर पड़ी खाट से मनोर की वृद्ध पत्नी जग उठी। खाट से भौंचक्की-सी उतर पड़ी, कहा, 'ओ हो हो! आइए, पधारिए रणछोड़जी! इस कड़ी धूप में? जाइए, पिछले कमरे में आपके चाचाजी अभी ही हुक्का पीते-पीते लेटे हैं।'

बात सही थी। घोर अंधेरे कमरे में दाहिने भाग पर दीवार को टेककर रखे सुंदर हुक्के की आग, एक आंख से मानो मंद-मंद मुस्करा रही थी। 'चाचाजी' संबोधन से मनोर भी जग गया। वह रुई से भरे नरम गद्दे पर बैठा था। उसने पूछा, 'कौन है, भाई?'

'यह मैं, रणछोड़।'

इस ओर सास ने बहू को जगाया, 'उठ न, मोंघी बहू! कूटते-कूटते घर के बीच चारों खाने चित्त पड़ी है सो जरा किसी की आवन-जावन का तो खयाल रख।'

'कौन बराती आने वाले हैं सो?' बहू उठकर आंखें मलती बोली।

'तेरे मामा का बेटा— रणछोड़ जी आए हैं। न मानती हो तो जा देख पिछले कमरे में।'

मोंघी कालू की फूफी जमना की बेटी थी।

पर मोंघी को उठने की ज़रूरत ही न रही। आवाज से ही पहचान लिया कि सचमुच रणछोड़ ही है। पर पहचानने के बाद भी मोंघी के मुंह पर न तो हर्ष जगा था, न वह रणछोड़ की आवभगत के लिए ही उठी। उसके चेहरे पर तो एक प्रकार की अरुचि उभर आई, 'आए तो उनकी ससुराल है और उनके आने का अचरज थोड़े ही है?' यों कहकर उसने पानी पीकर मूसल हाथ में ले लिया।

परंतु उस तरफ मनोर को सचमुच अचरज हुआ। पूछ उठा, 'कौन रणछोड़ जी?...क्यों, इस धूप में? घड़ी पहले ही मैं तो— '

रणछोड़ ने पिछौरे से मुंह पोंछते हुए पायताने की ओर जमाया। बीच में ही कहा, 'आपके और मेरे बीच थोड़ा ही अंतर रह गया। घोड़ी को बहुत तेज दौड़ाया पर...'

क्षण-भर में मनोर के भेजे में अनेक विचार आ गए, 'रूठने से बहन को कुछ हुआ है या फिर लग्न लिखवाना छोड़कर लड़की के विवाह के लिए किसी और जगह— '

'ऐसा क्या है कि इस जलती दोपहरी में आए?'

'जिस काम से आप आए उसी काम से मैं भी...।' रणछोड़ ने हंसते हुए कहा।

मनोर सोच में पड़ गया, 'मैं तो किसी भी काम के लिए नहीं आया, मैं तो यों ही...'

सच पूछें तो रणछोड़ कम-अक्ल का तो था ही, पर साथ-ही-साथ ऐसी बातों में निहायत अनुभवहीन था। कैसे बात शुरू की जाए और कैसे उसे समझाया जाए, इसकी उसे कुछ भी समझ नहीं थी। उसने मजाक किया, 'क्यों? आप रूठकर तो आए हैं, और फिर भी— '

मनोर जरा चिढ़ गया, 'हां, पर उसका क्या? क्या लग्न लिखवाना रोक दिया गया?'

'अरे लग्न तो लिखा भी गया और पूजा भी गया।' मनोर को चुप देखकर उसने आगे कहा, 'कालिए की मां को तो ऐसा हो गया है जैसे लंक लऊं के लावो लऊं।'

रणछोड़ इतनी ऊंची आवाज में बोलता था कि मूसल डालती मोंघी के कानों तक भी उसके टूटे-फूटे शब्द पहुंचने लगे। सास तो बिचले दरवाजे जाकर ही बैठ गई थी।

'हर्ष तो क्यों न हो, भाई!' मनोर बोला।

'अरे हां, क्यों न हो, पर लग्न पूजते इतने सारे गाने और इतने...'

'आप तो अजीब आदमी हैं! इकलौता बेटा और वह भी...'

'परंतु फिर हमें तो दरवाज़े के सामने ही जल मरना होगा न? मेरी मां तो कहती है कि आप सब सगे-संबंधी मिलकर...।'

'क्या कोई नया गुल खिला है?' मनोर अब भी मुद्दे को समझ नहीं पा रहा था।

'यही समझ लो जिस दिन सगाई हुई उसी दिन से। वह फूली मां का शंकर तो मूंछों पर ताव देकर कहता है कि उसके मामा को भी जलती दोपहरी में भगाया, पंचायत कर रहे थे सो।'

'अ...च्छा!' मनोर की आवाज भी ऐसी मोटी और कर्कश हो गई कि मोंघी ने भी 'कोई बात है' सोचकर कूटना छोड़ दिया और सास के पीछे जाकर छिपकर सुनने लगी।

'और मेरी मां ने तो कहलवाया है कि अब भी आग लगी है, और आपकी भतीजी (रणछोड़ की पत्नी) ने तो लग्न आया तब से रोना शुरू कर दिया है— '

'क्यों?'

'क्योंकि भानजी को दुख में डाला गया है—जिंदगी भर उस बेचारी को यह देखना होगा और रोना होगा!' न जाने कहां से रणछोड़ की जीभ पर सरस्वती आ बैठी।

'भाई, सब-कुछ जानता हूं। मेरे लिए—मोर के अंडे उरेहने की जरूरत नहीं; पर इसका किया क्या जाए? आप तो कहते हैं कि लग्न पहुंच गया।'

'पहुंच गया और ठीक होगा तो आज ही आज गणेश भी बिठा देंगे।' और मनोर को अपनी ओर ताकते देख कहा, 'मुझे तो वह धमाल देख भरोसा हो गया है।'

मनोर फीकी हंसी हंसता हुआ बोला, 'तब तो सब-कुछ खत्म हो गया।' दीवार

से सटा हुक्का उठाते हुए बोला, 'अब तो बात हाथ से निकल ही गई।'

'निकल कैसे गई?' रणछोड़ पैर ऊपर करते हुए हंसी की मुद्रा में बोला, 'असल रंगत तो अब ही है।'

'कैसे?' चिलम खाली करता मनोर का हाथ थम गया।

'हल्दी लग जाने पर भी वर विवाह न कर सके तभी आपकी और हमारी शान रहेगी!'

मनोर को रणछोड़ की बात निपट बच्चे-सी लगी, 'हं! आप ऐसा मानते हैं कि आपको और मुझे कोई पूछने वाला ही नहीं?'

मनोर की पत्नी भी बिना बोले न रह पाई, 'अरे तब तो हमारी खबर ले ले बिरादरी, देश में कहीं हल्दी लगा वर भी रहा है क्या?'

सास के पीछे छिपकर बात सुन रही पुत्रवधू जरा खुश हो उठी।

'बहुत-से रहे हैं दूसरी बिरादरियों में।' रणछोड़ बोल उठा, 'कहें तो गिनाऊं— '

'पर हमारी बिरादरी में तो— '

'हां...उसी का तो बखेड़ा है!' रणछोड़ बोला।

मनोर को इस बात में कुछ तथ्य नहीं लग रहा था और इसीलिए वह हुक्का भरने में लग गया, इतना ही कहा, 'पहुंचाया गया लग्न रोक रखा जाए तो पूछने वाले हजार— '

'उन पूछने वालों के मुंह तो ये खनखनिए जरूर बंद कर सकते हैं।' ऐसा कहते हुए रणछोड़ ने कमर पर बंधी रुपयों की थैली पर हाथ ठोंका।

मनोर तो रणछोड़ की शक्ल की ओर ताकता ही रह गया। मानो पूछता हो, 'इस हद तक बात पहुंची है?' और उसके चेहरे पर, झुर्रियों पर आशा, हर्ष और हास्य की रेखा झलक उठी।

जबकि मोंघी का चेहरा उतर गया। वह लाल-गुलाबी चेहरा सफेद पूनी-सा हो गया। उसने बात सुनने के लिए मानो दिल भी रोक लिया।

'अपने पिताजी से पूछा है? क्या वे...'

'वे तो...घर में हैं ही नहीं और उनसे पूछना भी नहीं...'

'तब फिर?'

'अरे आपको उनका क्या काम है? ऊं...? बूढ़ा इसमें चूं भी करे तभी न?'

'तब यों कहिए न कि यह उनकी भी मनपसंद बात है— '

'ना, मनपसंद तो तनिक भी नहीं। उलटा, उनके लिए तो कालिया बेटा है। पर हं...! वे भी जानते हैं कि अगर घर वालों के खिलाफ पड़े तो घर छोड़े बिना कोई चारा नहीं।'

'अच्छा?'

'यह बात है...शंकर हमसे कहता है कि तुम्हारे बिना मंगनी भी हुई और लग्न भी

करवा देंगे। पर देखता हूं फक्कड़! मेरी मां ने तो यहां तक कहा है कि चाहे सारा घर घुल जाए, पर कालिए को एक बार हल्दी चढ़ने पर भटकाना है।'

'हां, ऐसा कर सकें तभी ठीक।' मनोर धुन में आ गया—'नहीं तो आप एक बार जोश दिखाकर अलग हो गए तो हमें फिर झक मारकर कन्या देनी होगी। सगे-सगे में विरोध पैठेगा और ऊपर से बेइज्जती होगी वह मुफ्त में।'—और न जाने क्यों एकाएक मनोर बदल गया, उसकी आवाज भी—'ना भाई ना! छोड़ो इस बात को!'

रणछोड़ के लिए तो मानो किनारे तक आई नाव ही टूट-फूटकर तल में जा बैठी हो। बोल उठा, 'क्यों-क्यों? आपको भरोसा नहीं होता?'

'भरोसा तो ठीक है पर' उसने सीधे रणछोड़ की ओर ताका, 'आप क्या लगाएंगे इसमें?'

'क्या—यकीन न हो रहा हो तो लीजिए', —और वह थैली खोलने लगा—'ये पांच-बीसी रुपये— ' फिर उसने दाहिने हाथ की बांह चढ़ाई। कुहनी पर पहना सोने का कड़ा निकाल कर देते हुए कहा, 'रखिए इसे अपने पास। अब तो ठीक है न? पर देखिएगा फिर। आप— '

रणछोड़ से भी मनोर कई गुना अधिक खुश हो उठा। पैसे बिगाड़ने वाला बिगाड़ रहा था और अपना काम हो रहा था। कहा, 'इसके बारे में आप बेफिक्र रहिए, पर चले कहां? रुकिए तो सही। बैठिए।'

रणछोड़ बैठ गया, 'लीजिए, कहिए!'

मनोर सोचता हुआ बोला, 'मान लीजिए, यह बात ठीक से पार उतर गई तो फिर हमें भी वर तो चाहिए न?'

'सो भी मैंने और मेरी मां ने सोच रखा है।'

'यह भी उससे दस गुनी बेहतर बात है, लेकिन मिले तो ही ठीक, नहीं तो फिर— ' मनोर अब भी जैसे स्वगत बोल रहा था।

'अरे, तब पंद्रह गुना बेहतर, फिर?' कहकर रणछोड़ हंस पड़ा।

'घर तो बताइए!'

'मेरा भाई नानिया!'

'दुबारा ब्याहना है?' मनोर को अचरज हुआ। रणछोड़ ने हंसते हुए गरदन हिलाई।

'पागल हुए हैं क्या?' मनोर ने मानो मुंह फेर लिया, 'सौत पर तो बात ही मत कीजिए। और कोई अच्छा ठिकाना हो तो कहिए'—और वह हुक्का पीने लगा।

'अरे सौत की बात क्या करते हैं? आप नहीं जानते? नानिये की बहू को तो गौना करने के बाद इन तीन बरसों में कई बार बुलाया है? और नहीं बुलाना है। मूल में लंगड़ी है और तिस पर बारह गाड़ी मिजाज।'

मनोर को यह बात पसंद आई। परमाजी के घर-सा घर और वर भी—नाना

सचमुच सुंदर था। पर परिणाम के बारे में सोचते वह फिर झिझका, 'किसलिए भले आदमी, घोटाले में घोटाला कर रहे हैं? बिरादरी आपको नोंच डालेगी।'

'भले ही नोंचें, मेरी मां तो यहां तक कह रही है कि चाहे जमीन बेच देनी पड़े, पर कालिए की कन्या नानिए से ही ब्याहनी है।'

'सो आप जानें। पर मुझे लगता है कि चाहे कितना भी पैसा दें फिर भी— ' क्षणभर चुप रह स्वगत ही बोला, 'मुझे तो नहीं लगता कि बात निपट जाएगी।'

'निपट जाएगी पूरी! लाइए, एक बार मुझे हुक्का पिला दीजिए। आज रात होते-होते सारी बात के निपट जाने की खबर दे देता हूं...'

'पर देखिए, मैं आपसे कहे देता हूं। बिरादरी जो कुछ जुर्माना करे, मेरी बहन पर और शायद न हो, पर हो जाए तो मेरा भी, वह सारा आपको भुगतना पड़ेगा, भाई! फिर बाद में कहेंगे कि कहा नहीं था।...'

'पढ़ा-लिखा नहीं हूं, नहीं तो लिख कर दे देता। और फिर भी ऐसा होगा तो बिरादरी तो आपकी बहन के घर इकट्ठी होगी न? एक बार मेरी बारह तोले की हंसली पहन लेना और फिर बिरादरी में बात करना, अब तो ठीक है न?'

मनोर ने इस बात पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। हुक्का भरकर रणछोड़ के हाथ में थमाते हुए उसने बतलाया कि किस-किससे मिलना है और किसकी ताकत कितनी रिश्वत की है। उन्हें यह वाक्य तो रटवा ही दिया : 'कहिए, मुझे क्या? यह तो मैं उस बेचारी विधवा की मदद के लिए दौड़ा हूं।— '

'मुझे कहना नहीं पड़ेगा,' कहते हुए रणछोड़ खड़ा हो गया। हुक्का देते-देते भी राह-खर्च के संबल जोग तीन-चार कश लगातार खींच लिए, 'आप देखिएगा फिर! मैं तो यहां से सीधा पेथा पटेल के घर और वहां से आपके सोते-सोते तो चार गांव घूमकर...' और वह यों कहता-कहता निकल पड़ा घर से बाहर।

घोड़ी को छोड़ते ही छलांग मारता उस पर चढ़ गया। टोली में टापें बज उठीं— तरबड़-तरबड़...तड़ाक्, तड़ाक्...तड़ाक्...

एक तरफ पत्नी रणछोड़ के निकलते ही पति के पास जा पहुंची जब कि मोंघी दीवार में धंसकर आंसू बहाती रही...

जैसे उसे कोई उपाय सूझा हो इस तरह वह यकायक पनसाल की ओर मुड़ी तथा घड़ा और हंडा लेकर घर से बाहर निकल पड़ी।

गांव के चौक के सामने ही नदी थी। कुइयां पर घड़ा-हंडा रखकर सामने वाले तट पर चढ़ गई। पंद्रह मिनट का ही रास्ता था। घड़ी भर में तो वह मायके पहुंच गई।

पर यह क्या? एकपलिया के नीचे ही परमा मामा की घोड़ी थी, उसने सोचा कि इसी घोड़ी पर रणछोड़ आया है। उसीने आकर यह घोड़ी बांधी है और इसीलिए वह लुक-छिपकर यह सुनना चाहती थी कि वह कलमुंहा यहां आकर क्या गप लगा रहा है, पर देखती क्या है कि ख़ुद परमा मामा ही दालान में बैठे-बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे

थे। मोंघी ओलती में ही रुक गई। बरसों के बाद परमा मामा को यहां देखा था, पर उनसे 'आइए' कहने की भी इच्छा नहीं हो रही थी।

'क्यों बेटी! भानजे को लिए बिना?' मां ने घड़ा-हंडा उतारते हुए पूछा।

पर मोंघी तो जवाब देने के बजाय रोने ही लगी। एक तो वाला मामा के अनाथ कालू पर दुख मंडरा रहा था इसकी चिंता और दूसरे परमा मामा को देखकर क्या कहे और क्या न कहे!

उसे क्या पता था कि परमा मामा भी अब तो कालू के हितैषी हैं!

मां-मामा ने उसे बड़ी मेहनत से चुप रखा। बेचारा मामा तो ससुराल के झगड़े की ही कल्पना कर रहा था, 'होता रहे, बहन! टंटे-फिसाद तो सारे मुल्क में हैं।'

मोंघी ने कह ही दिया, 'मैं अपने दुख को नहीं रोती, मामा! मैं तो रो रही हूं, वाला मामा के कालू भाई के दुख पर।'

'क्या हुआ कालिए को?' बुड्ढा परमा हकबका उठा, 'अभी तो कोई समाचार लाया है कि आज उसके गणेश बिठाए जाने हैं?'

'सो तो है ही, पर...'

और मोंघी ने अथ से इति, सारी बात कह सुनाई।

सुनते ही बुड्ढे भाई-बहन मानो दुख के सागर में गिर पड़े। जमना आंसू बहाने लगी जबकि परमा के लिए तो आंसू बहाना भी भाग्य में नहीं बदा था।

काफी देर तक तो वह विमूढ़ होकर बैठा ही रहा। यकायक खड़ा हो गया, 'जा, तू अपनी ससुराल चली जा, नहीं तो तेरे सास-ससुर...'

और मां ने भी यह खयाल आते ही बेटी को रवाना कर दिया। जबकि घोड़ी पर सामान रखने जाते भाई को रोका, 'आप जाकर क्या करेंगे, भाई! आप तो सरौते के बीच सुपारी-से हैं और...'

खुद परमा के मन में इसके बारे में बड़ी उलझन चल रही थी। उसे मालूम था कि कालू का पक्ष लेगा तो इस उम्र में घर-बार, जमीन-जायदाद, यहां तक कि लड़के भी छोड़ने पड़ेंगे और पक्ष नहीं लेगा तो सात पीढ़ियों की आबरू पर पानी फिर जाएगा।

फिर भी उसने घोड़ी पर सामान तो रखा ही, लगाम चढ़ाई, दो फूंक तंबाकू पीने के लिए हुक्का संभाला...

और उसने पूरे दो कश भी नहीं खींचे थे इतने में तो घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। देखता क्या है कि घोड़ी बहन की, और सवार अपना 'कुलांगार'! बुड्ढे की आंखें ही नहीं, मुंह भी मानो आग की ज्वालाएं फेंकने लगा।

लेकिन बेटे की शक्ल तो मानो 'खाऊं-खाऊं' कर रही थी। तुर्रा यह कि वह घोड़ी से भी ज़्यादा हांफ रहा था।

जमना बेचारी दोनों के बीच जिंदा ही सेंकी जा रही थी! घोड़ी बांधते रणछोड़ का मुश्किल से स्वागत किया, 'आ भाई, रणछोड़!'

पर रणछोड़ के कान हाजिर न थे। अपनी घोड़ी छोड़ते हुए, बुड्ढे से कहा, 'अगर अपना और हमारा भला चाहते हैं तो मेरी मां ने कहा है कि फिलहाल दो दिन यहीं पड़े रहना, नहीं तो...'

'तेरी मां का...' बुड्ढे ने होश ही नहीं, समझ भी खो दी! सुना न जा सके ऐसी गाली देते खड़े हो गए, 'बांध दे घोड़ी, नहीं तो तू...'

'आ तो सही यहां तक।' कहकर रणछोड़ सांड़ की तरह डकराता हुआ खड़ा रहा।

जमना समझ गई। पराए गांव में—मेरे आंगन में बाप-बेटे हाथापाई कर बैठेंगे शायद। इसी डर से वह दौड़ गई। भाई हो हाथ से पकड़कर रणछोड़ से कहा, 'भाई! बेटे रणछोड़! तू तो सयाना है न!...मेरी घोड़ी ही ले जा तू। और पराए गांव में मेरी फजीहत मत कर बाप!'

रणछोड़ भी देर हो जाने से या फिर बुड्ढे का मिजाज देखकर, जिस पर आया था उसी घोड़ी पर चढ़ गया। फिर भी उसने बुड्ढे को चेतावनी तो दे ही दी।

'अभी तो मुझे जल्दी जाना है; पर अगर घर आकर पंचायत की तो देखना मजा!'

'भाड़ में जाए तेरा घर।' कहकर जमना बुड्ढे को खींचने लगी, 'चलिए न भाई आप! नहीं जाना है। कालिए की तकदीर में होगा सो होगा!'

और बुड्ढा भी पागल की तरह खिंचता गया। खाट में पड़ते ही चीखकर रो पड़ा, 'अरे रे, मेरे बेटे अंगारे निकले! भगवान तुम्हें नरक में डाले। जीते जी तुम कीड़ों से सड़ जाओ। तुम्हारा निर्वंश...'

पर उसी वक्त जमना ने बुड्ढे का मुंह दबा दिया, 'यह क्या बोल रहे हैं, भाई! अक्ल भी चली गई है क्या?'

12

बद ने बदी की

आंगन में एकपलिया के नीचे बंधे बैलों को घास-चारा दिया गया जबकि गाय-भैंसों को बाड़े में मक्के की बाल डाली गईं। स्त्रियां झाड़ू देकर पानी लाने में और दाल-कढ़ी पकाने में रत हुईं। पुरुष वर्ग चैन से हुक्का गुड़गुड़ाने लगा, जैसे आठ-दस मास की थकान उतार रहा हो।

इधर ढोर छूटे और उधर पांच-सांत गांवों की पंचायत आने लगी। कोई घोड़ी पर बैठकर आ रहा था तो बहुत-से पांच-सात की मंडली में हुक्के गुड़गुड़ाते चले आ रहे थे।

लगभग सारा गांव सोच में पड़ गया, 'आज भोज तो है नहीं, फिर इन लोगों को क्या काम है?' जबकि शंकर, जमना का पति फूलजी आदि तो समझ गए। कालू की मां का तो मानो चित्त भ्रमित ही हो गया।

घड़ी-दो घड़ी में कोदर के बरामदे में बिछाई गई फर्श तो आदमियों से ठसाठस भर गई। रणछोड़ ने बुलाया था तो मुखिए-मतादारों को ही, पर मुखिए-मतादार भी पांच-छह पासवानों के बिना कैसे आते?

दो पक्ष स्पष्ट थे। एक मनोर-रणछोड़ का और दूसरा शंकर-फूलजी का। बहुत-से बिना पक्ष के भी थे। और वे जैसे गंदे थे वैसे ही सनकी भी—क्यों बुलाया गया है यह भी नहीं जानते थे। पेथा पटेल जैसे जानकार, जैसा बाहर से वैसा ही भीतर से भी बगुले का भेस धारण करके बैठे थे...गांव के नाई हुक्के भरने लगे। पंच ने बात चलानी शुरू की।

उन पांच-सात अगुओं में से पेथा पटेल ने, जो रणछोड़ के रुपयों से गले तक भरे थे, फरियादी की फरियाद वाजिब लगे इस तरह केस तैयार किया, 'देखिए भाई, इन कन्यावालों का कहना है कि पांच-सात साल पहले सगाई की, तब भी सगे-संबंधियों की अनिच्छा थी। परंतु किसी की शह के असर में पड़कर शगुन लेना पड़ा था।'

शंकर ने खुलेआम विरोध किया, 'कौन है कहने वाला? सारी बिरादरी जानती है कि गला भाई ने यह किया है। उनकी इच्छा ही न होती तो समधी का घर क्यों ठीक करवा देते, समय-समय पर खेती में जो भी मदद करते थे वह क्यों करते? सगे का

मोह और चिंता थी तभी न? बेटी का हित समझकर ही न?'

बरामदे में बैठे तीन-चौथाई लोगों ने सिर हिला कर कहा, 'बात तो सही है, भाई!'

'गला जिंदा होता तो सवाल ही नहीं था। पर अब यहां उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं, इस दशा में बेटी का कौन सुधारेगा?' मनोर ने मधुरता से कहा।

'यह बात भी सोचने लायक है!' फिर वही बरामदा गुनगुना उठा।

'तब इन लोगों ने लग्न क्यों भेजा? हल्दी चढ़ा वर यों ही पड़ा रहेगा क्या?' कालू का फूफा फूलजी गरज उठा। इसके साथ ही दूसरे पांच-सात खड़े हो गए, 'आप लोगों ने सोच क्या रखा है? किसी गरीब की आबरू लूटनी है आपको?'

रणछोड़ भी खड़ा हो गया, 'तो क्या किसी की लड़की का जीवन बिगाड़ना है? तुम सब लड़ने पर उतारू हो गए हो!' रणछोड़ के साथ दस जन खड़े हुए, जिनमें मनोर तथा उसके शार्गिद खास थे। पर मनोर का बदला तो उसके बेटे ने ही लिया, 'मेरे बाप की तो बुद्धि सठिया गई है, परंतु आप न्याय करने वाले तो जरा सोचिए!'

मनोर को, उस समय मालूम हुआ कि बेटा बहू का होकर यहां आया है। उसकी आंखें लाल हो उठीं। तुरंत ही बेटे की ओर झपटा, 'देखो तो सही, पंचायत करने आए हैं, एं! अभी मुंह से मां का दूध तो सूखा नहीं और...'

परंतु उस युवक की बगल में दस आदमी खड़े हो गए, 'अबे, तू बाप है सो क्या हुआ? पंच के बीच हाथ तो लगाकर देख, फिर देख क्या होता है...'

'तुम धोती पहनना भी नहीं जानते और पंचायत करोगे?' इस वक्त तो तटस्थ बगुले भी फड़फड़ा उठे।

मामला आगे बढ़ गया। यहां तक कि शंकर और रणछोड़ तो हाथापाई तक आ पहुंचे। सारा दालान हिल उठा, दोनों पक्ष दाल-चावल की तरह मिश्रित थे और इसी कारण यहां-वहां कहा-सुनी हुई और एक-दो जगह तो लातें भी चल गईं।

बरामदे के बाहर आंगन में स्त्री-बच्चों सहित सारा गांव इकट्ठा हो गया था। उस मारपीट को देखकर स्त्रियां दूर खिसकने लगीं और बालक रोने लगे।

अब तक चुप बैठे पेथा पटेल के पेट का पानी कुछ हिला। अपनी भारी काया को जरा ऊंचे उठाकर पैर पर बैठते हुए मोटी कर्कश आवाज से बोले, 'अबे, यह क्या भीलों की तरह लगा रखा है? निकाल दो सभी को बिरादरी से बाहर और चलो सब अपने-अपने घर। ये सब तो आपस में न्याय कर लेंगे।'

पेथा पटेल तो न उठा, पर उसके आस-पास के दो-चार अगुए खड़े हो गए। 'जाओ बे, लड़ने वाले तुम सभी। निकलो यहां से बाहर, तुम कर लो लाठियों से अपना न्याय और हम चले जाएंगे।'

सारा बरामदा खड़ा हो गया, एक पेथा पटेल को छोड़कर। उन अगुओं ने तो पिछौड़ी तथा लाठी-तलवार भी संभाल लिए...

पर वे लोग ओलती से बाहर निकले उसके पहले वे दोनों पक्ष लड़ना छोड़ उनके आड़े आ गए, गिड़गिड़ाने लगे, 'ऐसा भी हो सकता है! पंच बिखेर देने का हमें दोष लगे। आप लौटें नहीं तो आपको इस पंच की शपथ। जो जाए उसे ब्रह्महत्या का पाप!'

इन लोगों के लौटते ही पेथा पटेल के पेट में ऐंठन शुरू हो गई। बगल में रखी पगड़ी-तलवार संभाल लिया, 'अपना कहा चले नहीं तब फिर न्याय क्या करनेवाले थे खाक? खाने को अनाज तो घर में भी मिल जाएगा। हमसे तो यह न्याय नहीं होगा, रे भाई!'

और उनको बिठाते-बिठाते उन दोनों पक्षों को बड़ी तकलीफ हुई। स्वीकृति भी देनी पड़ी, 'आप जो कहेंगे वह हमारे सिर-आंखों पर। पंच तो परमेश्वर है, उसका न्याय हम दोनों पक्षवालों को कुबूल है।'

इस इलाके में पेथा पटेल एक नंबर का काइयां माना जाता था। ठाकुर-ठकुराइन उसकी सलाह लेते। बनिए भी उसे मानते थे। उमर तो पैंतालीस की थी, पर शरीर देखने में साठ साल का लगता था और न्याय देते समय वह सत्रह का दिखाई देता।

विरोधी पक्ष को परास्त करने की उसके पास अजीब तिकड़म थी। कोई बड़ा मामला हो तो वह खुद ही मामले को उलझा देता और फिर उन विरोधियों को हल करने के लिए चुनौती देता...फिर चट से हल दिखाकर उन लोगों को सदा-सर्वदा के लिए चुप कर देता।

परंतु सच पूछें तो पेथा पटेल खुद एक पहेली था। वह किसका भला करेगा और किसका बुरा, यह तय करना मुश्किल था। खुलेआम रिश्वत लेता था, लेकिन किसी जगह भी अन्याय करने का इल्जाम आज तक किसी ने उस पर नहीं लगाया। वैसे तो वह सगे भाई का भी न था और ऐसे हर कोई उसे अपना मानता था।

छोटे मामलों में सिर मारता ही नहीं था, पर अगर कोई बड़ा मामला हो तो एक पंथ दो नहीं, बाईस काज कर लेता। साल भर की अफीम और कपड़े तथा खाना भी निकाल लेता।

शंकर, फूलजी आदि कालू के पक्षवालों को लेकर पेथा पटेल एक ओर गया, लाख बात की एक बात कह दी, 'कन्या की जिद तो छोड़ ही दीजिए। आप ही कहिए, कन्या का मामा यदि कन्या को चौरी में ही नहीं ब्याहेगा तो आपका वर किसे ब्याहेगा? हां, अगर घर का मालिक होता तो ठीक था, पर यह बाई तो विधवा है। उसे छोटे बच्चे पालने-पोसने हैं, कोई संपन्न सगा हो तो सहारा रहे। और हमारे घर का राज्य थोड़े ही है कि जबरन ब्याह डालें?'

'तो राज्य में फरियाद करेंगे।' फूलजी ने कहा।

'सो तो आप जानें। पर राज्य भी आखिर पूछेगा तो बिरादरी से ही न? इसके अलावा आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण बिरादरी का आप पर कोप होगा,' पेथा हंसा, 'आप ही सोचिए। फिर आप राज्य के साथ घर-गिरस्ती चलाएंगे? कन्या

लेने-देने...'

'तो क्या कन्या छोड़ दें? अपनी नाक कटवाएं? हल्दी चढ़ा वर दुनिया में कहीं रहा है कि रहेगा?' फूलजी क्रोधित हो उठे।

'किसी का भी नहीं रहेगा, और बिरादरी रहने क्यों देगी? पर एक बार इस कन्या का काम तो निबट जाने दो!' पेथा इस तरह हंसा जैसे भेद की बात कर रहा हो, और गाढ़ी बरौनी से भरी पलकें मिचकाईं। ज्यादा कहने को कुछ था नहीं, क्योंकि बात गुप्त होने पर भी बरामदे से करीब आधी संख्या यहां आकर खड़ी हो गई।

बाकी लोगों के आगे दूसरे अगुए प्रवचन कर रहे थे। लोकमत जगाने का सही काम तो वे ही कर रहे थे, 'हम सभी न्याय-अन्याय किया करते हैं पर इस बे-सहारा बेवा की ओर कोई देखता है? नहीं तो आप ही सोचिए, किसी को भी छह-आठ साल की सगाई तोड़ने की इच्छा होगी?...'

पेथा पटेल ने शंकर-फूलजी के कान फूंके, 'आप तो नासमझ आदमी हैं, फूलजी! यों भी कन्या तो जा रही है। आप ही कहिए, बिरादरी ने खिला-पिलाकर उसे बड़ा किया है कि जोर करे! ठीक मेरे भाई!...सोच-समझकर मांग लो न इज्जत का जवाब। भागते भूत की लंगोटी ही भली।'

शंकर-फूलजी को भरोसा हो गया कि अपनी बात ये लोग नहीं चलने देने वाले हैं, तब फिर पेथा पटेल की सलाह क्या बुरी है?

और फूलजी अपने पक्षवालों को लेकर घर के पीछे गया। पक्ष में वह खुद, शंकर, कासम घांची, वेचात तथा बिरादरी के चार-पांच भले आदमी थे। मावजी का लड़का भी कहीं छिप गया था। जब कि वेचात तथा कासम को यह सारी पंचायत ही नापसंद थी। पर करें क्या, अपनी बिरादरी थी नहीं—फिर भी ये दो जने दो-तीन बार कह चुके, 'शंकर, तू कहे तो कन्या को रात में उठा कर ले जाएं और कालिए के साथ ब्याह दें। अभी उन लोगों को करने दो, जैसा करें।'

शंकर को भी यह पसंद था। शंका थी वेचात को कि फिर हो ही कैसे सकता है? पर डर बिरादरी का था। ब्याह तो दें पर बाद में बिरादरी छोड़े तभी न? और करवा करने की छुट्टी वाली जाति में ब्याह देने से क्या फायदा होने वाला था? कन्या बड़ी हो जाए, फिर कहीं और विदा कर दें—अरे खुद बिरादरी ही विदा करवा दे, फिर लोगों की सिफारिश की तो बात ही कहां रहे!

हर पहलू पर सोचने के बाद इन लोगों को भी पेथा पटेल की बात सही लगी। आखिर आबरू लेने के जुर्माने में ग्यारह बीसी रुपए मांगना तय किया गया।

परंतु इन लोगों को कहां मालूम था कि रणछोड़ ग्यारह बीसी के बजाय इक्कीस बीसी रुपए मांग होते तो भी दे देता। वह तो यही चाहता था कि कालिया यह कन्या ब्याहने न पाए। फिर पेथा पटेल ने उससे कहा, 'हमारे जाने के बाद आपस में निबटा लेना, सूझ पड़े वहीं ब्याह देना, हमें क्या उसमें?'

चारों ओर का अभिप्राय पा लेने के बाद पेथा पटेल ने फैसला सुनाया, 'लड़की को उसके मां-बाप जहां चाहें ब्याह सकते हैं; पर कब? जब वाला पटेल के लड़के को दिया गया लग्न वापस आ जाए तब।'

और उसी लग्न के बदले में ग्यारह बीसी रुपए दिलवाए गए।

पर ये रुपए ले कौन? गांठ बांधे कौन? फूलजी तो फैसला सुनते ही रूठकर घोड़ी पर चढ़ गया था। आखिर पेथा पटेल ने शंकर को इशारे से कुछ शब्दों में समझाया, 'हूं! बांध लो तुम! वही की वही गुल्ली और वही का वही डंडा।'

शंकर ने ले तो लिए, लेकिन बोले, 'देखना, पेथा पटेल! आपके भरोसे पर बांधता हूं, हां। वर की हल्दी उतरनी नहीं चाहिए।'

किसी ने सवाल किया, 'कन्या फारिग तो हुई, पर अब उसका विवाह कहां किया जाए?'

'जहां उसके सगे-संबंधी चाहें। उसकी हम बिरादरी वालों को क्या पंचायत, भले आदमी! लो, चलो भोजन करने।' कहकर वह खुद उठा, उसके साथ और सब भी उठ गए।

अलबत्ता शंकर, वेचात आदि तो रवाना ही हो गए थे। इस ओर भोज चल रहा था, उस ओर कालू के घर कुहराम मच रहा था। शंकर ने बुढ़िया को बहुत सांत्वना दी, पर फिर भी मां का जीव नहीं मानता था, जिसने राजू जैसी कन्या गंवाई थी, जितनी सुंदर थी उतनी ही सयानी।

अलबत्ता पेट और जेब से तर होने के बाद घोड़ी पर चढ़े हुए पेथा पटेल का शंकर के नाम न्यौता आया देख वृद्धा के आंसू कम हुए, यह एतबार भी हुआ कि बेटा हल्दी लगा नहीं रह जाएगा, फिर भी अंतरात्मा तो कलपती ही थी, 'अरेरे, आखिर बद लोग बदी करके ही शांत हुए! अरे रे हत्यारे!' और नि:श्वास छोड़कर भगवान से मानो पूछ रही थी, 'इतनी सारी पंचायत में कोई नेक आदमी खड़ा न हुआ?...न्याय करने वाला कोई न निकला?'

13

दुखियारा परमा पटेल

बिरादरी के बिखर जाने पर सारा गांव सुनसान हो गया। वाला के घर तो प्रसंग में मक्खी गिरी थी, जबकि रणछोड़ के घर कुछ गुप्त साजिश चल रही थी। कोदर के घर उसकी मां की समझ में ही कुछ नहीं आ रहा था कि खुश हो या रोए? रात में बेटी की घुड़चढ़ी भी न निकली और कालू की तो निकलती ही कैसे? सारा गांव सोच में पड़ गया था, 'कालिए की हल्दी क्वांरी ही रहेगी?' कोई कहता, 'सो तो ठीक, पर राजुड़ी को ब्याहने किस गांव का वर आएगा?'

परंतु यह सवाल सुबह ही हल हो गया। नाई घर-घर घूमकर कह गया, 'परमा चाचा का नाना गणेश पूजने बैठता है सो चलना सब गुड़ खाने।'

जैसे पर-गांव बैठे बूढ़े परमा को लगा वैसा ही समाचार सुनकर इस गांव को भी लगा, 'इस परमा पटेल के घर क्या होने वाला है?'

घोड़ी दौड़ाकर परमा पटेल घर आया, रकाब से पैर निकाल रहा था, गवन धोती पहनकर रौब से टहलती पत्नी ने सुना दिया, 'खबरदार यदि एक अक्षर भी बोले तो...नहीं तो विवाह में विघ्न होगा।'

परन्तु बुड्ढा परमा तो इससे भी आगे की बात बता रहा था, 'विवाह में ही नहीं, विघ्न तो तेरे-मेरे जीवन में ही फला है।' वह बड़बड़ाता हुआ घोड़ी पर से सामान उतारने लगा। रकाब उतारकर तंग ढीला करने ही जा रहा था कि रणछोड़ ने घर से बाहर निकलते हुक्म दिया, 'रहने दीजिए सामान, नानिए की घुड़-चढ़ी ले जानी है।'

परमा का सिर घूम गया, 'तेरी मां का...बता, कहां घुड़-चढ़ी ले जा रहा है?'

बगल में मां और गांव की स्त्रियां खड़ी हों तथा दो-चार पुरुष और छोटे-बड़े बच्चे सुन रहे हों तब तीसेक साल का जवान रणछोड़ इतनी बड़ी गाली कैसे सह पाए? माली के मन में तो पति कब का मर गया था, पर अब तो बेटों का बाप भी नहीं रह पाया था; रह गया था मात्र 'कलमुंहे का चाचा'!

रणछोड़ दालान की छत पर से एक शहतीर खींचकर झपटा, पर इतने में ही दो-चार जने बीच में आ गए। वैसे माली अब भी कहे जा रही थी, 'फटकार दे न निगोड़े लकड़बग्घे को कि खातमा हो जाए।'

परमा की गहरी धंसी हुई आंखें ऊपर आ गईं। आंखों से मानो खून टपकने लगा। एक विचार आया, माली को झटका दे दे जिसकी जवानी पनप आई है; या फिर घर में गणेश बिठा रहे ब्राह्मण की आचमनी-लोटा फेंककर उसका सफाचट सिर फोड़ दे। परंतु क्या करे? यम-सा रणछोड़ दालान में खड़ा था...

'सारी फजीहत है।...लोग कहेंगे इस उमर में बूढ़े को यह क्या सूझा?'

परमा ने क्रोध शांत करके लगाम फिर से चढ़ाई। रकाब में पैर डाला। वह घोड़ी पर चढ़ने जा ही रहा था कि माली बोली—

'यह घोड़ी खरीदते तेरे पुरखों को जोर नहीं पड़ा था कि...'

मंझला पुत्र नाथा जो बड़ी देर से झुंझला रहा था, मां से चिढ़ गया।

'जो तेरे बाप-पुरखों का हो वह सारा लेकर चलती बन अपने बाप के घर!' और रणछोड़ की ओर देखकर वह गुर्राया।

'तू बूढ़े बाप को मारने झपट रहा है? तुझमें बहुत जोर है क्या?'

क्षणभर को सन्नाटा छा गया। नाथा यह बोलेगा, पिता के पक्ष का हो जाएगा, इसका तो किसी को स्वप्न में भी खयाल नहीं था। माली तो उसे अपना लजीला बेटा ही कहती रहती थी।

पर सच पूछें तो नाथा का यह रुख खुद परमा को भी पसंद नहीं आया। घर का भविष्य जैसा सोचा था उससे भी अधिक भयंकर दिखने लगा। दो-चार क्षण को तो वह पागल-सा हो गया, 'यादवस्थली ही मचेगी!'

'मच गई या अब मचेगी?' रणछोड़ और नाथा दोनों गाली-गलौज पर उतर आए थे।

परमा ने हांक लगाकर माली से कहा, 'देख, देख, अपने जायों को देख, शास्तर पढ़ते हैं ये!' और सिर हिलाकर कहा, 'तू याद तो रख! परिवार में बैर के बीज बोए हैं पर तेरे ही घर में— तेरे ही जिम्मे सारा पाप न पड़े तो, याद करना कि क्या कहता था मैं!'

इसके साथ ही परमा ने घोड़ी पर छलांग मारी, हाथ की चंवरी से घोड़ी को फटकारते हुए माली से कहता गया, 'रो अपने जनने वालों पर और साथ-साथ अपने जायों पर भी। खा ले अपनी पूंजी को...' घोड़ी के पीछे दौड़ता उसका बछेड़ा भी माली को मानो चिढ़ाता गया, 'ई...ही ही ही...!'

लोग समझ न पाए कि वे परमा को लौटा लाएं, मारपीट पर उतारू हुए इन भाइयों को शांत करें, चुप हो गई माली को दिलासा दें या भीतर हो रही गणेश-स्थापना के गीत गाएं?

यह कम नहीं था! कालू के घर बैठे कासम, वेचात आदि माली के शब्दों में 'दुश्मन राजी हो रहे थे।'

बूढ़े मावजी का पंद्रह साल का लड़का रामा तो जोर-जोर से बोलकर परमा पटेल

के घर सुलगी होली में घी होम रहा, 'अरे सुनिए-सुनिए कोई, नानिया के लग्न के गाने गाए जा रहे हैं। माली गाने गा रही है और बेटे साथ दे रहे हैं। वाह रे वाह! क्या मजमा जमा है!'

तमाशा ही कहलाएगा न यह? दोनों भाई लाठियां लिए हुए थे और बीच में माली उन्हें शांत कर रही थी।

'भैंसे-भैंसे लड़े और पेड़ों की जड़ टूटे।' रणछोड़-नाथा में से किसी का हाथ टूटा तो किसी का सिर फूटा जबकि माली की चूड़ियां ही झर गईं। और आगे चलकर क्या होगा सो तो राम जाने, पर गांव वालों को तरस आ गया। वेचात-कासम को ही बीच में आना पड़ा।

नाई के न्यौते से नहीं आए वे लोग, यह तमाशा देखने बिना न्यौते ही जमा हो गए। आपस में मजाक भी कर रहे थे, 'हमने तो सोचा था कि नानिया का गणेश बैठता है; लेकिन यहां तो तीनों बेटे गणेश बैठाए हैं।'

कोई दूसरा बोल उठा, 'अरे बुढ़िया भी साथ में बैठी है। उसे चोट कम पहुंची है क्या? सारा घर गणेश पूजने बैठा है, मेरे भाई!'

'और हल्दी तो सभी ने खून की मली है। उस हल्दी का रंग तो कच्चा पड़ जाता न!'

पर परमा के घर की लड़ाई देखकर कालू की मां को तनिक भी हर्ष नहीं हुआ बल्कि दुख ही हुआ। परमा रूठकर निकल पड़ा तो उसी घड़ी वह घर के पिछवाड़े वाले बाड़े में दौड़ गई। उस गलियारे की ओर से हांक लगाई, 'परमा भाई! परमा भाई! वापस लौटिए। न लौटे तो आपको कालिए की शपथ है।'

परंतु आखिरी शब्द सुनाई दे इसके पहले तो परमा की कबरी घोड़ी आधे गलियारे तक पहुंच चुकी थी। कालू की मां ने सिर्फ इतना ही सुना, 'कालू की हल्दी अभी उतारना मत।'

और रूपा कृतकृत्य बनकर परमा के पीछे ताकती ही रही, 'मेरी खातिर ही इसने घर छोड़ा न?'

गरमी की दोपहरी तप रही थी। खेतों के समतल विस्तार से ज्वालाएं उठ रही थीं। बचे-खुचे ढोर बरगद-आम के पेड़ों के नीचे जा बैठे थे, पंछी भी पत्तों में लुकछिप गए थे। चारों ओर सुनसान था। इस सारे फैलाव में एक मात्र परमा पटेल की घोड़ी ही रवाल चाल से चलती और धूल उड़ाती पानी के रेले की तरह चली जा रही थी। पीछे-पीछे वह बछेड़ा धूल के बादल उड़ा रहा था...

किसी की निगाह उस पर पड़ती तो यही कहता, 'घोड़ी पर चढ़ा है, पर बेचारा है कोई दुखियारा जीव।'

14

भगवान जो करे सो भला...

शाम होने आई और फूलजी की घोड़ी पर चढ़ा शंकर आंगन के सामने आ पहुंचा। वह रास्ते से परमा को भी खींच लाया था।

शंकर ने घोड़ी पर से छलांग मारते हुए कहा, 'कहां गई, रूपा चाची? लग्न पूजिए, चलिए।'

जब कि परमा ने अपने घर बधाई दी, 'रोओ अब अपने मां-बाप को। बेटा रह गया हल्दी चढ़ा। रणछोड़ भाई से कहिए कि करें पंचायत।'

दोनों की बात सही थी। यहां से उठा पंच नाना के ससुर के घर मिला था। फरियाद यों थी, 'इस अकेले मनोर पटेल के ही भानजी है कि यह किसी की मंगनी तुड़वाता है और किसी की जोड़ता है? मेरी बेटी का क्या गुनाह कि दामाद दुबारा ब्याहे? हम गरीब-गुरबों की आबरू ही नहीं है क्या?'

गिने-चुने अगुओं को छोड़कर बाकी को रोष तो था ही। क्यों न हो? सभी गरीब थे। सभी एक आवाज से बोल उठे, 'अबे तुम आबरूदारों की दुम ने यह क्या करना शुरू किया है? अपने बेटों की दो-दो औरतें करनी हैं और हम-से गरीबों की सगाइयां भी तोड़ देनी हैं क्या?'

किसी-किसी ने तो पेथा पटेल को सुना दिया, 'न्याय करना हो तो ठीक-से करिएगा, नहीं तो इस बार आपकी आबरू नहीं रह पाएगी।'

परंतु इनको क्या मालूम था कि खुद पेथा पटेल ने ही नाना के ससुर को सलाह दी थी, सहारा भी दिया था।

अनेक विरोधी खड़े करवा के, आधे दिन की माथापच्ची के बाद, पेथा पटेल ने फैसला दिया, 'ठासरा वाले जगा नरसी की लड़की की जैसे ही सगाई हुई कि वर पंद्रह दिन में मर गया, उसकी सगाई हो वाला खुशाल के लड़के कालू के साथ और कालिए वाली कन्या (राजू) ब्याही जाए जगा नरसी के भाई के साथ।'

यह सुनते ही सभी खुश हो उठे। कुछ तो बोल भी उठे, 'रंग है पेथा पटेल तेरी चौधराई का!'

'और वह परमा मुखिया का नानिया, गणेश बैठ गया है उसका? बिरादरी को

कालिए की हल्दी की फिक्र है तो इस आबरूवाले का...?'

पर मनोर के इस सवाल का जवाब तो पेथा पटेल ने साफ-साफ दे दिया, 'ए भाई मनोर!' पेथा पटेल ने पुकार कर दूर खड़े मनोर को बुलाया। सारा दालान चुप होकर सुनता रहा। पेथा ने कहना शुरू किया, 'आपके नानिया का गणेश बैठा है और उसने हल्दी मला है, यह बात तो सही है, पर वैसे तो मैं भी कहूं— उठो रे भाई कोई दो जने, ले आओ किसी के घर से आध सेर हल्दी और मल दो मुझे। बिरादरी कैसे कन्या ले आती है, देखूं?'

और सारा दालान ठहाका मारकर हंस पड़ा। मनोर तो मानो तेल में डूबी मक्खी!

अलबत्ता, इसके बाद राजू की सगाई कायम रखने के लिए उसने बहुत कोशिश की, पर ऐसा करने से पेथा जैसों को भरी जेब खाली करनी पड़ती न? और न करने पड़े तब भी बिरादरी को ही अपना थूका निगलना पड़ता न? इसी कारण यह बात भी न चल पाई और बिरादरी का फैसला अटल रहा।

शंकर ने बिरादरी के रू-ब-रू ही लग्न-पत्रिका लिखवाई और बिरादरी ने राजू का लग्न भी मनोर के द्वारा लिखवा लिया। पेथा पटेल ने लग्न-पत्रिकाएं सौंपते हुए, शंकर के साथ जगा को भी खड़ा किया, 'जा उठ जगा, अपने भाई को और बेटी को बिठा दे गणेश पूजने।'

शंकर भी फूलजी की घोड़ी पर चढ़ा। रास्ते में मिले परमा को सारी बात बताकर वापस आया।

पर बुड्ढे परमा के दुख की सीमा न थी। सारे जनम की— अरे सात पीढ़ियां और कमाई हुई आबरू को घर की औरतों ने घड़ी भर में धूल में मिला दिया। बुड्ढे को तो मुंह दिखाने की भी इच्छा नहीं हो रही थी, 'मेरा बेटा ही हल्दी मला रह गया!...' पर करे क्या?

जबकि माली तय नहीं कर पा रही थी कि खुदकुशी कर ले या घर में आग लगा ले या बुड्ढे की गरदन को काट खाए या...

उस ओर खाट में पड़ा रणछोड़ वेदना भूलकर भगवान से विनती करता रहा, 'यों ही यों— बस मौत ही दे दे राम!'

जबकि कालू के घर एक ओर अन्न की मनौती मान कर बैठी हुई रूपा उपवास छोड़ रही थी, दूसरी ओर आंगन में गीतों की झड़ी बरस रही थी—

'हरी गलनुं छोगुं ने गलनो गोटो केशरिया लाल,
को तो साह्यबा घोड़ीला वोंरी आलुं केशरिया लाल।'

(गुल की कलगी और गुल का गुच्छा, कहे तो हे साजन, सुंदर घोड़े भी खरीद दूं।)

राजू के घर मनोर घोड़ी पर चढ़कर आया था, पर जैसा कि खुद राजू की मां ने कहा, 'ले आए भाई कहावत?' खुद घरवालों को ही हर्ष नहीं था तब फिर गांववालों

में से कौन जाता गीत गाने?

और लोगों ने, जवान ही नहीं प्रौढ़ों ने भी, कल की कमी का बदला चुकाते मुक्त मन से गीत गाए। कासम ने तो जैसे कोई तीरंदाज भांति-भांति के तीर छोड़ता रहे वैसे नए-नए गीत शुरू किए—

'अंगरेस आव्यो रे जुदी जातनो
टोपीवालो आव्यो रे विलांत नो।
एनी गाड़ी मां भरिय छे लाल।
एनी मढमना बोल काला काला, रे अंगरेस आव्यो।
ए तो सपैंड़ा लाव्यो छे माता,
एनी मढमना गाल राता राता, रे अंगरेस आव्यो।'

(अंगरेज आया है अलग तरह का, टोपी वाला और विलायती। उसकी गाड़ी में भरे हैं कोयले। उसकी मैडम के बोल हैं तुतले-तुतले। वह तो सिपाही लाया है मस्त, उसकी मैडम के गाल हैं लाल-लाल, रे अंगरेज आया है।)

लोगों के लिए अंगरेज, गाड़ी और मैडम सब-कुछ नया था। हर किसी ने ध्यान से सुना और उत्साह से गाया। पर कासम तो अधिक मौज में आ गया था। गाड़ी का ही एक और गीत शुरू किया। वह नाचता भी अलग ढंग से था। कासम ने चार-चार जवानों की टोलियां बनाकर एक-एक के कंधे पर हाथ रखवाए—

'गाड़ी सड़प दई ने आवी रे रामा राठोड़!
गाड़ी डुंगर मां अचकाणी रे रामा राठोड़!
गाड़ी हाले छे के चाले रे रामा राठोड़!
गाड़ी कोदाला मंगावे रे रामा राठोड़!
गाड़ी पावड़ा मंगावे रे रामा राठोड़!
गाड़ी रेलवाईओ पथरावे रे रामा राठोड़!
गाड़ी सड़प दईने चाली रे रामा राठोड़!

(हे रामा राठोड़, गाड़ी तेज गति से आई। गाड़ी डूंगर में ठिठक गई। गाड़ी न हिलती है, न चलती है। गाड़ी कुदाल मंगवाती है, गाड़ी फावड़े मंगवाती है, गाड़ी रेलवे की लाइन बिछाती है, गाड़ी एकदम चल पड़ी रे!)

स्त्रियों को भी मौज आ गई और शंकर, नाथा तथा रामा की पत्नियां पुरुषों का अनुकरण करने लगीं। गाड़ी की तरह ठिठकना, आगे-पीछे होना और 'सड़प-दईने' (एकदम)—इन शब्दों के साथ पांच-पांच हाथ की छलांगें मारना! गानेवालों को ही नहीं, देखनेवालों को भी बड़ा मजा आया। वही गीत दुबारा गया गया और इस वक्त तो युवतियां भी युवकों की तरह ही, बल्कि ज्यादा नजाकत से 'हाले के छे चाले रे' (न हिलती है, न चलती है) पंक्ति बोलते समय डोलती थीं। आखिरी पंक्ति पर भी

अनूठी चपलता से 'सड़प-दईने' (एकदम) चलती थीं।

रात होने पर लोग खाना खाने गए सो भी उतावली से वापस आने को और इस तरह लगभग सारी रात गीतों की झड़ी होती रही। सामने वाले घर में परमा पटेल भी ऊब रहा था। फिर माली, रणछोड़ और नाना की तो बात ही क्या? और रात के वक्त जाएं भी कहां?...

परंतु दिन में भी कम धमाल नहीं था। घेरे में गाना बंद हुआ तो स्त्रियों के गाने शुरू हो गए। तुर्रा यह कि कालू के घर आज बिरादरी का भोज था। गांव का युवा-वर्ग भट्टियां खोदने में और कड़ाहे चढ़ाने में लग गया, वृद्ध-प्रौढ़ सीधा तौलने में और हिसाब गिनने में लगे, 'एक मन पिसान में छब्बीस सेर गुड़ चाहिए तो ग्यारह दस सेरी में कितना गुड़ डाला जाए?'

दस-बारह आदमी कंकरियां गिनकर हिसाब लगा रहे थे। एक टोली भी ऐसी नहीं थी जो दूसरी टोली की गिनती को कबूल करे। कबूल करे कैसे? दोनों की गिनती एक-सी आए तभी कांटा मिला कहा जाएगा ना। और कांटा मिले तभी हिसाब सही गिना जाएगा ना?

और इस तरह ये हिसाब की धमाल में थे। तो दूसरी ओर गीत गाने में रत स्त्रियों को सुध-बुध ही नहीं थी। पिछले खंड में अदहन उबालते युवकों की दुनिया निराली ही थी। वे प्रसन्न थे जैसे अगले खंड वाली स्त्रियों को देखकर ही खिल उठे हों—वे हंस रहे थे, कभी-कभी ठिठोली भी करने लग जाते थे...

यह सारी धमाल माली के लिए असह्य हो गई। और अच्छा ही हुआ कि वह अपने बापू के घर—दूसरे मुहल्ले में चली गई, नहीं तो...

फिर भी गश-सा आ गया था। और ऐसा क्यों न हो? आंखों को बंद कर दिया था; लेकिन कान तो खुले ही थे न?

हल्दी लेकर आ रही उस गाड़ी की झमक सुनाई देती रही। आस-पास के उन छह-सात गांवों से भोजन के लिए आ रही युवतियां अपनी बुलंद आवाज से गीत गाकर मौसम का यह पहला लग्न मुक्त हृदय और मन से मना रही थीं। माली को तो ऐसा ही लग रहा था जैसे चारों ओर से गीत का फंदा डालकर ये बहकी हुई औरतें उसका गला घोंट देने पर उतारू हो गई हैं।

भोजन शुरू होने पर भी स्त्रियों के गीत न रुके।

पिछले मुहल्ले में माली स्वगत ही झगड़ने लगी, 'न जाने ये रांड़ खाने आती हैं या गाने? भगवान ने इनके मुंह भी किस चीज से गढ़े हैं?...'

और सारी रात माली इस पाटी से उस पाटी पर करवट बदलती रही। कालू के घर अंतिम रात होने के कारण ज्यादा धमाल थी, उल्लास था; आवाज और पैर में भी मानो दुगुना जोर आ गया था। क्षण भर तो माली को लगा कि ये कानों का पर्दा ही फाड़ डालेंगे।

परंतु कलेजे का बांध टूट गया और माली उस दिन की तरह ही रोने लगी—अकेली सिर पटकती रही—सिर के बाल नोंचती रही, 'बा...प! मेरा बेटा हल्दी लगा रह गया इसीलिए तुम सब...'

सुबह होते ही माली ने नाना के जरिए अपने घर 'हुक्म' भिजवाया, 'खबरदार अगर कोई कलमुंहे की बारात में गया तो। और नाथा की बहू से कह देना कि गाना गाने गई थी वह तो मैंने बर्दाश्त कर लिया है, लेकिन अगर बारात में गई तो समझ लेना कि इस घर में फिर पैर नहीं रखने दूंगी।' बूढ़े के लिए भी ये ही शब्द थे।

फिर भी नाथा की बहू ने नहीं माना और सो भी नाना के शब्दों में कहें तो 'ठाठ से गाड़ी में बैठकर' गई।

माली के लिए ये समाचार असह्य हो गए। मन से और तन से टूट गई। फिर भी 'जिसका घर फूटा उसका करम फूटा!' कहती हुई खाट से यकायक उतर पड़ी।

एक ओर घोड़ियों जैसे शंकर के बैल घुंघरू बजाते उन विस्तृत खेतों में धूल के बादल रचते उड़ रहे थे और हर्षभरी बराती युवतियों के कंठ से गीत की सरिता बह रही थी—

एक झालावारी सोपारी नुं झाड़ छे,
अमारा कालु भाई ने टूंपियानी होश छे,
वेवाई ना मले तो अमने केई में...ल
झालावाड़ी सोपारी नुं झाड़ छे।

(एक झालावाड़ी सुपारी का पेड़ है। हमारे कालूभाई को सोने की हंसली की उम्मीद है। हे समधी, तुझे न मिल पाए तो हमसे कह दे।)

तो दूसरी ओर परमा के घर गालियां गाई जा रही थीं, रात होने पर हिस्से बांटे जा रहे थे...

राजू के घर भी बरात आई और अलस्सुबह किसी जनेऊधारी ने बाजे वालों से 'बजाइए ढोल' कहके सप्तपदी के मंत्रों का पाठ शुरू किया :

'निद्रा महीं नहि हतुं तनभान ज्यारे
जेणे जुवो पूरण रक्षण कीधुं त्यारे...'

(नींद में जब देह का खयाल नहीं था उस वक्त देखिए जिसने पूरी तरह रक्षा की...)

और इस तरह ढोल-शहनाई के शोर में ब्राह्मण देवता ने वर-कन्या के हाथ भाई, बहन के द्वारा हाथ पकड़कर मिला दिए! शाम के वक्त चढ़ाया हुआ, कुंकुम उंड़ेले गए। दूसरी सुबह छोटी-सी राजू गाड़ी में बैठकर रवाना भी हो गई...

शाम के वक्त कालू की बरात ने बहू के साथ गांव में प्रवेश किया।

रूपा ने मुहल्ले में शांति देखी और सुना कि रणछोड़, माली और नाना उस

मुहल्ले में चले गए हैं—यह घर नाथा तथा परमा के हिस्से में आया है, इससे वह बेहद खुश हो उठी। जिस-तिस से कहने लगी, 'मेरे कालिए की बहू नेक कदम निकली। ऐसा सुख—मुहल्ले में इतनी शांति, तो ससुराल आने के बाद मैंने कभी देखी ही नहीं थी! ...'

इसके अलावा बेटे के विवाह में एक पैसे का भी कर्ज नहीं लेना पड़ा। उन ग्यारह बीसी में ही सारा निबट गया था और वह भी इस नई बहू के कारण ही न?

और वृद्धा इस नेक कदमी की बात को तो यहां तक मानने लगी कि अब तो उस सुंदर राजू के साथ चेचक के दाग से खुरदुरे मुंहवाली भली की तुलना करना भूल गईं, बल्कि खुश होने लगीं, 'होगा! हम मेहनती लोगों को रूप देखकर थोड़े ही बैठे रहना है? और समझदारी भी—मेरे कालिए में है वही बहुत है। शंकर कहता है, वह ठीक ही है। कालिए से दो साल बड़ी है सो ठीक है। फायदा यह है कि ससुराल में दो साल पहले ही आ जाएगी। और कामकाज में भी मजबूत है।' और बार-बार बड़बड़ाने लगीं, 'ना ना! बहू के कदम तो अच्छे ही नहीं तो— ' और राजू से तुलना करने के बजाय मुहल्ले की पहले की अशांति और आज की शांति की तुलना करने लगीं, बार-बार कहतीं, 'जो भी हो, पर बहू से ऋणानुबंध तो है ही! कदम तो उसके अच्छे हैं ही! वे सच ही बता रहे थे कि भगवान जो करे सो भला।' इसके साथ रूपा को पति याद आए।

उसकी आंखें गीली हो गईं और वह उलझ गई, 'भगवान ने उन्हें सुख तो देखने न दिया तब अच्छा क्या किया...और क्यों मान लूं कि वह छेड़ी गई नागिन अब भी हमें सुख पहुंचने देगी?' और फिर रूपा को भगवान का ही अवलंबन लेना पड़ा, 'भले ही वह शोर मचाती रहे, मेरे सिर पर हजार हाथ वाला जो बैठा है।'

15

अबोले राजू-कालू

रूपा ने नई बहू के लिए मन तो मना लिया, पर वह जब-जब राजू को देखती, उसकी अंतरात्मा कलप उठती। क्यों न कलपे? राजू को भगवान ने रूप भी उतना ही दिया था। दिन प्रतिदिन वह खिलती जा रही थी—वसंत में जैसे कोई लता खिले!

यही नहीं, राजू अब भी कालू की मां के लिए 'सासू' शब्द का प्रयोग करती थी। अब तो वह सयानी हो गई थी। मां ने भी उसे अनेक बार टोका था, फिर भी वह भूल जाती और यही बोल बैठती।

एक दिन तो वह अपनी मां से इस तरह बोल बैठी कि गांव वाले सुन लें, 'मां, मां, हमारी भूरी (भैंस) और मेरी सास की चांदरी दोनों...'

पर मां की झिड़की ने राजू के इन शब्दों को होंठों में ही जमा दिया। दो-चार स्त्रियां हंस पड़ीं। रणछोड़ की बहू ने तो टोका भी, 'छोरी, कितनी सास हैं तेरी?'

कालू की मां भी खिसिया गई। राजू की मां ने तो उस तिराहे पर ही बेटी को फटकारा, 'मां मेरी! इतनी बार लड़ती हूं, फिर भी भूलती नहीं...खबरदार, फिर से कभी बोली तो चीर डालूंगी, याद रख तू!'

पर घर जाकर मां खुद ही रोने लगी। सगाई तोड़ने वालों को शाप ही देने लगी, 'निरबंसी हो जाना, मेरा महंगा सगा...'

कालू की मां ने भी घर के कोने में आंसू बहाए।

दिन-प्रतिदिन किशोर अवस्था में प्रवेश करते कालू के नसीब में न तो रोना ही बदा था, न आंसू बहाना। किसी के आगे दिल का गुबार निकालने जैसा भी नहीं रहा था। भारी सांस लेते हुए वह इतना ही बड़बड़ाता, 'जो होना था सो हो गया, अब क्या!'

पर कालू-राजू की दुनिया...वे बच्चे, अभी उसे भूले नहीं थे। भूल सकते भी नहीं थे। चांदनी रात में 'खारपाट' या 'आंख मिचौनी', 'सात ताली' या 'बाई-बाई चारजी' के खेल खेलते हुए ये भूतकाल के वर-कन्या भिड़ जाते या गलती से एक-दूसरे को पकड़ लेते तो बच्चे चीख उठते, 'ए! राजुड़ी ने अपने वर को पकड़

लिया, ए...!'

कालू खिसियाना पड़ जाता। राजू तो शर्म से भाग जाती, चिड़िया की तरह उड़ जाती। डर की मारी घर भी नहीं जाती, किसी निर्जन कोने में दुबक जाती।

पर अब तो वे इतने अधिक सयाने हो गए थे कि कालू खेलता नजर आता तो राजू हिस्सा न लेती और राजू को खेलती देख कालू एक ओर हाथ बांधे खड़ा रहता।

परंतु सरकते समय ने और उस समाज ने एक-दूसरे को दूर से देखने का अधिकार भी छीन लिया। 'गलगुच्छे' के फूल की तरह विकसित होती राजू के नसीब से खेलना तो गया, दूर से देखना भी चला गया। मां ने मनाही की, 'अब तू कितनी बड़ी हुई, इसका खयाल है तुझे? खबरदार! अगर खेलने गई।'

इस ओर कालू भी ज्यों-ज्यों सयाना होता गया, अकड़कर चलने लगा, 'जिसके कारण मेरी बेइज्जती हुई उससे मैं बात करूं?...'

इस तरह किशोरावस्था और यौवन के बीच के ये चार-पांच साल दोनों के बीच अबोले में ही गए, तनाव में ही गुजर गए। कभी पानी भरते वक्त मुलाकात हो जाती तो इस प्रकार आंख फेरकर वे चले जाते जैसे दुश्मन हों। एक बार सिर पर बोझ चढ़वाने के लिए राह देखती राजू को विवश होकर कालू से मदद लेनी पड़ी, पर वह भी बिना बोले ही, सामने देखे बिना ही।

पर सच पूछें तो कालू-राजू अपने-अपने मन से ही बातचीत बंद किए बैठे थे, बाकी समाज तो इतने वर्षों की अवधि में बिलकुल भूल गया था। प्रसंग छिड़ता तो कह देता—ऐसी बातों में अचरज जैसा कुछ भी नहीं था या कुछ अनुचित भी नहीं था। सगाई में हेर-फेर तो सहज बात थी, अनेक जगह ऐसा होता रहता। है। बदली हुई सगाई वाले बड़े होने पर कहीं मिलते तो आमने-सामने बात भी कर लेते, 'हमारी सगाई उस कारण से बदल दी गई, नहीं तो इस समय हम पति-पत्नी होते।' और ऐसा कहके खुद हंसते और सुनने वालों को भी हंसाते।

कालू-राजू को भी सिर्फ इतने ही शब्दों की जरूरत थी। पर इन शब्दों का पहले उच्चारण कौन करे? कालू-कोदर के बीच बचपन की दोस्ती फिर से सजीव हुई थी। एक-दूसरे के घर जाने-आने भी लगे थे। वृद्धाओं के साथ भी बातचीत करने लगे थे। खुद वृद्धाएं ही दुख के साथ उस पुरानी बात को याद करती थीं। पर बड़ी इच्छा होने पर भी कालू राजू से बात न कर सका और न बोल पाई राजू ही! दोनों यही चाहते थे कि वह नहीं, दूसरा बात शुरू करे।

एक बार गांव के युवक-युवती झाला देव के मेले में जाने को निकले। मसें अभी ठीक से भीगी भी नहीं थीं, फिर भी कालू ने अपनी मंडली जमाई। युवकों में अगुआ माने जाने वाले नाना की मंडली में न वह खुद गया न उसने कोदर को जाने दिया। शंकर के पंद्रह वर्ष के पुत्र भगा को भी रोक लिया, 'जाने दे जिन्हें जाना हो। हमें तो

निकलना है सबके बाद में और पहुंचना है सबसे पहले।'

भगा की बहन रूखी ने यह बात जान ली। उस ओर राजू को भी मालूम हुआ, पर इच्छा होने पर भी इन लोगों के साथ चलने की हिम्मत नहीं हो पाई। चाहे कैसे भी हों ये थे तो लड़के ही और रास्ता गुजरता था वीराने से।

लेकिन उस घने जंगल में प्रवेश करते ही इन युवतियों के कानों से अपने गीत के बीच पीछे से आता गीत टकराया—

धीरो वो'रीला ने हाटे रे, धीरो रे मेवासी।
धीरो बंगड़ी मूलवी जुवे रे, धीरो रे मेवासी।
धीरो पेरी फेरवी जुवे रे, धीरो रे मेवासी।
धीरो कोनो सारु वोंरो रे, धीरो रे मेवासी।
मारे नानीशी धणियाणी रे, धीरो रे मेवासी।
मारे एना सारु वोरुं रे, धीरो रे मेवासी।
धीरो वाणीलाने हाटे रे, धीरो रे मेवासी।

(मेवास का निवासी धीरो पहुंचा है बनिए की दुकान में। धीरो चूड़ियों का मोल पूछता है, धीरो उन्हें पहनकर देखता है। (पूछा गया :) 'धीरा, किसके लिए खरीद रहे हो?' 'अपनी छोटी-सी ब्याहता है। मैं उसके लिए ही खरीद रहा हूं।' धीरो बनिए की दुकान में है।)

कालू, कोदर आदि थे तो पांच-छह आदमी ही, पर आवाज निकलती थी पच्चीस आदमियों जितनी। राजू, रूखी आदि देखती हैं तो सबसे आगे कालू, कोदर तथा भगा पांत में बंधे तेज बढ़ते चले आ रहे हैं। मध्यम कद और चौड़ी काठी वाले कालू ने ऊपर सिरा रखकर साफा बांधा है। कान में मरूए के फूल खोंसे हैं और हाथ में तीर-कमठा है। कोदर के हाथ में तलवार है, जबकि भगा ने लोहांगी लाठी पकड़ी है...

और इन जवानों की हिम्मत देखकर या फिर इन्हें रास्ता काटकर आगे बढ़ते देख, या नाना-रामा के गीतों से इन लोगों के गीतों में और ही झमक देखकर...जो भी हो, पर रूखी भी इनके साथ चल निकली। राजू तो पहले से ही ऐसा चाहती थी। और ये दो मुख्य युवतियां चलीं तो फिर कौन पीछे रह सकता था?

देखते-देखते तो आगे चलते नाना, रामा आदि चार-छह युवक अकेले रह गए। एरंडों के आस-पास की फूलभरी बाड़ी निहायत बिखर गई थी! हां, एकमात्र नाना की लंगड़ी बहू खिंच रही थी पीछे-पीछे।

'हमने क्या चूड़ियां पहनी हैं, नाना! चलो तेज।' रामा ने कहा।

पर नाना ने क्षोभ के कारण या फिर उन लोगों से आगे निकल जाने की हिम्मत न होने से या इसे लड़कपन समझकर, लेकिन पत्नी पर दया खाकर नहीं—हंसकर इतना ही कहा, 'जाने दो न! ये लड़कियां गई हैं, पर रास्ते में शराब पिए भील मिल

गए तो देखना मजा!'

मेले में पहुंचकर देखा कि सभी सही-सलामत हैं। मस्त बनकर घूम रहे हैं और कालू की अगुआई में खरीदारी कर रहे हैं।

कोदर, भगा आदि तीर के लिए डंठल खरीदने गए और अकेले कालू को इन युवतियों के बीच देखकर नाना ऐसा हो गया जैसे उसके पेट में उबला तेल उंड़ेल दिया गया हो। अरे, उसकी खोड़ी भी उस मंडली में जा मिली! कालू के कंधे जा लगी, 'कालू भाई, लीजिए न यह इकन्नी, मुझे अच्छी-सी चूड़ियां खरीदकर दीजिए न!'

पर कालू कितनों के लिए खरीदारी करे? राजू अपने सब पैसे—यानी चवन्नी हाथ में लिए हुए थी। कालू भी हठ पर आया था, 'वह कहे तभी लाकर दूंगा।'

राजू की रुकावट भी कहां कम थी? रूखी ने उससे उस बोहरे की दुकान के आगे पूछा, 'अरी बोल न? तुझे क्या लेना है? चोली की कसें लेने को कह रही थी न?'

पर राजू तो 'तुझे लेना हो सो ले ले न?' कहकर चुप ही रही। चूड़ियां खरीदते वक्त तो टोक भी दिया, 'हमें कौन ला देनेवाला था, बहन!' इसके बाद सीधे ढंग से कालू से न कहा सो न कहा।

आखिर कालू को ही झुकना पड़ा, वह भी अलग ढंग से। उसने दो जोड़ी मोतीभरी कसें खरीदीं और दुअन्नी की चूड़ियां लीं। एक मनकेभरी इंडुरी भी रख ली। रूखी, नाना की, खोड़ी वगैरह तो उसे चिढ़ाने ही लगीं, 'आप भी उस धीरे की तरह काम कर रहे हैं न, कालू भाई!...मेले में भली भाभी भी आई हैं! वे आपसे बड़ी हैं न,' और रूखी ने कान में पूछा, 'तब फिर आपकी कौन-सी छोटी-सी ब्याहता है?'

कालू क्या जवाब दे?

पर उसके जवाब दिए बिना ही राजू समझ गई, इसीलिए तो उसने निजी खरीदी करना शुरू कर दिया न? कालू की बड़ी इच्छा थी कि उसे मना करे, कह दे, 'यह खरीदा तो है!'

और राजू को इंडुरी खरीदते देखकर उसने वे सारी चीजें रूखी को सौंप दीं, 'ले, दे दे रुखली, दे दे बोहरे को वह इंडुरी वापस।'

अल्हड रूखी तो हंस पड़ी, 'हं...! मैं नहीं कह रही थी कि...'

तभी राजू ने सारी बाजी पलट दी। सुधारी या बिगाड़ दी सो तो वह जाने! 'तुझे खयाल ही नहीं आता कुछ? कहा, तो मेरी भतीजी के लिए है।'

सचमुच राजू ने भली को खोज निकाला और सारी चीजें सौंप दीं, 'भली बहन, यह तुम्हारे लिए ही उन्होंने भेजी हैं।'

गरीब घर की लड़की भली तो बेहद खुश हो उठी।

इधर कालू ऐसा खिसियाना हो गया मानो किसी ने थप्पड़ जड़ दिया।...

वापस घर पहुंच कर भी उस विचार का अंत नहीं आया। कोई हल ही न मिला,

'राजू सचमुच इतनी रूठी हुई है या फिर रुखली और वे सब जान गई थीं, इसी कारण?' यह सवाल राजू से ही पूछने की इच्छा थी पर उस मेले में, साथ-साथ घूमते-फिरते रहे और उतने सारे मौके थे तब भी, राजू के प्रयत्न थे फिर भी, ऐसा नहीं हो पाया। बचपन से लेकर युवावस्था तक के अबोले न टूटे वह यहां गांव में कैसे टूट सकते थे? इतना ही नहीं, जो टूटने को थे वे उलटे बढ़ गए।

16

युवा-दंश

युवावस्था में प्रवेश करते ही राजू का रूप खिलने लगा, जैसे चैत-वैशाख की प्रफुल्ल वनराजि हो! नुकीली आंखों में मस्ती उभरने लगी। चाल में चमक आई और बोलने में तो— बात-बात में ठट्ठा, बात-बात में मजाक।

परंतु उस हंसी-मजाक को सुनना कालू के नसीब में नहीं था। उसके भाग्य में तो भगा, रामा आदि को मिलता यह प्रेम देखकर जलना ही था और वह भी मन ही मन। बाद में तो कालू को लग गया कि मुझे चिढ़ाने के लिए ही वह रामा-भगा से हंसी-मजाक करने लगती है।

'रामा भाई, इंद्रायन बड़े खूबसूरत होते हैं पर किस काम के! रूप देखकर खाने जाए तो मौत ही हो जाए न?'

कालू इसका अर्थ समझने की कोशिश करता और एक में से अनेक अर्थ निकलते देख वह खुद ही उलझ जाता। वह राजू पर नाराज हो जाता, 'वह अकेले में चाहे जो कुछ बोले, पर इस तरह मुझे सुनाने का क्या कारण है?'

एक दिन तो राजू ने हद ही कर दी। दोपहर के समय खेत से घर की ओर लौटते कालू ने दो खेत की दूरी से एकपलिया पर चढ़ी राजू को देखा और उसकी हांक भी सुनी, 'नाना भाई, जरा बोझा चढ़ाना।'

आगे जा रहा नाना सिर तक ऊंची मकई में गया। यह देखकर कालू का जी जल गया। राजू ने आज तो हद कर दी थी। उसको देखकर भी राजू ने उस दुश्मन को बोझा चढ़ाने के लिए बुलाया!

कालू को शंका हुई, 'या फिर उसने मुझे देखा नहीं है? शायद आपस में 'घपला' चलता हो?...' और वह भी मकई में घुस गया। दबे पांव जाकर जमीन पर लेट गया कि दोनों को देख सके।

नाना को आ पहुंचा देखकर राजू बोझा उठाने के लिए झुकी, जब कि नाना हंसता रहा, खड़े-खड़े उसने कहा, 'बोझा चढ़ाने का कुछ मिलेगा या बस रूखा-सूखा ही?'

नाना बेशक सुंदर था : ऊंचा, गोरा और पतला। कोहनी पर सोने का कड़ा। उंगलियों पर रूपे की अंगूठियां। कान की लौ में कड़ियां। कान के ऊपर के भाग में

भी बालियां। कानों को घेरते सोने के कुंडल। साथ ही गाने, दोहे आदि में अव्वल, बातचीत में भी पटु।

नाना के शब्द तो कालू पूरे सुन न पाया, पर मतलब तो ताड़ ही गया। इसके साथ ही उसकी नाड़ियां तंग हो बैठीं।

'लो न चढ़ाते हो तो।' राजू की आवाज रूठी हुई थी।

'अरे ऐसे भी कोई चढ़ाता होगा? कब का मैं तुझे खोज रहा हूं, यह तू जानती है? तेरे पीछे तो मैं पागल हूं, राजू!' आखिरी वाक्य बोलते हुए नाना ने हाथ बढ़ाया।

कालू की सांस रुक गई। ललकारे न ललकारे तभी तो 'थेड्' करती आवाज हुई। और खुश हो कर कालू बोल पड़ा : 'हा...श! ठीक लगी।'

राजू की ओर बढ़ता नाना खिसियाना पड़ गया। कुत्ता जैसे दुम दबाकर खिसक जाए वैसे ही वह मकई में नदारद हो गया।

हर्षावेश में आकर कालू उमंग से बोझा चढ़ाने चला, पर राजू ने, उसे देखने पर भी दो मन का बोझा सिर पर ले लिया। कालू के ये शब्द 'धन्य है राजुड़ी तेरे मां-बाप।' होंठों में ही रह गए।

और यों, अबोले आज भी न टूटे।

परंतु राजू को इस तरह पहचानकर तो कालू का जी दुगुना जलने लगा, 'अरेरे! राजुड़ी-सी पत्नी होती...सारा जन्म ही उजला हो जाता!...देखकर भूख न लगती...' और भीतर-ही-भीतर अकुलाता रहा, 'क्या करूं, क्या न करूं!' पर अंत में वही निरुपाय नि:श्वास! वैसे मस्तिष्क में आज भी राजू के विचार को पगुरा रहा था।

गांव में प्रवेश करते ही उसे मुहल्ले से किसी के रोने की आवाज आई। कालू ने उस आवाज को पहचान लिया, राजू, इस तरह जोरों से रो रही थी मानो उसके मां-बाप मर गए हों। बिलाप कर रही होती तो भी उसका दुख कुछ समझा जाता, ताड़ा जा सकता। पर वह तो छोटे बच्चे की तरह रो रही थी।

फिर भी कालू समझ गया, 'और कुछ नहीं है! जिस दुख से मेरा दिल रोता है उसी दुख से राजू भी रोती है!'

कालू का यह विश्वास सच था या झूठ सो राम ही जाने, बाकी खुद राजू भी न जानती थी। मां बहुत पूछती थी, 'पर तू यों बोझा उतारते ही रोने बैठी है सो हुआ क्या?...किसी ने गाली-गलौज किया है, छोरी, कोई जानवर तो नहीं काट गया मुआ?'

राजू को कुछ काट तो जरूर गया था, पर जैसा कि उसकी मां सोच रही थी वैसा सांप-चीतल नहीं। मां देख रही थी कि हाथ-पैर भी किसी ने काटा नहीं था। डंक तो लगा था उसकी अंतरात्मा अंतराल में और सो भी मिट्टी में मिल गए उस अतीत जीवन का। कल्पना ने यौवन को छेड़ा और प्रणय रग-रग में फैल गया।

बोझा लेकर घर के दरवाजे में प्रवेश करते ही बोझे पर से वह चिड़िया उड़ी—मनप्रदेश से कल्पना भी! इसके साथ राजू भी समझ गई कि रग-रग में फैल

चुके उस जहर का इलाज नहीं है, उतार नहीं है, उतारने वाला जीवन में नहीं मिलने वाला...और—

आशाविहीन हो गए अंतर में बिलौने चले, उन नुकीली आंखों में आंसू भर आए और—

टूटी आशा के लिए रुदन के सिवा दूसरा उपाय ही क्या था?

चिंतातुर मां से राजू, गुस्सा करके पूछती कोदर की पत्नी केशर से, जमा हुए लोगों से क्या कहे? क्या जवाब दे? कोई जवाब था नहीं, इसीलिए तो रुदन का जवाब रुदन से दे रही थी न?

पर समझे कौन? समझा था एकमात्र कालू ने जो काफी देर से देख रहा था। वह मन में ही बड़बड़ाया, 'लोग क्यों इसके पीछे लगे हैं? सांपों ने भी नहीं काटा और न ही काटा चीतल ने भी। डंक लगे हैं जवानी के, और कुछ भी नहीं।'

उसने लोगों को बिखेर दिया और कोदर को साथ लेकर खेत में चला, 'चल आज तो भुट्टे सेकेंगे।'

न जाने क्यों आज उसका अंतर किसी अवर्णनीय आनंद से नाच रहा था, मन तृप्ति से मानो छलक रहा था, जैसे किसी दरिद्रनारायण को बेशुमार धनधान्य मिल गया हो।

17

गई गुजरी और पार लगी!

शुरू होते भादो की शाम थी। कोरा दिन होने पर भी बादल आ-जा रहे थे। मक्के की फसल से भरे विस्तृत खेतों पर धूप-छांह की बनजार बही जा रही थी। मंद गति से चलती हवा में मक्के की फसल मस्त होकर झूम रही थी। तोते-कौओं के झुंड भी इस ठंडे प्रहर में उतर आए थे, पर उन्हें कहीं चैन न था। उतरने के साथ ही एक-पलिया पर से रखवाला चीख उठता, 'तोते...तोते...! ए रुक जा तब!'

और साहस करके कूद पड़े उन हरे रंग के पक्षियों को गोफन से छूटा पत्थर 'फड़ाक्' करके उड़ा देता।

व्यर्थ कोशिश करके थके पंछी किसी पेड़ का सहारा लेने उड़ते, खासकर कालू के खेत वाले उस बरगद का ही।

पर वहां भी यह नहीं था कि कालू उन्हें चैन लेने देता। कालू-कोदर दोनों छह-आठ हाथ की ढंकी उस लंबी-चौड़ी झोंपड़ी में न बैठकर तोतों की फिक्र में, सेंके हुए दो-दो भुट्टे लेकर, पांच-सात हाथ की खुली छत पर आ बैठे। खुले बदन बैठे कालू का जी भले ही बातों में था, पर आंखें तो खेत के चारों ओर घूम रही थीं। बरगद पर तो बार-बार पत्थर फेंकने ही पड़ते थे।

कोदर कहे बिना रह न पाया, 'तेरे बाड़े की रखवाली तो तू ही कर सके, भाई! और तू गोफन का उपयोग नहीं करता। तेरे हाथ भी किस मिट्टी के बने हैं न जाने!'

कालू के हाथ मानो सचमुच ही फौलादी थे। 'तू गोफन से फेंक और मैं हाथ से फेंकूं। देखें, किसका पत्थर दूर जाता है?' कालू ने गर्व से कहा।

कोदर को भी धुन आई, 'ऐसी बड़ाई मत कर!'

'तो उठ तब। ले यह गोफना।' और कालू ने झोंपड़े पर से गोफना खींचकर फेंका। 'ले उठ, देखें तो सही।'

कालू झोंपड़ी की ओर खिसका और कोदर कूड़े पर पड़े पत्थरों में से एक लेकर खड़ा हुआ, गोफना घुमाते कहा, 'देखते रहना ठीक से!'

छूटे पत्थर पर नजर रखते हुए कालू बोला, 'ओ...वह गिरा उस क्यारी में! ठीक उस बबूल के ठूंठ के पास पड़ा है।'

कोदर सहमत हुआ, 'हां, वहीं पड़ा है। ले अब आ जा तू। पर देख, छोटा मत लेना, वह तो हवा के बहाव में...'

'अरे तू दे वह।'

परंतु कोदर ने भी बड़ा न देकर नाप का ही पत्थर दिया, 'ले फेंक इसे।'

कालू ने पत्थर लेते पैर जमाए, 'देखते रहना, हां!'

और उसकी मज़बूत काठी पत्थर वाले हाथ की ओर मुड़ी। हाथ लगभग पैर की एंड़ी तक पहुंचा। सारा बदन कमठा हो गया। नजर थी दो खेत की दूरी पर...। कोदर को ऐसा ही लग रहा था जैसे नदी के उन पेड़ों पर निशाना ताका हो।

हाथ का पत्थर कालू ने जहां तक सोचा था वहां तक तो न पहुंचा, पर कोदर के गोफने वाले पत्थर से आगे तो गया ही और वह भी एक-दो हाथ नहीं पच्चीस हाथ के करीब।

कोदर तो कालू के उस विशाल वक्षस्थल और चौड़े कंधों की ओर ताकता रहा। खुश होते बोल उठा, 'क्या जोर है तुझमें!'

'भाई, भगवान ने अकेले आदमी का जन्म दिया और फिर इतना जोर भी न दे तो...'

'तो अकेला क्यों दुखी हो रहा है? बुला ले न अपनी बहू को! मेरी मां कह रही थी कि बेचारी बुढ़िया से अब घर की रगड़ नहीं होती। लगा रह न सास-ससुर के पीछे कि गौना करवा दे। भेज दे परमा चाचा को!'

कोदर की बात कालू समझता था, पर वह उसके मतलब की न थी। उसने उदास भाव से कहा...

'काम करवाना छोड़कर कौन गौना करवा देगा, भाई? बिना बच्चों की बेटी और दुधार भैंस किसको प्यारी न हो?' और उसने कह दिया, 'तुम-से समझदार ही जब नासमझ बन बैठे, फिर क्या कहने?'

कोदर ने अपना बचाव किया, 'राजुड़ी का तो—मेरी मां कह रही थी कि इस दिवाली पर ही गौना करवा देना है। पर तेरी बहू कितने बरसों से गौने लायक हो गई है!'

'हमारी बिरादरी में यही तो दुख है। लड़की कहीं मुंह काला करे तभी आंख खुलती है!'

सच पूछें तो कालू मात्र कोदर को ही सुना रहा था, वरना वह न तो अपने काम की फिक्र कर रहा था और न ही उसे पत्नी की कामना थी। चाहता था एक ही बात, 'राजुड़ी ससुराल चली जाए तो चिंता टले, नहीं तो,' और उसने कोदर से ही कहा, 'देखा नहीं! उस मावले की बहन ने घपला किया वह? मेरे बापू तो कहते थे कि बेटी ज्यों ही पीछे घूमकर चोली पहने, समझ लेना चाहिए कि अब वह गौने लायक हो गई है।' और बरगद पर बैठे तोतों का खयाल आते ही वह खड़ा हो गया, 'तोते, तोते,

तोते...! ओ तेरी...जात के, सारा बरगद भर गया है और...? दिन भी ढल गया, अब तो पीछा छोड़ो!'

'ओ हो हो! आसमान भर गया है क्या!' उड़े हुए तोतों के झुंड देखते कोदर बोल उठा।

अस्त होता सूर्य सोने की थाली-सा चमक रहा था, मानो मंद-मंद मुस्करा रहा हो! पक्षियों ने भी खेतों में उतरना छोड़ दिया जबकि वे तोते तो बिखरे हुए, बातें करते-करते खेतों की सीमा भी छोड़ने लगे। आसमान के गुंबद में बिखरे पड़े बादल भी थककर ढीले हो गए, सूर्य को अस्त होता देख हंस रहे थे..., फिर गुंजा-फल के रंग की चादर ओढ़कर मानो सो गए।

कालू-कोदर भी एकपलिया से उतरे। दोनों जब सारे रास्ते में लगभग चुप थे, बात करते थे सो भी खेती की और कल के काम की।

वैसे कालू तो अब भी सोच रहा था, कोदर से कहना चाहता था, 'दिवाली किए बिना राजू का गौना आजकल में ही कर दो न!' पर कैसे कहे? चौमासे के बीच गौना करवाने का रिवाज न था। कोई करवा देता तो लोग शंका करने लगते, 'कोई घपला तो नहीं है न? इसलिए ज्यादा कहे कैसे? कोदर तो ठीक, पर उसकी मां और बहू तो उलटे कह बैठेंगी, 'सिखावन दे रहे हो, राजू ने कुछ उलटा-सीधा किया है क्या?'

कालू के पास इसका जवाब न था। राजू गलत राह चले ऐसा संभव भी न था। फिर भी वह सोचता रहता था, 'घास-चारा लेने खेत में जाए और नानिया उस बैर का बदला लेने को पीछा करे तो वीराने खेतों में उसे बचाने वाला कौन? औरत जात का जोर कितना?'

और इसलिए तो मौका मिलने पर परोक्ष रीति से वह राजू को सुनाता था न, 'संपन्न घर और सुंदर वर हो तो सारी दुनिया घर बसाए, पर गरीब घर हो और रंक वर हो तब भी घर बसाकर रहे तभी बड़ाई कहलाए।'

कोदर कहता था, दिवाली पर गौना करवा दें तब भी 'मामा का घर कितनी दूर? दीया जले उतनी दूर।' वह समय खास दूर न था, बीच में डेढ़-दो मास ही थे। पर कालू ऐसे मामलों में लोगों की दिवाली वाली बात जानता था, 'कहे दिवाली पर, भेजें होली पर।'

और इसीलिए तो उसने 'गौना-गौना' करती मां से कहा, 'तू लाख कोशिश करेगी तब भी राजुड़ी का गौना करवाए बिना वे लोग तेरी बहू को भेजने वाले नहीं हैं।'

मां को भी बात सही लगी और इसीलिए तो ढोर लेकर जाते वक्त या पानी भरते वक्त रास्ते में मिल जाती राजू की मां के सामने अपना दुख गाती रहती थीं, 'अब तो मुझसे काम नहीं होता...और आपकी समधन मानती नहीं!... वे भी बेचारी क्या करें? दो हल की खेती, कटाई करना, निराना तो पड़ेगा न? भली के सिवा दूसरा कौन करने वाला है?...पर अब तो मुझसे होता नहीं! खैर, मरने से पहले बहू के हाथ की रोटियां

खाना मेरे भाग्य में बदा होता तो फिर...' कालू की मां सचमुच घिस गई थीं। मानो मरने की फुरसत नहीं है, इसी कारण जी रही थीं।

राजू की मां दयालु थी। पर सच पूछें तो रूपा के साथ दया से अधिक, वह पुराना रिश्ता ही काम करता था। कालू के घर के प्रति उस पुराने संबंध का भाव ही काम कर रहा था।

और इसीलिए कोदर की मां ने दिवाली के बाद पहले मुहूर्त पर ही समाचार भिजवाए, 'समधी को मालूम हो कि अमुक दिन-वार पाहुने लेकर आना।' कालू को साथ ले जाकर दस-बारह जोड़ी कपड़े भी राजू के लिए खरीद लाई।

समाचार के अनुसार पंद्रह-बीस आदमी आ पहुंचे। पर राजू के घरवालों के नसीब में जैसे लग्न का भाग्य बदा न था, वैसे ही गौने का भी नहीं बदा था! मेहमानों के लिए रसोई तैयार करवाने के बाद परोसने के वक्त कालू घर जाकर बैठ गया था।

खुद कोदर बुलाने गया, पर कालू ने इतना ही जवाब दिया, 'तू तो समझता है, कोदर!...मैं नहीं आऊंगा!' कोदर क्या आग्रह करता? और बेटे का 'वह तो नहीं आएगा' यह जवाब सुनने के बाद कोदर की मां भी कैसे मनुहार करने आती!

भला हो नाना का कि उसने 'नहीं आएगा तो क्या बिगड़ जाने वाला है? बुला लीजिए पाहुनों को और दे दीजिए पत्तल,' कहकर उस बड़ी बात को छोटा कर दिया।

पाहुने पंगत में बैठे और उनके बीच एक ओर परोसना चला, दूसरी ओर मूसल, सूप, झाड़ू खपड़ा, हुक्का आदि कई चीजें रखी गईं, 'छोड़िए अटक और भोजन शुरू कीजिए।'

लगभग सारा गांव ठठ मिला था। अटक छोड़ने में मेहमानों को उलझते देख उनका मजाक कर रहा था। हंसी-मजाक के फव्वारे छूट रहे थे।

परंतु घर के आदमियों के लिए तो आनंद का नामोनिशान न था, एक कोदर की पत्नी को छोड़कर। राजू तो आंसू बहा रही थी—टप् टप्!

दूसरी शाम को जब विदाई हुई उस वक्त भी कालू दिखाई न दिया।

ससुराल जाती राजू उस रुदन के बीच भी भीड़ में कालू को ढूंढती रही...देखने को तड़पती रही...

पर कालू तो गांव से आधे कोस की दूरी वाले खेत में जा बैठा था।

'कैसे दिखता!' राजू भी समझ गई। इतना ही नहीं, यह भी समझ गई कि कालू रो रहा है।

और वह कल्पना भी कहां खोटी थी? मन गवाह थे, खोटी कैसे पड़ती?

और इसी कारण—दोनों आत्माएं एक-दूसरे के अंतर में उपस्थित होकर परस्पर कहने लगीं, 'चाहे कितनी ही क्यों न रोओ। गई गुजरी और पार लगी! अब क्या?'

क्या था गलत? अभी तक तो सिर्फ गई-गुजरी ही थी। पर अब तो राजू ससुराल की राह भी चल पड़ी थी—पार ही लग गई थी न?

और एकपलिया पर खड़ा कालू उस गलियारे से जा रही राजू को देख न पाने के कारण बरगद पर चढ़ गया...रुदन भरे हृदय से और आंसू-भरी आंखों से ससुराल के साथ—एक खेत की दूरी रखकर चलती राजू के बारे में जो कालू ने कहा उसमें कतई भूल न थी, 'अभी तक तो मन टूटे थे, आज तन भी टूटे और कल तो—धड़कते कलेजे भी शायद टूट जाएंगे!'

उसने जोर से सांस ली जैसे खाली पड़ा हुआ हृदय भरने जा रहा हो—बड़बड़ाया, 'मेरा तो ठीक! पर तेरा तो—सारा जीवन ही गिरोह पड़ा है सो भी मौत के बदले में!'

राजू के अदृश्य होते ही कालू की छलकती आंखें चू पड़ीं, बरगद के पत्तों पर जैसे बारिश हुई : टप्-टप्...!

18

थकान के बाद विश्राम

आठ-दस दिन में ससुराल-पक्ष ने राजू को सराहना शुरू कर दिया, 'बहू कितनी सयानी है! कोई बनावट नहीं। सो, वह भली और उसका काम भला।'

राजू ने, भली के गौने के बारे में पूछने आए हुए परमा चाचा को देखकर जेठानी को सलाह दी, 'जो कुछ दो-एक जोड़ी कपड़े मिलें सो नाम के लिए रखवाकर भली बहन का गौना करवा दीजिए। दो जने आकर ले जाएंगे।' इसके अलावा जब कपड़ों के बारे में बात चली तो 'मेरे कपड़ों में से दे दें।' कहकर उसने मुश्किल टाल दी। तब तो जेठानी-देवरानी इतनी खुश हो उठीं, 'कितनी समझदार है! ऐसी बहू तो धरती पर कहीं नहीं मिलेगी...हमारे घर कोदे की रोटी खानी पड़ती है, फिर भी किसी दिन उसे मुंह बिचकाते देखा है? नहीं तो घी-दूध खानेवाली कितनी नुक्ताचीनी करती!...'

लेकिन गांववाले राजू के ससुराल आने के पहले से जो कह रहे थे सो अब भी कहते थे, 'यह सब ऊपर-ऊपर से हमें दिखाने को है। वरना राजुड़ी घर बसाकर रहे तो लिखत कर दें।'

लोगों की धारणा भी गलत न थी। घर में दो बैल और दो गायों के सिवा पांचवीं पूंछ ही नहीं थी। इसके अलावा वर भी उमर में चाहे जवान भले था, पर शरीर और स्वभाव से तो लोगों के कहने के अनुसार 'शिक्षक मारे भी नहीं और पढ़ाए भी नहीं' वैसा ही था।

पर गांववालों की भविष्यवाणी को राजू ने गलत सिद्ध करना शुरू कर दिया। वे लोग कहते थे कि राजू आठ दिन गुजार सके तो भाग्य! इसके स्थान पर एक मास होने आया, फिर भी मायके जाने का वह नाम तक नहीं ले रही थी। इसके सिवाय 'कम बोलने वाली मचले तो गहरी चाल चले' वाली मान्यता भी गलत निकली। युवक बोलने लगे और शर्त बदने लगे, 'राजू भाभी से कोई जरा सी भी छेड़खानी करे तो मानूं कि उसने अपनी मां का दूध पिया है।'

और शर्त बदने वाले को भी आखिर कुबूल करना पड़ा, 'बात तो सही है। राजू भाभी-सी सयानी औरत तो हमारे इतने सारे इलाके में एक भी नहीं है, बहुत सयानी... बहुत समझदार!'

बात सच थी। राजू ने यह यौवनमस्त उच्छृंखलता, हंसी-मजाक, मस्ती और शरारत सब-कुछ मायके से ससुराल आते वक्त उस पांच कोस के रास्ते में मानो बिखेर दिया था— कुछ आंसू के द्वारा और कुछ गहरी सांस लेकर, अंतर के किसी गुप्त कोने में बंद कर दिया था। उस पर कालू की उस सिखावन ने मन पर वजन का बाट भी चढ़ा दिया था, 'सुखी घर हो और छैलछबीला वर हो, फिर घर बसाए तो उसमें बड़ाई क्या? बड़ाई तो खाली घर चलाने और मूर्ख को सयाना मानकर निबाह लेने में है!'

इसके सिवा कालू के प्रति जो कटुता थी वह भी कम हो गई थी, 'उस भले आदमी का क्या दोष? दोष है तो बैरी मामा का या कुछ है मां का...'

इतना ही नहीं, राजू की इच्छा थी कालू को सुखी देखने की, हो सके उतनी मदद करने की! उसी कारण तो उसने कालू की मां की बीमारी का बहाना करके भली का गौना करवा देने के लिए जेठ-जेठानी को मना लिया न? इतना ही नहीं, मानो अपनी सहोदरा को ससुराल भेज रही हो, इस तरह अपने थैले से अच्छी-अच्छी तीन चोलियां निकालकर उसे दीं, तीन घाघरे दिए और दो मजबूत साड़ियां भी, जिनमें से एक तो गौने की साड़ी थी।

पर जब गौना आया— कालू, कोदर, परमा चाचा, शंकर और कासम घांची आंगन में चारपाइयों पर आकर बैठे तब जाने क्यों राजू का सारा उल्लास लुप्त हो गया। दामाद से विविध ढंग से मजाक करने की सोच रखी बाजी, गालियां देने के लिए तैयार रखा मोरचा, सब कुछ ढह गया! खुद भली ही उसे बैरिन लगने लगी...

राजू ने न तो गाने गाने में हिस्सा लिया, न मदद की बारातियों के साफे या धोतियां छिपाने में। बल्कि वह तो खाने बैठे कालू की खाट से साफा ले आनेवाली लड़कियों पर चिढ़ने लगी, 'नहीं बांधना है पालना...बच्चा नहीं रुलाना है। रख आओ वापस, जाओ!'

आंगन में अटक छोड़ते कामस मियां ने रंग जमाया था, पर वह सुनने के लिए भी राजू बाहर न निकली। बाहर उड़ते हंसी के फव्वारे सुनकर वह तो उलटी चिढ़ रही थी, 'कब खतम करेंगे यह सब!' पर अभी तो बहुत-सी अटकें बाकी थीं। उसमें भी उन बिलौने की अटक छोड़ते तो मौज में आ गए कासम ने दोहा ही गाया...

रड़ी हंसाड़े हंसी रड़ावे ए वेवाण भवायो;
जीवतरनुंय एवुं वलोणुं, लई लो वेवाई खायो।

(रोकर हंसाए, हंसकर रुलाए वह तो हे समधिन भांड़, जिंदगी का भी ऐसा ही है बिलौना, ले लीजिए मथानी।)

शंकर ने सवाल किया, 'अरे क्या कहा, कासम? समधिन भांड़? फिर से कह, फिर से।'

कासम दुबारा बोला और लोग दुगुने उत्साह से हंस पड़े।

कालू सोच में पड़ गया, 'जिंदगी का बिलौना ऐसा ही है!'

पर राजू तो जिंदगी के इस भयंकर बिलौने पर रो ही उठी...उस दिन सारी रात उसे नींद नहीं आई, दिन में भी...। जब विदाई का समय हुआ तब तो राजू बाहर निकलने की, मुंह दिखाने की हिम्मत ही नहीं कर पाई। लोग मानो पूछ रहे थे, 'अरी राजू बहू, भली ससुराल जा रही है, उसमें तेरा मुंह क्यों लटक गया? अपना मुंह तो देख! या फिर हां...! अब समझे। वह पुराना संबंध याद आ गया है, यही कह दे न?...'

पर जब बाहर निकलने का भली को विदा देने का क्षण आ पहुंचा तब तो राजू ने अपने जीवन को 'भाग्य के अधूरे लेख' समझकर, याद और कल्पनाओं को पानी पर जमी हुई काई की तरह एक ओर कर दिया और निर्मल जल की तरह मंद-मंद मुस्कराती रही, 'लो, चलो बहन, गांव में मिल लो।' और भली को लेकर आगे चली।

राजू का विचार था भली को सीख देने का, 'उसे (कालू को) नहाने के वक्त गरम पानी का बर्तन निकालकर देना और धोती भी तुम्हीं देना। खाने बैठे तब अच्छे दाल-शाक बनाना! और रोटी भी तवे से उतरती गरम-गरम ही देना...वह कुछ कहे तो सुनते ही उसकी बात मान लेना और बोले तब भी हंसकर– भरे मुंह से! दोनों हमउम्र हो और बुढ़िया तो भगवान का रूप है। उन्हें पसंद नहीं किसी की नुक्ताचीनी! ठीक होगा तो जब तुम दोनों घर में होओगे वह खेत की ओर निकल पड़ेंगी और खेत में होओगे तो घर में दुबकी रहेंगी। अरे सुना जाता है कि बीमार हैं। तब तो शायद खाट से उठेंगी ही नहीं। और उठेंगी तो उन्हें तो किसी बात का एतराज ही नहीं। सो तुम दोनों...'

पर राजू विचारतंत्र में चल रहे, 'साथ-साथ घूमना-फिरना और मौज करना' इन शब्दों को घोंटते-घोंटते निःश्वास छोड़ने लगी। विदा देते वक्त भली से भी वह लंबी बात न कहकर इतना ही कहा, 'आप तो मुझसे बड़ी हैं बहन, मैं क्या सीख दूं?'

पर कालू की उदास, भावहीन सूरत देखते तो राजू को कुछ और ही लगा, 'भली तो बेचारी भोली है! जो कहेंगे सो करेगी; बाकी मिजाज तो इन भाई साहब का तेज लगता है।'

और विदा होते कालू से नजर मिलने के कारण या उसकी हारकर थकी सूरत देखकर, जो भी हो वह अपने पर ही खीज गई, 'खैर, फोड़ेंगे सिर दोनों मिलकर। तुझे तो देखना-सुनना नहीं है न? और देखना-सुनना पड़े तब भी तुझे क्या उनसे? तू उनका घर बसा देने का ठेका लेकर तो बैठी नहीं है कि...'

और गांव की चार-पांच स्त्रियों के साथ गांव के सिवान में खड़ी राजू रोती-रोती जा रही भली की ओर तिरछी नजर से ताकती रही। मन में बड़बड़ाई भी, 'देखो तो सही, दुनिया को दिखाने के लिए यह रो रही है! वरना मन में तो छबीले को देखकर...'

और जेठानी के पीछे-पीछे घर की ओर चलते राजू ने एक गहरी सांस ली। आंख के कोने चोरी-छिपे साफ कर लिए और मन को भी मना लिया, 'पिछले जनम के लेख

हैं! भली थोड़े ही तेरी सगाई तोड़ने आई थी? वह क्या करे उसमें? बेटी और गाय...जहां बताओ वहीं जायं!'

परंतु कालू के मन में यह था— विधाता, मेरे नाम का तिलक करने जा रहा था तो राजू के भाल पर, पर छिपकर खड़ी भली ने अपना छोटा कपाल बीच में घुसा दिया। और यों अपने भाग्य में उस नाजुक राजू के स्थान पर यह कुंदा आ पड़ा!

कालू को भली तनिक भी पसंद न थी। उसने गौना कराया सो भी बीमार मां के आग्रह के कारण। वरना मन में तो पछता रहा था, 'मालूम होता कि राजू के जाने से मेरा गौना इतनी जल्दी करवा देंगे तो मैं ही कोदर को मना करता! हुआ यह कि बकरा निकाला तो ऊंट पैठ गया!'

घर में प्रवेश करते ही चिढ़े हुए कालू ने मां से कहा, 'बार-बार कहा करती थी। सो ले, अब संतोष से खा ले बहू के हाथ की रोटियां!'

खाट में पड़ी मां को चिंता हुई, 'क्यों?...क्या हुआ, भाई?'

कालू जवाब देने के बजाय यह 'पांच बगलवाला' कुर्ता और साफा चक्की पर डालते ही चलता बना गांव में। बीमार मां की खबर भी न पूछी, 'तबीयत कैसी है! बुखार कम हो रहा है या दिन-ब-दिन बढ़ रहा है?' कुछ भी नहीं पूछा।

मां तो कुछ भी समझ न पाई, पर तभी बहू का थैला लेकर कोदर आया। बुड्ढा परमा और शंकर आए और बाद में बहू भी घर में दाखिल हुई।

बुढ़िया का जी शांत हुआ, 'आ बेटी, मेरे पास आ। सिर पर हाथ फेरने दे!'

और बुढ़िया ने इस नेककदम बहू के सिर पर हाथ फेरा। उसे पास में बिठाकर— मानो मरने से पहले प्रेम कर रही हों, कहा, 'जरा मेरा सिर दबा न बेटी, फटा जा रहा है!'

बुढ़िया ने कह तो दिया, पर तुरंत ही चिंता हुई, 'शायद इंकार करेगी...पहले ही कौर में मक्खी आ गई तो?'

पर भली ने इनकार नहीं किया, और कौर में मक्खी भी न आई। अलबत्ता कुछ ही देर में 'ब...स बस बेटी!' यों कह उठीं और फिर घर के काम में उसे लगा दिया, 'एक हंडा-घड़ा पानी ले आना बाद में।'

पर इतने में ही नाथा की पत्नी आ पहुंची। दो हंडे-घड़े खाली करके भली को भी साथ ले गई।

बुढ़िया मानो बहू का काम देखने, बेटे का घर-संसार देखने ही, तीन-चार दिन रुकी रहीं। घर-काम में भली की लगन देखकर बुढ़िया खुश हुई, पर बेटे का कड़ा बर्ताव देखकर उन्हें अपार दुख हुआ...। प्रेम से जैसे आदमी को जीता जाता है, वैसे ही उसे समझने का भी एकमात्र साधन प्रेम ही है...दो ही दिन में बुढ़िया के मन और अंतर समझ गए।

तीसरे दिन शाम के समय बुढ़िया ने कोदर के द्वारा गांव में भटकते कालू को

बुलवा लिया। पास में बिठाकर कुछ सीख दी, आखिर कहा, 'मैं अब एकाध रात बिता पाऊं तो मेरे भाग्य! सो जो कुछ करना हो करना, पर मेरी मौत मत बिगाड़ना!...मैं जान गई हूं कि तुझे भली बहू पसंद नहीं है पर...' बुढ़िया ने जोरों से सांस ली, आंसू से छलछला उठी आंखें चोरी-छिपे साफ करते हुए आगे कहा, 'अपने जीवन के जलापे मेरे जिम्मे मत डालना। फिर...मेरे मरने के बाद तो सीख नहीं मानेगा। मुझे भी थोड़े ही देखने आना है, बेटा?...'

और कालू को अपना अटल निर्णय बदलना पड़ा, अप्रिय को प्रिय करना पड़ा—रात में नाथा की बहू के द्वारा पिछले खंड में डाली खाट में पत्नी के साथ सोना पड़ा। अलबत्ता, कालू को तो लगा जैसे सूली पर सो रहा हो!

पर बुढ़िया सोच रही थी, 'बेटा सयाना निकला, उसने कहना मान लिया।' तीसरे दिन देह छोड़ी सो भी अधूरा संतोष पूरा करके, बेटे से मनपसंद कबूलियत लेकर, 'भाई, बेटा, भगवान ने ज्यों हमारा नाम रखा वैसी बड़ाई तू भी करवाना। और देख,' बुढ़िया की आंखों के सामने वंश रखने के लिए लाई गई सौत का कांटा, जिंदगी को भुला देने वाला पांच साल तक का कलह खड़ा हो गया, 'अच्छा हुआ कि हम दोनों में से एक मर गया, वरना...' बुढ़िया ने एक गहरी सांस ली, कालू से कहा, 'सो तू हमारे दुखों से ही सीख ले लेना...पूछना गांव में कि जब बूढ़े-बुढ़िया दोनों अकेले रह गए तो उसके बाद ऊंची आवाज से भी कभी बोले हैं?' फिर से बुढ़िया को वे पांच साल याद आए और कहा, 'और देखना, हां कालिए! अपने बाप के वचन कलेजे पर रखना, पांच साल की हमारी बीती को देखकर ही वे कह रहे थे कि...सात घर चाहे एक साथ निरंबस हो जाएं, पर एक के जीते जी दूसरी औरत का तो नाम ही मत लेना...सुख से रहना हो तो—कलियुग का पानी गले में उतरने देना हो तो...!'

कालू तो मानने लगा कि बुढ़िया का सिर चकरा गया, कहा, 'क्या बात करती हो, मां! तुझे ऐसा कहा किसने?' कालू के अचरज की सीमा न थी।

'मेरी अंतरात्मा कह रही है, बेटा! पर याद रखना, गरीब घर की लड़की—यहां तो जो गाय को लौटा लाए वही गोपाल, बेटा! सो उसे दुख न झेलने पड़े।'

परमा चाचा को भी बोलना पड़ा, 'क्यों देगा दुख? बकवास किए बिना चुप पड़ी रहो न! तुम्हें तो वंश न था, इसलिए वह पत्थर पैरों पर पटका था। ऐसी खोटी बकवास...'

पर बुढ़िया अपनी सनक में ही थीं, 'खोटी होती तो फिर फिक्र ही क्या थी! पर फिर भी...' और अशक्त हाथ पाटी पर चित रखा, 'दे वचन, फिर...'

'हाय रे बाप, इस बुढ़िया के मन की शंका...' कालू को ही नहीं, आसपास बैठे उन बीस-पच्चीस व्यक्तियों को भी हंसी आ रही थी।

'भाई, दे दे न वचन, कि बुढ़िया के जी को चैन मिले।' बुड्ढे ने कहा।

पर वचन देते-देते तो कालू सोच में पड़ गया, 'बुढ़िया को भविष्य का खयाल

आ रहा है या ब्राह्मण ने भविष्यवाणी की थी उसी का वहम है या फिर राजू ने तो कहीं गड़बड़ नहीं की न? की हो तब भी ऐसा कैसे हो सकता है? चाची-सास को किसी ने घर में बिठाया है कि मैं, मेरे क्या दिन फिरे हैं कि सात पीढ़ियों का नाम डुबाऊंगा!' और उसने बुढ़िया के हाथ पर तेजी से हाथ पटका, 'लो, यह मेरे पुरखों का वचन है, अगर एक पर दूसरी करूं तो!'

और बुढ़िया मानो इस बात की बधाई देने के लिए पति के पास दौड़ी जा रही हो उसी तरह— पांच पल अमृत-झरती आंखों से बेटे पर आशीर्वाद बरसाती रहीं, छठे पल में तो वे आंखें गोल घूमने लगीं और...

शंकर बुड्ढा परमा और कासम बोल उठे, 'देख क्या रहे हो? चौका कर डालो, उतार लो नीचे।'

नीचे उतारते-उतारते तो उस पैंसठ-सत्तर साल के जीवन का सारा खेल खतम हो गया।

तीसरे दिन फूल ले आए गए और गरुड़ पुराण पढ़ने ब्राह्मण भी बैठ गया। चौथे-पांचवें दिन लोग मातमपुरसी कर गए और फिर गांव में धान कूटने का काम शुरू हुआ, दसवें दिन सूतक निकाला। ग्यारहवें पर श्राद्ध किया और बच्चों को भोजन करवाया। बारहवां कालू ने 'अच्छी तरह' किया। सात-आठ गांव के सारे इलाके की बिरादरी को कसार-घी का भोज दिया। तेरहवें पर हिस्से का खाना खाकर शाम के समय अपनी-अपनी राह चले लोगों ने कालू की तारीफ की, 'जो भी हो, लड़के ने बुढ़िया की मौत सुधार दी, भाई! कर्ज करके भी बुढ़िया के पीछे पांच मन घी खरचा, यह मामूली बात नहीं है...' और वृद्धों ने रटा हुआ वाक्य कहा, 'बेटे मिलें तो ऐसे मिलें!'

अब कालू इस प्रसंग को सफल करने आए सेठ के साथ बैठकर हिसाब करने लगा। सेठ ने पुराना कर्ज नया किया। कुछ छूट देकर पंचों को खुश किया। और बाबाशाही भुनाई काट कर 'कलदार बम्बइये बाकी' करके आंकड़ा रखा, 'सत्रह बीसी और सात, भाई, ले चल, लगा अंगूठे का निशान।'

'ओ हो हो हो...इतने तो मेरे सिर पर बाल भी नहीं होंगे, सेठ!' कहता हुआ कालू अंगूठे पर स्याही लगवाता रहा। दालान तक बात सुनाता बोला, 'इतने तो मैं किस जनम में चुका पाऊंगा, काशी चाचा?'

'किस जनम में क्या, इसी में चुकाएगा। दरजी का बेटा जब तक जीए तब तक सीए!' सेठ ने बही बंद करते हुए कहा।

'सो बात तो सही है।' गांववालों ने भी हुंकारी भरी। और वे भी सेठ के लिए इसी लेखे के बदले में तैयार किए गए लड्डू खाने को खड़े हुए।

चौदहवीं की सुबह तो सेठ भी घोड़े पर सवार हो गए।

तेरह दिनों के बाद आज पहली बार कालू को खयाल आया कि मां सदा-सर्वदा

के लिए चली गई हैं और घर में एक बेतुका व्यक्ति आ गया है सो भी सदा के लिए।

कालू को सूना-सूना लगने लगा। अकेलापन खलने लगा। और उसकी आंखें भर आईं।

भली के लिए उसने बहुत-बहुत मन मनाया, पर मनाने से मन मान जाता तो मनुष्य को दुख ही कहां होता!

कालू ने घर सौंपा, घी, दूध भी, पर कालू के शब्दों में, 'बनिए का कुप्पा जाने और उसका (भली का) पेट जाने!'

ढोर आदि का काम भी उसने भली को ही सौंप दिया। शरीर भी दिया था, पर...

पर भली को, स्त्री को, चाहिए मन। उसने हृदय तो दिया ही नहीं, दिया नहीं जा सका! जानता था, समझता था, भली पर दया आ रही थी और मां की सीख याद आती थी, फिर भी! वह हृदय मानो पराया था। किसी की अमानत हो, या कोई गिरवी छोड़ गया हो, पर यह तो निश्चित था कि किसी को दे देने का उसे हक न था, काबू भी न था!

इस ओर, प्रेत की तरह सूने मन से घर में भटकती भली का मन भी उलझने लगा...। स्त्री-सहज स्वभाव से वह चिढ़ने लगी, ऊबने लगी, पर कालू तो वैसा का वैसा, ठंडा। वही का वही 'मुनिव्रत!'

भली ने मायके चले जाने की धमकी दी।

उसने इसका जवाब जो सोचा था उससे उलटा ही उत्तर मिला, 'भली! मैं बीच में आऊं तो कहना।'

भली भी कैसे रह पाती?...अच्छा साथ देखकर घर छोड़ते हुए उसने प्रण लिया, 'अब तो गरज के कारण वह खुद लेने आए तभी इस घर में पैर रखूंगी।'

कालू इससे खुश हुआ। घर से मानो प्रेत निकल गया। आजकल वैसा काम भी न था...और महीने के बाद गेहूं-चने की कटाई का समय हुआ तब भी वह दया करने वालों से कहने लगा, 'अरे, मैं अकेला हजार से बढ़कर हूं।'

और कालू ने दिखा भी दिया। उतरती वसंत की अलस्सुबह वह खाट से उतर पड़ता। पड़ोस के रामो-नाथो जगें, उसके पहले ही भैंस दुहकर सानी तैयार करके रख देता। ढोर बाहर निकालता और कांछ लगाकर तीन टोकरे गोबर भर के ठिकाने डाल आता। चूल्हे पर पानी गरम हो जाए उतने में दो-दो हंडों में दो बार पानी ले आता और लोग ढोर निकाल रहे हों उस समय तक तो वह नहाने के बाद, दूध में आटा पकाकर, उसमें छंटाक घी डालकर, एक-एक पाव के पांच कौर निगल जाता।

मुहल्ले के लोग दातुन कर रहे हों उस समय कालू 'रामा भाई, ढोर चलें तो मेरे ढोर भी छोड़ना,' कहते हाथ में हंसिया लेकर निकल पड़ता खेत की ओर।

खेत में पहुंचते ही पहले कुरता उतार देता, साफा भी बरगद की डाल पर टांग देता और कांछ लगाकर तैयार हो जाता।

और लोग आएं उसके पहले तो एक बीघा फसल जमीन पर! रामा तो दांतों तले उंगली दबा लेता। एक दिन तो कह भी दिया, 'अबे, तेरी किसी प्रेत से दोस्ती है?'

कालू हंस उठा, 'मैं खुद ही प्रेत-सा हूं! देख, लग नहीं रहा?'

बात गलत न थी। कालू की श्यामल काठी पसीने से तरबतर हो गई थी। चौड़ी छाती और स्नायुभरे बाहु तो फौलादी थे। सिर के लंबे बाल भी बिखरे हुए थे और आंखें भी लाल—गेरू के रंग की।

'सच है तेरी बात, अंधेरी रात में कोई मिल जाए तो तेरी शक्ल-सूरत देखकर डर जाए, भाई!' रामा ने कहा। जाते-जाते सीख दी, 'पर बेहद मजदूरी ठीक नहीं, हां! और बुला ले, भाई! क्यों नाहक अटक ले बैठा है? अभी तो ठीक है, पर चौमासे में तुझ पर बहुत बीतेगी।'

पर ऐसी सीख तो सारा गांव देता था, जबकि कोदर की मां तो जी ही जला रही थी और बुड्ढा परमा तो झगड़ता भी था, 'अकरमी पैदा हुआ है तू, अपनी औरत का कोई दोष तो मुझे बता! दिवालिया निरबंसिया होने बैठ गया है क्या?'

पर कालू होंठ हिलाए तभी तो किसी को कुछ भी पता चले न?

बुड्ढे को और किसी चिंता से भी बड़ी चिंता यही थी, 'अब मैं मरने तो जा ही रहा हूं, पर वहां वाला भाई और रूपा भाभी मुझसे बेटे के समाचार पूछेंगे तो मैं जवाब क्या दूंगा?' बुड्ढा सचमुच यह मानता था और इसीलिए तो चौमासा आते ही वह, कालू से बिना पूछे ही भली को लेने चला गया और सो भी, घोड़ी रणछोड़ के हिस्से में गई थी, इसलिए पैदल चला।

परंतु सामनेवाले पक्ष में भी चारगुनी हिचक थी, 'दामाद खुद आए तभी भेजें, नहीं तो हमारी बेटी पेट में समाई तो हंडिया में नहीं समाएगी क्या?' राजू भी मायके में थी, नहीं तो किसी भी तरह बुड्ढे का चक्कर सफल हो जाता शायद।

आखिर कालू को थकना पड़ा। और क्यों न थके? लोगों के कहने के अनुसार 'खेती तो (ज्यादा) आदमियों का खेत है।' अकेला आदमी कहां-कहां पहुंच पाएगा? घर का काम-काज करना और हल जोतना, इन सबमें बड़ा काम तो बैल चराने का था। हर रोज कौन चरा देगा? खूब तड़के बैल चरा आना, बुहारी-पानी करना, रोटियां बनाकर सबके साथ हल जोतना! दिन ढलते ढोर बांध आना और फिर हल से छूटे उन भूखे बैलों के पेट भरना। रात को देरी से घर आकर चूल्हा जलाना और औंधे पैर रखकर चक्की पर अभुआने बैठना!

बड़ी तकलीफ से दिवाली तक पहुंचा। कटाई करते-करते कमाई का हिसाब लगाया तो ठीक आधा नुकसान नजर आया और अभी तो सब काम कहां हो गया था? बोते-बोते बो दिया, पर सारा खेत इकट्ठा करते-करते तो आसमान के तारे नीचे उतर आएंगे।

कोदर और उसकी मां तो मानो हाथ धोकर पीछे पड़े थे, 'तेरी चिंता में तो हमने

दुख झेलकर भी राजुड़ी का गौना करवा दिया और इस दिवाली पर भी, 'बोल तू भली को लेने जाए तो मैं अपनी बेटी को लेने भेज दूं, नहीं तो दिवाली पर भी वहीं रहने दूं!' कालू को चुप देखकर बुढ़िया ने आंखें सिकोड़ कर पूछा, 'तू अकेला-अकेला दिवाली का त्यौहार मनाएगा, कालू? लोग परदेश गए सगे-संबंधी को न्यौतते हैं तब तू तो...'

परमा ने कहा, 'न बुलाना हो तो दे दे तलाक। वे बेचारे कब तक सांप का गट्ठर संभालते रहें? फाड़ दे हाथ-छोर और फिर चलता बन तू साधुओं में! तूने वाला भाई का नाम तो रखा ही!'

कालू अकेले हाथ से कटाई आदि का काम करते-करते, तिनका-तिनका काटकर खलिहान में डालते हुए, दंवरी जोतकर घास से अनाज का दाना-दाना अलग करते और यों रात-दिन की छटपटी के बाद थककर चूर तो हो ही गया था। और इसीलिए पत्नी को बुला लाने की इच्छा होंठ तक आकर खड़ी थी, पर वह अब भी प्रतीक्षा कर रहा था, 'राजू क्यों उसे कुछ कहती नहीं? इतनी सारी तकलीफें मैं झेलता हूं और वह बस देखती ही रहती है, पर एक शब्द तो कहे!...हां भाई! उसे हमारी क्या फिक्र! और बात भी ठीक है; मेरे-उसके बीच अब है क्या...?'

और रात को देर से खाट में पड़े कालू को चाचा की वह बात याद आई, स्वगत बड़बड़ाने लगा, 'चल राम, तब साधु ही हो जाएं। सारी चिंताएं समाप्त हो जाएं। लाख दुखों का एक ही धागा (मंत्रित)! उस भभूतेश वाले साधु की तरह अलख जगाते भीख मांग खाना और धूनी रमाकर पड़े रहना। न खटका, न चिंता।' और कालू की नजर के सामने अंधकार के बीच भी जंगलवाला भभूतेश्वर का खंडहर दोहरा खड़ा हो गया। बाहर उस चबूतरे के बीच धूनी जल रही है। धूनी की एक ओर राख में धंसा चिमटा खड़ा है और स्वयं वह केवल लंगोटी पहने— सारे बदन पर राख मलकर हाथ से सिर टेककर पड़ा है। आंखों में गांजे का नशा है जबकि मन में लापरवाह मस्ती भरी है...कालू उस साधु के रूप में ही बोल उठा, 'और क्या! फिर क्या भली और क्या राजुड़ी!'

और कालू मन में कर्ज की, घर की, ढोर-डंगर और खेत-खलिहान की इस तरह व्यवस्था करता रहा जैसे सचमुच साधु हो जाने वाला हो...

परंतु आखिरकार वह स्वयं ही अपने पर हंस पड़ा, 'कहां मन दौड़ाता है! अरे पागल! वाला पटेल का बेटा घर छोड़कर साधु हो जाए तो धरती औंधी ही न हो जाए! बापू कहते थे सो भूल गया? मनुष्य अवतार तो तलवार का खेल है। जिसने खेलना जाना वह जी गया और जिसे खेलना न आया वह जीते-जी मर गया है!'

'मैं तलवार के खेल तो बहुतेरे खेल लूं, पर खेलने जैसे रहे कहां हैं?' कालू कुछ अकुला उठा। दो-चार क्षण के बाद फिर बड़बड़ाया, 'कर लूं तब दूसरी औरत, राजुड़ी को ले आऊं।'

इसके साथ ही मां को दिया हुआ वचन याद आया और फिर उलझ गया, 'क्या

करूं? मरती मां को वचन दिया है, नहीं तो दिखा देता बहादुरी। बिरादरी वाले निकाल देते बिरादरी से बाहर तो खैर, पर एक बार जिंदगी तो ऐश करके मना लेता!'...और मर्कट-सा मन राजू की याद में लग गया।

और इस याद का तो पूछना ही क्या! राजू मानो बगल में ही पड़ी है और कल्पना चल रही है...पानी की गागर भरकर लचकती चाल से आ रही है और वह खुद प्यार से घड़ा उतारता है...वह हंसती रहती है और मन-पसंद भोजन खिलाती है...खेत में आती है और हाथ से काम छीन लेती है। वे साथ-साथ कटाई करते-करते कौन आगे बढ़ता है, इसकी शर्त बदते हैं। कभी थककर चूर हो गई है, कभी राजू उसकी गोद में पड़ी है, कभी उस विशाल बरगद के नीचे वह खुद राजू की गोद में सिर रखकर पड़ा है। राजू जूं खोजती है और लंबे बालों में उंगलियां डालकर गुत्थी सुलझाती है...

कालू ने पांच मन का निःश्वास छोड़ा। करवट लेते बड़बड़ाया, 'राजू...और राजू! भगवान ने जिंदगी खुशी के लिए दी होती तो दी हुई चीज क्यों ले लेता? और राम-राम! मां को वचन दिया और तू—अरे सोचना भी पाप और मां ने नाहक वचन नहीं लिया! तू ही दो-दो औरतों वालों के हाल देख ले न!'

और कालू का जी आश्विन के कृष्ण पक्ष की ढलती रात में, गांव में और आसपास के प्रदेश में उन दो-दो औरतों वालों के घर निगाह डालता रहा, किवाड़ पर कान रखकर सुनता रहा, किसी के घर एक सौत ढलती रात में दीया जलाकर दूसरी सौत की और साथ-साथ पति की भी आबरू उजागर कर रही थी तो किसी जगह 'कुत्ते खींचे गांव की ओर, और सियार खींचे सिवान की ओर' जैसी हालत थी। किसी जगह पति ही गायब, तो किसी जगह कृष्ण-लीला, दोनों सौतों के पास पुरुष हाजिर!...

कालू त्रस्त हो उठा, 'ना भाई, ना! एक हाथी बांधो और एक औरत रखो...और सो भी यह कहावत गलत नहीं है कि औरत रहे तो अपने आपसे और जाए तो सगे बाप से?...ना, ना, राजुड़ी घर न बसाए तो कहीं और जाए—अरे नानिया के क्यों नहीं जाती? वरना हमें तो, शिव तेरी मनौती कि दो औरतें नहीं करूंगा! जीवन कल मिट्टी में मिलने वाला हो तो भले ही आज मिल जाए! पर मां को दिए हुए वचन का पालन करना है और अपने वचन का पालन न करे तो फिर वह मनुष्य कैसा?'

नए-नए जीवन की कल्पना करते, रचते और तोड़ते कालू को गुजरती रात का भी खयाल न रहा...इतने में कासम मियां के मुरगे ने बांग लगाई, 'कुकओ... कूओ!'

'ओ तेरे की!' मुरगा बोला! कालू सचेत हुआ और उसने जीवन की बही समेटनी शुरू की, 'कुछ भी नहीं कालू, प्रेम भी नहीं करना और राजू के सपने भी नहीं देखने। बेकार कोशिशें हैं ये सारी! नहीं तो—करम में लिखी हुई थी और मां फिर मरते वक्त जिसे सौंपती गई वह कुठला (भली) ही ठीक है, इसी में ही समझ जा न? बुरी माने तब भी या अच्छी माने तब भी वही सही है...और क्या बुरी है? सभी की जिंदगी में कहां राजुएं हैं? और फिर भी वे अच्छी तरह जीते हैं न?'

मुरगा मानो कालू के लिए ही बोलता जा रहा था। साथ ही सामने वाले घर से नाथा की बहू ने चक्की शुरू कर दी और रामा के घर बिलौना शुरू हुआ, 'घू...म...घू...म...'

अब भी कालू को खाट छोड़नी पसंद न थी पर कोई चारा नहीं, पीसना तो इतना भी नहीं जितना एक तिलक के लिए होता है। उसने हारे-थके मन को सांत्वना दी। आज तो दो रोटियों भर के लिए पीस दे, फिर तो आ रही है पीसने वाली। और खाट छोड़ते हुए बड़बड़ाया, 'थकान के बाद विश्राम लेना ही पड़ेगा।'

पर दूसरे ही क्षण किसी ने विरोध किया, 'थकान से मानो या मरजी से मानो, पर वही सच्चा विश्राम है। तू 'राजू राजू' करता है पर ससुराल तो वह दो दिन पहले ही गई है। वरना तीन साल तक तो यहीं थी न? कभी यहां आकर कहा कि लाओ, थोड़ा-सा पीस दूं? और यह (भली) आएगी कि तुरंत अपने मां-बाप के नाम रोकर चक्की पर बैठ जाएगी...तब फिर मरजी से मानो या थकान से मानो पर वही सच्चा विश्राम है!...'

और कालू हाथ भर की दूरी पर दिखते उस विश्राम की आशा से औंधे पैर डालकर चक्की घुमाता रहा। मन-ही-मन इतने दिन परेशान होते रहने के लिए पछतावा करता रहा, 'भाग्य में तो वही बदी थी, फिर थकान में विश्राम ले रहा है...! पहले ही मरजी से वह विश्राम ले लेना था न? नाहक दुखी हुआ!...वही ठीक है! वही आकर यह चक्की छुड़ाएगी, और कोई नहीं।'

19

चेत मछंदर गोरख आया

कालू ब्याह करने आया था तब उसे खास प्रेम नहीं मिला था। पंद्रह घरों की बस्ती से हर घर की जवान लड़कियां तथा बहुएं खुद ही बारात में शामिल होकर कालू के गांव वर ब्याहने गई थीं। बचे-खुचे आदमियों ने हिस्सा लिया, पर सो भी न लेने-सा। एक तो लग्न एकाएक रखा गया तो सीधा-सामान तैयार करना था और दूसरे गरीब घर, वर भी 'गरीब', सो किसी को दिलचस्पी नहीं थी। खुद कालू के पक्ष के लिए 'कुंआरा-ग्रह' उतारने जैसा था सब कुछ।

गत वर्ष गौना करने आया तब भी ससुराल-पक्ष खर्च उठा सकने लायक नहीं था। पांच आदमी लेकर आया था। गांव की स्त्रियों को भी घर के आदमियों में उत्साह दिखे तभी तो जीवट का अनुभव हो न? सो उस समय भी कालू को ससुराल की ओर से हंसी-मजाक या गालियों भरे गीत सुनने का, रस लेने का मौका नसीब नहीं हुआ था।

और इस समय भी सास ने ठंडा स्वागत ही किया। दालान तो था नहीं, सो आंगन में ही चारपाई डाली। गुदड़ी डाली गई, सो भी बूढ़ा परमा साथ था इसी कारण। वरना कालू अकेला होता तो हाल यह थे कि यम आए तो केवल जी ले जाए, पर यह जमाई तो दुलार से बड़ी की हुई पेट की आंत ले जा रहा था। कालू को तो आने से पहले छटपटी होने लगी थी। कब वह ढलता सूरज अस्त हो जाए और कब सुबह हो। उसका विचार तो सुबह की रोटियां भी घर जाकर खाने का था।

धान के खलिहान से कालू के ससुर आए और हुक्का भरकर देने के बाद खलिहान लौट गए। पर कालू को हुक्का पीने की भी इच्छा नहीं थी। यह घड़ी-भर का दिन गांव में किसी के घर जाकर बिता आता, पर करे क्या? घर सभी बंद थे। बच्चे, बुड्ढे और बछड़ों-पड़वों को छोड़कर सारा गांव सुनसान! राजू और भली भी न जाने कहां काम पर गई होंगी...

दिन अस्त हुआ और लताओं से छाई हुई बाड़ें पीले-आसमानी रंग के फूलों से छा गईं। सूने गांव में चेतना आई...चहल-पहल बढ़ने लगी। किसी के घर भर्र्र् करते किवाड़ खुले तो कोई आंगन से ही चीख उठा, 'यह पड़वा अभी तक यहां बांध रखा है तो भैंस आएगी और आंचल नहीं दे देगी?' जब कि कोई ठीक नाके से हांक लगाता

आ रहा था, 'मां, सामने आना...भार से मर गई, मां हो...ओ!' सिर पर दो मन का बोझा और कमर पर डेढ़ साल का बच्चा! हांक न लगाए तो करे क्या? लोगों के पीछे दुधार गाएं रंभाती आ रही थीं। भैंसों को भी मुहल्ले का नाका देख पड़वा याद आ गया होगा?... ढोरों के पीछे-पीछे जाड़े में होती जोत-जोतकर हल भी आ पहुंचे।

एक ओर गाय-भैंस रंभाने लगीं; दूसरी ओर भूखे बछड़े-पड़वे; काम से थके-मांदे लोग ढोरों को पीटते और गालियां देते खींचा-तानी करने लगे। एक ओर अफीम के नशे में डूबकर सारा दिन पालने में बंद भूखे बच्चे लगातार चीखने और रोने लगे... और, उस घड़ी-दो घड़ी के शोरगुल ने दिनभर की शांति का एक साथ बदला चुका दिया!

कालू का चचिया-ससुर, राजू का पति हल के साथ आ पहुंचा। पीछे भली और राजू भी घास के बोझे के साथ आ पहुंचीं। भली ने कालू को देखकर मुंह बनाया और परमा चाचा को देख घूंघट खींचा जबकि राजू ने प्रसन्न-चेहरे से सत्कार किया, 'आइए पधारिए चाचा, दोनों!'

'हां बहन,' बुड्ढे ने कहा। कालू ने भी 'हां' कहा। राजू-भली दोनों घर में प्रवेश करते ही हंडा-घड़ा लेकर बाहर निकलीं। कालू सीधी टोली में जा रही इन दोनों युवतियों के पीछे देखता रहा, उनकी तुलना करता रहा।

राजू बहू थी, नई-नई ससुराल आई थी इसलिए उसके अंगों पर नए कपड़े थे। भली मायके थी, इसलिए पुराने कपड़े पहनी थी। पर इन कपड़ों की हेर-फेर की जाए तब भी कालू को भरोसा था कि मुंह देखने पर भली से राजू तो बेहतर लगी ही, पीठ देखने पर भी अच्छी लगती है। सागौन के सोंटे-सी राजू की चाल में चमक थी, लचक थी, जबकि मांसल बदन वाली भली भारी चाल से ही चल रही थी...

मोड़ आने पर यह दृश्य लुप्त हो गया, पर कालू की नजर तो वहीं लगी रही मानो उन लोगों को लौटते वक्त वहीं से, उस नाके से ही, पकड़ लेना हो!

अलबत्ता उसका मस्तिष्क तुलना करने का काम किए जा रहा था, एक का मुंह छोटे कपालवाला और गोल, आवाज भी कर्कश तो दूसरी के गले में मानो मोर बिठाए!...मुंह तनिक लंबा, नुकीली आंखें और पलाश की पंखुरी-सी नाक!...

घड़ी-भर में तो दोनों उस कोने से पानी भरकर आती दिख पड़ीं। कालू ने उस ओर निगाह स्थिर की और तुलना आगे चलाने लगा। परंतु चेहरे तो दोनों के लज्जा-मर्यादा के कारण ढंके हुए थे। भली ने परमा चाचा के कारण घूंघट किया था, राजू ने टोले के बुजुर्गों के कारण। कालू ने देह का आधार लिया। राजू का यौवन वस्त्रों में भी प्रवाहित होकर बह रहा था जबकि भली की जवानी का तो कालू को पता नहीं चल रहा था जिस तरह गहरे पानी के बहते होने पर भी उसके प्रवाह का पता न चले।

कालू ने एक छिपा निःश्वास लिया। मन में बड़बड़ाया, फर्क क्यों न हो? राजू मुझसे भी दो साल छोटी है, जब कि यह तो मुझसे दो-तीन और राजू से चार-पांच साल

बड़ी!...

कालू का चचिया-ससुर, राजू का पति, हुक्का भरकर खाट पर बैठा और कालू ने फिर से राजू तथा उसके पति की तुलना करना शुरू कर दिया।

एक तो दुबली देह और उसमें भी खुले बदन, ऊपर से खांसी आ रही थी। परमा चाचा ने तो कहा भी सही, 'मानो-न-मानो पर आपकी देह में कुछ बिगाड़ है। दिखाए थे कहीं दाने?...'

कालू के लिए भी अब तुलना करने जैसा क्या बचा? वह मन ही मन जलता रहा, 'इससे तो राजुड़ी को सौत का संकट ही साठ गुना बेहतर!'

फिर से राजू घर से बाहर निकली। ढलते आंचल के नीचे हाथ में कुछ छिपाई हुई थी। कालू समझ गया, घी की खाली पावसेरी ही है, कहीं से घी लेने जा रही है। और फिर उसका जी कुढ़ने लगा, 'हर रोज दिन में दो बार घी खाने वाली यहां इन पाहुनों के लिए भी ले आएगी कहीं से। फिर घरवालों के और बहू के करम में तो घी खाना ही कहां है?'...राजू के पति पर दृष्टि डालते मन में ही बोला, 'जनम में भी घी नहीं देखा होगा। कहीं बिरादरी के भोज में मिला होगा सो मुफ्त! तिस पर भी किसान को मजदूरी! देह बेचारी गल न जाए तो और हो क्या!'

राजू घर में घी पहुंचाकर फिर से बाहर निकली, कालू को लगा, शायद घर में गेहूं भी नहीं होंगे।

पर इस बार उसका अंदाज गलत निकला, सो भी न निकलता, पर घर में चक्की चल रही थी, यह खयाल तो दो-चार युवतियों के साथ राजू को खाली हाथ लौटते देखा तभी आया। तभी वह समझ पाया कि कसार के गेहूं तो चक्की में पीसे जा रहे हैं।

फिर राजू इन युवतियों को क्यों बुला लाई? कालू कुछ भी नहीं समझ पाया।...थोड़ी देर बाद दो-चार और लड़कियां आ पहुंचीं और उनको दरवाजे में पैठते-निकलते, झांकते या एक-दूसरी को धक्का मारते देखकर कालू समझ गया, गालियां देने का, गाने गाने का विचार है। गाना सुनाई भी दिया।

'कालू तारे ते कड़ी ओ क्यों थी? बार बापोना!'

(हे कालू, बारह बापवाले तेरे पास यह बालियां कहां से आईं?)

कालू की आत्मा कमल के फूल की तरह खिल उठी। क्यों न खिले? दशमी की चांदनी रात और सो भी शरद की! किसी क्षण दूधिया चांदनी की झिलमिलाहट लिए और किसी क्षण बादल से छनकर आता उजियारा! पवन भी उस चांदनी की तरह कभी जोरों से बह आता तो क्षण में फिर 'फर्-फर् फर्-फर्' करता रहता।

पर इन सबसे भी कालू के अंतर को अधिक आनंद देनेवाली तो थी राजू। गांव की युवतियां भले ही गाती थीं। पर गीतों का प्रारंभ करनेवाली तो राजू ही थी न?

कालू दिल्लगी किए बिना रह न पाया, 'जरा देखो तो सही, मेरे कानों में बालियां कहां हैं?'

दरवाजे में झुमका बनकर खड़ी उन लड़कियों के नेपथ्य से किसी ने कहा, 'कुरता कहो कुरता, तुम लोग मेरा गीत पूरा सुनने भी नहीं रुकतीं!'

और दूसरी बार पंक्ति को सुधार लिया गया—

'कालू तारे ते केडियुं क्यांथी, बार बापोना!
तारी या दरजी डाने गैंती, बार बापोना!
अल्या गैंती पण रातवासो रैंती, बार बापोना!
अल्या एम करी केंडियुं लवी, बार बापोना!'

(हे कालू, तेरे पास यह कुरता कैसा? बारह बापवाले, तेरी मां दरजी के घर गई थी? गई थी और रात भर रही थी, अबे, कैसे कुरता ले आई, बारह बापवाले?)

सच पूछें तो कालू का ध्यान गीत से दूसरी बात पर चला गया था, 'राजू ये गालियां स्नेह से गवाती है या डाह से?'

और कालू उतना नादान नहीं था कि समझ नहीं पाता! बल्कि जानता था कि जो गीत में गाई जाए वे गालियां हुलास की ही होती हैं। ऐसी गालियां खाने के लिए तो लग्न के वक्त युवक युवतियों की मंडलियों के आगे से गुजरते थे, और कुछ टोकते या छेड़ते सो भी युवतियों का ध्यान खींचने के लिए, गालियां गवाकर दूसरों के सामने अपना महत्व सिद्ध करने के लिए।

'पर इस समय स्नेह जगाने वाली क्या बात है?' कालू के हिसाब से तो जैसा उसे लग रहा था वैसा ही राजू को भी लगना चाहिए था। सीधे भाग्य उल्टे हो गए, उसका दुख होना चाहिए...जबकि यह तो, आते-जाते रुककर उन युवतियों को नए गीत याद दिलाती रहती थी!

'मारा वाड़ा ने पछवाड़े रे ऊंटडी झोला खाय...'

(मेरे वाड़े के पीछे ऊंटनी झूल रही है...)

'पिछवाड़े नहाने का पानी रखा है, परमा चाचा।' राजू दरवाजे से बाहर मुंह निकालकर बोली।

'नहा आ, कालिए!' बुड्ढे परमा ने कहने के लिए ही कहा।

'ऐसा भी हो सकता है? उठिए, जाइए!' कालू ने कहा।

बुड्ढे के जाने के बाद मिलने को आए हुए गांव के आदमी भी चले गए और इसके साथ ही राजू की लाज हट गई, और कालू की हिचक भी निकल गई।

'ये गालियां देने से आप लोगों को कुछ मिलता है?' कालू ने शुरू किया।

उन युवतियों में से एक आवाज आई। राजू मंडली में थी पर आवाज़ उसकी नहीं थीं, 'हां, हजार से भी महंगी हमारी भली बहन को ले जा रहे हैं, फिर इतनी गालियां भी न दें?'

कालू की जीभ तक आ गया, 'बदले में लाख भी जिसकी बिसात में नहीं ऐसी राजू छोड़ देनी पड़ी है!' पर यों कहने का कोई अर्थ न था, उचित भी न था, इतना

ही कहा, 'गालियां देने के बजाय कुछ बात ही कीजिए न? और कहना हो सो सीधा ही कहिए न?'

राजू ने उन लड़कियों से कहा, 'कहिए बहन, वह गाना...समझदार को...' और लड़कियों ने शुरू कर दिया—

'समजुने साने समजावुं,
गध्धे गडदा— पाटु जो...'

(समझदार को इशारे से समझा दूं, गदहे को घूंसे-लात से...)

'बस! अब संतोष हुआ न?' कहकर राजू घर में चली गई। फिर कालू को भी, धोती की चुन्नट लगाते परमा ने खड़ा किया, 'जा, नहा ले, बर्तन में पानी है।'

कालू तो राह ही देख रहा था...परंतु घर के पिछवाड़े जाकर देखता है तो राजू वहां नहीं थी। पत्थर पर रखी गीली धोती बदलते उसने तरकीब सोची। उस गरम पानी के बर्तन के पास ठंडे पानी का घड़ा रखा था। वह भी उसे न दिखा। हांक लगाई, 'ठंडा पानी देना।'

पर हाय रे नसीब! जहां राजू की आशा कर रहा था वहां भली आई। अब ना कैसे कहे? बर्तन में जितना चाहिए उससे ज्यादा ठंडा पानी था, पर अब अगर ना कह दे तो भली की डांट ही सहनी पड़े, 'तब नखरे क्यों कर रहे हैं?'

कालू लोटा-भर पानी पड़ते ही 'बस-बस' कह उठा पर जिसके काम में भी झिड़की हो उस भली ने घड़ा धीरे से नवाया हो तभी न?'

तभी राजू ने दरवाजे से पूछा, 'डाला न ठंडा पानी?'

कालू का पानी ही नहीं, खुद कालू भी ठंडा हो गया। वह समझ न पाया। राजू ने वह गाना गवाया सो जवाब में या यों ही? और यह ठंडे पानी का सवाल? क्या सच ही वह मेरी आशा पर ठंडा पानी डालने को कह रही थी? या वह भी यों ही अललटप्पू?

पर अललटप्पू हो तो फिर चाची-भतीजी दरवाजे के पास क्यों कानाफूसी करती? कालू अपनी बीस साल की उम्र में इतना कभी नहीं खिसियाया था। बोला वह, 'कहें तो मैं आकर हंसने लगूं, में मदद करूं?'

'आपको हंसना आया होता तो और चाहिए क्या था?' राजू कूक उठी।

इसमें भी कालू को गहरा राज दिखा, पर उसने अपने आप को यह मानने न दिया, 'ना, ना, इसमें इतनी अधिक समझदारी, बोलने की इतनी चातुरी नहीं हो सकती।' तो दूसरी ओर विरोध भी उठ रहा था, 'तुझे क्या मालूम? ससुराल आते ही इतनी बदल गई तो आठ-दस साल में कितनी बदल जाएगी? ब्याहने के बाद तो उसके साथ बातचीत भी नहीं की, तुझे क्या मालूम कि उसमें चातुरी नहीं होगी?'

कालू को चोट पहुंची— बस इस बाबत तो पूछना ही होगा, 'तू तीन बार बोली और तीनों बार मुझे भेद लगा सो सच बात बता, वास्तव में तुझे कहना क्या है?'

साथ-साथ, 'नानिया राजुड़ी को ला रहा है।' अबोले टूटे थे सो पूछनी थी और इसके सिवा ही बहुत-सी बातें करनी थीं...पर मौका मिलना चाहिए न!

भोजन के बाद वह ससुर को मदद करने, पयाल उतारने खलिहान गया। ढलती रात में वापस लौटा तब गांव, मुहल्ला और घर सब कुछ श्मशानवत् था। आंगन में डाली गई अपनी खाट और खाट पर वह सफेद गुदड़ी भी बर्फ-सी ठंडी पड़ चुकी थी! खुद अलाव ही बूढ़े परमा के पीछे-पीछे झोंके लेने लगा था, सोने जा रहा था।

मुर्गा बोला तब तक कालू को नींद नहीं आई। न जाने क्यों चौंक-चौंककर वह जागता था। मानो किसी की आहट सुनाई देती हो! किवाड़ खुलने की घर्र्र् आवाज सुनाई देती थी।

एक बार तो ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे झकझोरा हो...चौथी बार जगा तब तो सचमुच किसी ने पिछोड़ी खींची, पर? देखता है तो बिना दांत का बुड्ढा— परमा चाचा!

'अबे उठ छोरे! दिन तो देख, कितना चढ़ गया है!'

कालू के मुंह की दीप्ति दीए की तरह गुल हो गई। स्तब्ध हो कर बैठ रहा—

राजू ने दातुन दिया तब उसकी नाड़ियां और विचार मानो चलने लगे।

बुड्ढा परमा न होता तब भी दामाद के सामान में अफीम का रस निकलता। हां, इतने आदमी इकट्ठे न होते सो बात सही।

अफीम के इजारे अभी हुए थे पर इतना ज्यादा बंदोबस्त नहीं था। अरे खुद सरकारी आदमी नटवरसिंह हवलदार ही अफीम बेचने का पेशा करता था। उसने ही दो तोले अफीम कालू के ससुर के नाम उधार दिया। गांव के एक वृद्ध आदमी ने कटोरी में उसे घोलना शुरू किया।

चारों ओर चार खाटों की चौकड़ी और बीच में तेज जलता अलाव। इन पंद्रह-बीस आदमियों के बीच पांच-सात हुक्के घूम रहे थे। बीस-पच्चीस बालक इस तरह खेल रहे थे जैसे आधा जी खेल में तो आधा जी किसी लालच में। अफीम से उन्हें निस्बत न थी, पर बाद में बांटी जाने वाली खाने की चीजों का लालच था।

कालू को यहां चैन न मिला और वह घर में गया। बुहारती राजू से ही कहा, 'लाइए खील वगैरह कुछ भुना हुआ होता तो। चने न हों तो...'

'आपको उतावली क्यों है? अपने घर की लाज जितनी प्यारी होगी वैसा करूंगी।' राजू ने हंसते-हंसते कहा, 'पाहुने की तरह बाहर ही बैठिए न!'

'आप पाहुनी नहीं तो मैं कैसा? आपकी भी ससुराल है और मेरी भी।'

'बोले हैं तो पालन भी करेंगे, रह जाइए यहां ही।' और राजू कालू को सचेत करना चाहती हो इस तरह अड़ार के अंधेरे कोने में कूड़ा इकट्ठा करती हुए जेठानी से कहने लगी, 'क्यों बड़ी बहन! भली बहन के लिए वह अड़ार खाली कर देंगे?'

'वह यहां कैसे रहेगा, बहन!' सास मानो सोच-सोचकर बोलती थीं, 'पूछ तो सही कि ब्याह किए दस साल हुए, बीच में कितनी बार यहां आया है?'

कालू को कहने की इच्छा हुई, 'आप वैसी आवभगत करती हों तो आने की इच्छा भी हो।' पर कहा तब और ही, 'कब आपने बुलाया और मैं न आया?'

'इसमें बुलाने की क्या बात?'

'क्यों नहीं? मुझे क्या मालूम कि आपको अमुक दिन ही मुश्किल काम है?'

सास को भी अचरज हुआ, 'दामाद में इतनी अधिक भावुकता कैसे उभर आई?' और कह दिया, 'जो मेरी है उसे ही ले जाने पर उतारू हो बैठा है— तब तू फिर काम-काज में क्या मदद करते, बेटा!'

राजू को लगा, शायद ऐसी बातों में सास-दामाद झगड़ने लगेंगे। कालू से कहा, 'जाइए बाहर बालें पड़ी हैं उसे भून...' पर तुरंत ही खयाल आया, खुद उसी के लिए तो बालें आई थीं। उसे तो खाट में बैठे-बैठे खानी थीं, न कि भूननी थी। उसने वाक्य बादल दिया, 'भूनकर दूं सो खाइए, जाइए।'

कालू की इच्छा सास के साथ झगड़ा करने की आज बिलकुल न थी बल्कि मन मिलाने की थी। इसीलिए उसने राजू की बात को नजर-अंदाज कर दिया? सास को जवाब दिया, 'सो तो संसार की रूढ़ि है, इसलिए भेजनी तो पड़ेगी न!'

भली, दरवाजे के सामने हंडे पर पनचोरा लिए खड़ी थीं। आंगन में बैठे पुरुषों में से किसी का ध्यान उसकी ओर गया नहीं होगा, गया होगा तो उतारने की जरूरत नहीं लगी होगी। भली ने घर में ही आवाज दी, 'यह पनचोरा कौन उतारता है अब?'

कालू दरवाजे के पास ही था। अड़ार की ओर बनाए छोटे चबूतरे पर पैर रखकर खड़ा था। उस ओर राजू टोकरा भर रही थी, कहा, 'उतार लीजिए न जरा!'

कालू संकट में पड़ गया। अपने घर भी उसने कभी भली के सिर से हंडा-घड़ा नहीं उतारा था। अलबत्ता हंड़ा उतारने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। पानी भरनेवाली कोई भी युवती खुद उतार ले, पर भली तो उतरवाने के लिए ही तीन-तीन बर्तन ले जाती, दो सिर पर और एक बगल में।

आज कालू को बिना बर्तन उतारे चारा ही न था। सास को भी कहने का मौका मिल गया। अलबत्ता संबोधित किया राजू को, 'तू ही उतार ले न हाथ पोंछकर। वह मुरब्बी का छोरा अपने घर नहीं उतारता तो यहां क्यों उतारेगा?'

कालू कुछ भी न बोला। पनचोरा उतारकर दरवाजे में ही रख दिया और सीधा बाहर चला गया।

सास को बहुत-बहुत गुबार निकालना था बल्कि कालू को आड़े हाथों लेना था और इसीलिए तो कह रहा था कि 'दामाद खुद आए तभी भेजूं।' और ऐसा करने के बाद भी भली को भेजना नहीं था, 'मैं छोटे-छोटे तीन बच्चों की देखभाल करूं, घर का काम करूं या बाहर कटाई का काम करूं?'

राजू ने जेठानी को समझाना शुरू किया। वह फिर भी यही कारण बताकर इनकार कर गई। राजू सोच में पड़ गई। वैसे उसने खुद अब ससुराल में स्थिर रहने का पक्का

निश्चय कर लिया था। खास कारण तो यह था कि मायके में भाभी के साथ पटती नहीं थी। उसके खातिर ही सास-बहू में झगड़ा होता। खुद भाई की ही भाभी के आगे नहीं चलती थी तब मां की कैसे चले? इसके अलावा 'राजू नानिए के जानेवाली है।' ऐसी बात भी न जाने किसने चलाई, पर इससे भाई, भाभी और मां के बीच झगड़ा हुआ। बिना कहे ही राजू समझ गई, 'मायके की पालकी से सुसराल की सूली लाख गुना बेहतर!'

फिर भी राजू ने 'मैं हूं न यहां' यह तो नहीं कहा, बल्कि कहा, 'अभी तो भेजिए ही! आपको काम की तकलीफ हो तब बुला लेना!'

फिर भी जेठानी ने नहीं माना, पर देखा कि खुद बेटी का ही खास विरोध न था। कोई भी बहाना नहीं दिखाती थी, 'पैर में चूड़ियां हैं उनके स्थान पर कड़े ले आएं तो जाऊं।' और हाथ की चूड़ियां भी कम थीं, इस विषय में भी कोई मांग नहीं की।

मां समझ गई, 'बेटी को यहां कोदो खाने पड़ते हैं जबकि ससुराल में मक्का मिलती है। यहां दूध के नाम सफेद धार भी नहीं, वहां भैंस दुधार है।' न जाने क्यों बेटी पर प्रेम कम भी हुआ तो दूसरी ओर मन को भी समझा लिया, 'खैर, सुखी रहेगी। जो भी हो लड़के का तो सहारा है मुझे।'

पर विदाई के वक्त मां को याद आया। दामाद को बुलाकर उलाहना दिया, 'तू ऐसा समझता हो कि गरीब घर की है सो चाहे कैसे भी रखूं, वह नहीं चलेगा हां...!'

'मैं भी कहां कम गरीब हूं?' कालू ने नम्रता से कहा।

'फिर भी भाई तेरे तो इन परमाजी जैसे बड़े चाचा हैं और हमें तो...'

बुड्ढा बीच में ही बोला, 'हरेक के चूल्हे मिट्टी के हैं, समधन! राई के दानों में बड़ा कौन, छोटा कौन? और किसलिए ऐसे-वैसे रखेगा? घर में कोई छोटा नहीं, बड़ा नहीं, तब?'

'ना, मैंने सुना है।' सास बोलीं, 'पर इस बार मेरे कानों तक कुछ भी आया तो फिर कभी नहीं भेजूंगी। फिर बिरादरी को भी जो करना होगा, करेगी। और मैंने तो पैसा नहीं देखा, जात देखी है।'

'वह सही है, पर इस बात पर आप बेफिक्र रहें।' कहते हुए बुड्ढा परमा खड़ा हुआ। कालू ने हाथ का टेका देकर उन्हें फूलजी से मांगकर लाई गई घोड़ी पर चढ़ाया।

'तू आ तब धीरे से। मैं आगे पेथा पटेल के घर बैठा हूं।' कहते हुए घोड़ी को आगे बढ़ाया।

आया था जब उस समय के और इस समय के कालू में जमीन-आसमान का अंतर था। कल यहां आते ही उसे चीटियां काटने लगी थीं, घर जाने को तड़प रहा था। जबकि इस समय यह गांव-घर छोड़ना पड़ रहा था, वह प्रियजन के विकट वियोग-सा लग रहा था। आया तब, 'इस घर के साथ संबंध ही न होता तो अच्छा' यह भाव था, जबकि अब आते वक्त इस घर का दुख भी अपना करके जा रहा था। ससुर से

कहा भी सही, 'यह दिवाली न आ गई होती तो दो दिन यहां रुककर खलिहान का काम भी कर देता। पर अब से आगे कभी ऐसा कठिन काम हो तो कहलवाना, आ जाऊंगा।' और उसने कदम बढ़ाते उस ओर भली से बातें करती राजू से पूछा, 'कोदर से कुछ कहना है?'

राजू भी उसके पीछे-पीछे चली, 'कहिएगा कि मजे में हूं और लेने न आए। दिवाली मैं यही करूंगी।'

कालू तो 'लेने न आए' सुनकर चौंक उठा—'क्या सचमुच वह घर बसाकर स्थिर होकर रहना चाहती है? या...ऐसा करके, विश्वास जगाकर यहां से सीधी ही नानिया के घर? भाई के घर से जाए तो बिरादरी कोदर को दंड दे सो...यह भी हो शायद!'

पहले तो कालू के मन में कुछ न था कि राजू नाना के या काले चोर के घर जाए पर अब तो बहुत कुछ था। अपना चचिया-ससुर बे-औरत हो जाता था, सास-ससुर का दुख बढ़ता था कि 'नानिए ने मेरी नाक तो ली, पर यह तो आगे चलकर मेरी ससुराल की नाक लेने बैठा है!' घर तो निर्जन था, सो था पर कभी ससुराल में आता तब, पर वह भी निर्जन होने जा रही थी!

कालू की इच्छा हुई कि राजू को सावधान कर दूं—'उस वक्त तो मैं छोटा था, पर अब अगर कुछ ऊटपटांग हुआ तो पेथा पटेल के बाप के भी दांत तोड़ डालूंगा...।'

पर उसने देखा कि राजू की प्रत्येक कला शुक्ल पक्ष के चंद्र की तरह प्रतिपल खिलती जा रही थी।

राजू ने, गांव की सीमा पार करके गलियारे में प्रवेश करते कालू को रोका, 'जरा ठहरिए तो!'

राजू भली से कुछ दूरी पर होती तो कालू वह नाना वाली बात पूछ लेता, पर क्या करे? भली तो राजू की छाया की तरह साथ-साथ ही थी।

'देखिए,' राजू ने संबोधन दिया, 'आप तो समझदार हैं और मैं तो आपके आगे बच्चे-सी हूं। फिर भी कहना पड़ता है कि हम ढोर लाते हैं तब उसे गांव के ढोरों के साथ रहना सिखाना पड़ता है। घर के ढोरों के साथ सांस से सांस मिले इस तरह उसे बांधना पड़ता है। जबकि यह तो मनुष्य है। घर के ढोर ही मारने लगें, तो फिर क्या हो?'

'मुझे तूने ढोर कहा!' हंस रहे कालू ने विनोद से कहा।

कालू की आंखों में, उस तुकार में राजू ने पुरानी, बहुत पुरानी पहचान देखी। पर दूसरे ही पल उसने वह देखी-अनदेखी कर दी। हंसते हुए कहा, 'ढोर तो नहीं, पर आप पुरुषों को क्या मालूम कि हम पर बापू का घर छोड़ते क्या-क्या बीतती होगी...?'

तलवार की नोक जमीन पर टेककर कालू ने, दस कदम की दूरी पर अरनी के पत्ते तोड़ती भली की ओर इशारा करते बीच में ही कहा, 'पूछ ले उसे अगर कभी दुतकारा हो...'

'मैं सब कुछ जानती हूं। पर साधु की तरह संन्यास लेकर घूमते रहें सो दुतकारने से भी ज्यादा कड़ा लगता है!' कहके राजू हंसी—चलिए, जाइए, देर हो जाएगी। और अभी तो पांच कोस जाना है।'

सोच में पड़ गए कालू ने पग बढ़ाया। राजू भली की ओर मुड़ी, 'क्या कहूं आपसे? और कुछ करना नहीं है, एक वह घुड़कने की आदत भूलने की है। मैं जानती हूं कि आपके पेट में पाप नहीं है, पर आप तो मुझसे बड़ी हैं, क्या कहना पड़ेगा? इतना ही कि औरत ने अगर पति को जीत लिया तो मानो जग जीत लिया, सारा अवतार जीत लिया!...लो जाओ, अंतर बढ जाएगा फिर।'

भली ने आंसू भरी आंखों से चाची से विदा ली।

कालू तो आगे-पीछे का खयाल भूलकर विचारों की धुन में चला जा रहा था। विचार तो राजू के ही थे, पर भांति-भांति के। घड़ी में राजू उसे सयानेपन का सागर लगती तो घड़ी में अकाल यौवन गंवा बैठी दुखियारी दिखती...किसी क्षण लाल-बुझक्कड़ और वाचाल तो दूसरे क्षण बड़ी ताकतवर। घोलकर, पिघलाकर पी जाने वाली किसी देवी-सी दिखने लगी। खुद तो उसके सामने वह बालक-सा लगता।

कालू की समझ में आ ही नहीं रहा था कि गेहूं-मक्के की खाने वाली, घी-दूध से मुंह धोने वाली, किसी छैल-छबीले का आंगन उजागर कर सके ऐसी, सुंदर स्त्रियों में भी सुंदर राजू यहां कोदे की रोटी छाछ में मिलाकर खाती है, उस हड्डियों के ढांचे की औरत बनकर रहती है सो अनिच्छा से, विवश होकर या फिर उसे दुख जैसा कुछ महसूस ही नहीं होता? कालू ने कल से लेकर अभी तक की राजू की बातें, उसका आना-जाना, कामकाज वगैरह सब याद कर देखा, पर कहीं दुख का छींटा भी नजर न आया।

परंतु यह भी कालू के लिए असह्य हो गया। राजू दुखी हो वह भी उसे पसंद न था और उस तरह मौज से जी रही थी सो भी उसे रुचता न था...

पांच कोस का वह सारा पंथ राजू के विचारों में पूरा हो गया। गांव की हद आने पर ही कालू चेत पाया। भीतर मचे उल्कापात का और मस्तिष्क में चलते बिलौने का खयाल आते ही वह ऊब के साथ बड़बड़ाया, 'इससे तो वे अबोले ही अच्छे थे! उसने यह बातचीत की तभी यह चिंता शुरू हुई न? बोलते न थे तब तक ससुराल में रहे या काले चोर के घर जाए तो भी इसकी मुझे कुछ फिक्र नहीं थी?' और हंसने की कोशिश के साथ हृदय में मानो अंगारा चंप गया हो उस तरह हाथ हिलाते बोला, 'राम-राम...! हंसे तो, पर पूरे फंसे भाई!...वैसा ही है जैसे वे भांड़ खेल करते हैं कि 'चेत मछंदर गोरख आया', ऐसे ही लक्षण तेरे भी लगते हैं, कालिए!'

20

झगड़ा कालू और नाना का

दिवाली पर कालू उस घेरदार कुरते की बजाय पांच कोस की दूरी पर जाकर पांच बटन वाला बंद गले का कोट सिला लाया। एक कोट कोदर के लिए भी ले आया कि कोई निंदा करे तो दोनों मिलकर विरोध कर सकें।

और हुआ भी वैसा ही। बूढ़ा परमा वानप्रस्थ दशा भोग रहा था। मुखिए का काम रणछोड़ ने संभाल लिया था सो उसी के घर दिवाली के दिन मजलिस हुई। हर कोई कालू तथा कोदर के 'कुरते' देखने लगा। बहुतेरों ने बखान किया। खुद सिलाने के लिए भी तैयार हुए, जबकि कुछ लोगों को वह पसंद न आए। उसमें भी मुखिया के छोटे भाई नाना ने तो बहस ही छेड़ दी, 'हम लोगों को भी ऐसा शोभा देता होगा दरजियों-सा? बिरादरी में कोई देखे तो बाहर ही निकाल दे, हां।' जबकि कोदर को तो उसने सलाह ही दे दी, 'आप भी कालिए की राह चलकर यह क्या करने बैठे हैं? आज पहना सो पहना, अब से मत पहनना कभी और कहीं बिरादरी में मत पहन जाना!'

कोदर के पास कालू बैठा होता तो उसे अवश्य सुना देता, 'जा-जा, अबे बिरादरी वाली! आना बिरादरी में कहने!' पर इस समय वह वहां न था। उस ओर बालकों में सुखड़ी (जमी पंजीरी) बांट रहा था।

'ठीक'— कहकर कोदर गाना गाने में लग गया जबकि नाना न तो गाने में शामिल हुआ, न कुछ वजारत करता था। इस तरह बेचैन था मानो किसी के इंतजार में हो।

कोदर को अपने पक्ष में लेने की नाना की बड़ी इच्छा थी। प्रयत्न भी बहुत-से किए थे जैसे चौमासे में हल साझे में चलाना, तो फिर बैल चराना और निराई-लुनाई का काम करना।

मतलब एक ही था— ऐसा करके कोदर को अपने पक्ष में लेना। उसकी पत्नी को तो पक्ष में ले ही लिया था।

पर कोदर तो मानो कुछ समझता ही न था। अनुकूलता देख साझेदारी भी कर लेता और आस-पास कालू का हल चल रहा हो तो जाकर तंबाकू भी पी आता।

नाना समझ गया कि कोदर कालू का साथ नहीं छोड़ेगा, जबकि राजू अपनी भाभी

की बात भी नहीं मानेगी। उसने राजू को ही वश में करने की कोशिश की, बीच में दलाल रखकर।

और बिचवाइयों को कहने के अनुसार तो यह दिवाली का दिन ही क़ौल था। परंतु नाना ने देखा कि राजू अपने मायके ही नहीं आई। फिर कपड़े पहनाना तो रहा ही कहां? फिर भी उसने दो रुपये खर्च करके उन बिचवइयों के द्वारा राजू की ससुराल में आदमी भेजा...नाना के लिए तो दिवाली बेकार हो रही थी!

नाना को पैसे से भी अधिक गुमान था अपने रूप का और वाकई वह कालू से ज्यादा खूबसूरत था, ऊंचा, पतला और गोरा। जबकि कालू मध्यम कद का, मांसल काठी का और श्याम वर्ण था। इसके अलावा गाने-दोहे आदि में भी वह अव्वल था। हल हांकते दोहे गाने का उसे शौक था जब कि कालू शायद ही दोहे गाता। गीत भी कभी मौज में आ जाने पर ही गाता। वरना अधिक समय तो ऐसे कामों में लगा रहता जैसे कुछ बांटना हो या सुखड़ी सेंकनी हो या किसी झगड़े में न्याय करना हो या भैंस-बैल की कीमत निश्चित करनी हो, या ढोर के दुख परखने हों। बड़े दर्द पर चरका भी लगा लेता।

अपने इस रूप-गुमान पर ही नाना को यकीन था कि राजू मोहित हो जाएगी, कालिए की अपेक्षा मुझे ही पहले पसंद करेगी। उस थप्पड़ के बाद भी एक-दो बार उसने राजू से मजाक कर देखा था। राजू ने सुन लिया था और न बोलकर उसकी अपेक्षा ही की थी।

नाना ने राजू के इस मौन को आधा हां मान लिया और उसे पेशेवर बिचवइए मिल गए। सच पूछें तो उन लोगों का भी दोष न था। उन्हें भी आशा थी कि राजू परमा पटेल के नानिए के जाने में इनकार नहीं करेगी। हमें तो जीभ हिलाने के ही पांच-पच्चीस रुपए मिलेंगे और भलाई तो मुफ्त में।

पर उन बिचवइयों को यह भलाई और रुपए महंगे पड़ गए। राजू ने इनकार किया इतना ही नहीं, सख्ती से डांटा भी। साथ ही बिरादरी से फरियाद करने की तलवार ऊपर लटका रखी, 'मुझे भरमाने आए हैं पर याद रखना, आपकी बात बिरादरी तक न पहुंचाऊं तो!'

बिचवाइयों के लिए तो फंस जाने जैसा हो गया। उस ओर नाना भी, 'मुझे नाहक लुभाया-तड़पाया? ऐसा करके मेरी बातें फैलाईं?' कहकर लड़ने पर उतारू हो जाएगा तो? और उन्होंने उस आदमी के द्वारा कहलवा दिया, 'जा, कुत्ते-बिल्ली को मार।'

'बात सच थी—राजू इन दिवाली के दिनों में आनेवाली ही थी, पर कालू भली को लेने आया, उस दिन से बात पलट गई!'

और नाना इस बात को सही मान बैठा, 'सच्ची बात! कालिए ने ही...बुलावे के लिए गया उसी वक्त राजू के कान फूंके!' नाना आगबबूला हो गया। यहां तक कि सुखड़ी देने को आए हुए कालू से कहे बिना रह न पाया, 'तेरे मुंह में क्या आया बे,

कालिए?'

कालू तो क्षण-भर के लिए झेंप गया। उसकी भरी चुटकी वैसी ही रह गई, 'क्या हुआ, भाई?'

'जो हुआ सो ठीक हुआ! पर...' नाना के शब्दों की अपेक्षा उसके हिलते सिर, पैर और आग बिखेरती आंखों से, उसके अंग-प्रत्यंग से, झुंझलाहट प्रकट होती रही। वह बोल उठा, 'पर याद रखना, बांझ की तरह बिना मौत मर न जाए तो, नानिया क्या कहता था?'

कालू कब तक गुस्सा शांत रखे? दो प्रकार की अकुलाहट थी। बिना कारण बताए भद्दी-भद्दी गालियां दे रहा था, कालू ने मूंछ पर ताव देते हुए झट नाना की कलाई पकड़ी, 'अबे कुत्ती की औलाद बोल गाली क्यों दे रहा है?'

नाना इस वक्त मरजिया हो गया था। कलाई छुड़ाकर कालू की गरदन पर झपटा। कालू के हाथ वाला सुखड़ी से भरा थाल बैठे हुए लोगों के ऊपर से होता पत्थर के खंभे से टकराया, थीन् थीन् थन्नन्...

अफीमची तो अवाक् हो बैठे ही थे, पर इस थाल ने तो उन दोहे गानेवालों को भी चुप कर दिया। क्षण भर तो एक-दूसरे से पूछते रहे, 'पर है क्या? कौन-कौन लड़ रहे हैं? कालिया और नानिया, सो तो मालूम हुआ, पर कोई दोष-गुनाह?'

सच पूछें तो कालू को इस घर पर बरसों से रोष था। उस रोष को हलका करने का एकाध मौका मिला था, पर सो भी माली और रणछोड़ पर। पर आज तो उसका 'सात जनम का बैरी' खुद ही सामने आ गया था।

कालू ने गरदन से हाथ छुड़ाते हुए कहा भी, 'बहुत दिनों से देख रहा था, पर उस बुड्ढे की लिहाज थी! आज तो तू खुद ही...' और ऊंचा करके नाना को गिरा दिया। अच्छा हुआ कि और लोगों ने उसे पकड़ लिया, नहीं तो जैसा कि रामा ने कहा, 'हाय रे हाय! अभी कद्दू की तरह दस सेर दही निकल जाता!'

पचास आदमियों से भरा हुआ सारा दालान खड़ा हो गया, कोई कालू को पकड़ता था तो कोई रणछोड़ को। नाना भी आखिर था तो भाई ही न?

पर अधिकांश लोगों की इच्छा थी कि झगड़ा बढ़े। कुछ लोग तो आपस में कहते भी थे, 'बहुत दिन कालू के बापू को सताया है, चुकता कर दो उसका बदला!' इन लोगों को भरोसा था कि दरवाजे से गालियां देती, बिना दांत की माली और रणछोड़ की पत्नी और अलग करने की कोशिश करता बुड्ढा परमा भी बेटे के पक्ष में शामिल हो जाएं, तब भी कालू उनसे नहीं दबेगा। और कुछ संभव नहीं है, फिर भी कालू तकलीफ में होगा तो वेचात, कासम, कोदर, शंकरदा तथा भगा आदि देखते रहनेवाले थोड़े ही थे?

कालू ने नाना को पटका, इसके बाद घूंसा लगाते रणछोड़ को भी सावधान कर दिया, 'अपनी इज्जत बचानी हो तो हो जा दूर, नहीं तो...' और 'खींच, पकड़, जोर आ

रहा है!' ...कह रहे नाना के लिए उन लोगों से कहा, 'छोड़ दो, आने दो उसे, मैं इसकी इच्छा पूरी करूं।' कालू ने उसे पकड़ने वालों को भी डांटा, 'देखते नहीं, तुम्हारे बाप को गाली देता है? छोड़ दो मुझे!' और एक ही हिचकोले से, मदमस्त सांड़ की तरह रस्सी तुड़ाकर कालू ने उन पकड़नेवालों से हाथ छुड़ा लिए। लोग उसे फिर से पकड़ लें इससे पहले ही गाली देते नाना के मुंह पर राठोड़ी पंजा जमा दिया, 'यह मुंह मेरी मां के लिए है?' वहां से मुड़ा दरवाजे की ओर, 'खड़ी रह तेरी जात की बुढ़िया मारूं! एक भी दांत मुंह में छोड़ूं तो...'

रामा फिर बोल उठा, 'अबे, तेरे पहले तो भगवान ने ही उस बुढ़िया के दांत तोड़ डाले हैं, कालिया!' आस-पास वाले हंस पड़े, जबकि कुछ रामा पर चिढ़ भी गए। नाना के मुंह-नाक से लहू निकलता देख उन तटस्थ खड़े लोगों के जी में भी धुकधुकी हुई, 'गजब किया कालिया ने!' वेचात, कोदर आदि दौड़े आए और कालू को और जकड़ लिया। गालियां देते नाना को घर में भिजवाया।

बैलगाड़ी का खड़ा डंडा लेकर झपटते रणछोड़ को भी लोगों ने पकड़ लिया। नाथा को भी मनाकर एक ओर ले गए जबकि कालू को तो सब घर की ओर खींचने लगे।

रणछोड़ फरियाद करने चला। शंकर तथा वेचात के चाचा आदि बीच में आए, 'किसका दोष है, यह देखना बाद में—पर वे लड़े क्यों?' शंकर ने पूछा।

'मेरा बाप जाने कि क्यों लड़े!' रणछोड़ ने कहा।

'लो...फरियाद करने पर भी नानिया का ही दोष होगा तो?'

'दोष है तो यों मार डालना चाहिए, पटेल?' रणछोड़ कुपित हो गया, 'ऐसा ही न्याय करना है न?' और फिर रणछोड़ ने पैर आगे बढ़ाया।

रामा को तो कहने की इच्छा भी हुई, 'सो...जाइए। जमादार आकर कालिए को पांच डंडे जमा जाएगा और पाव सेर घी खा जाएगा।' वैसे रामा भी जानता था कि पांच डंडे सहने मुश्किल थे और इसीलिए तो कहा, 'भाई ही भाई के खिलाफ फरियाद नहीं करेगा तो और करेगा भी कौन?' फिर भी रणछोड़ नहीं लौटा। आखिर कासम बीच में आया, 'क्यों चौधरी, इस तरह फरियाद करके राज्य को लात लगाते हो? और ऐसे तो वैर बढ़ेगा, भाई भाई का खून करेगा और इसका अंत ही नहीं होगा, सो जाने दो। आपको तो दिल बड़ा रखना चाहिए और हम कालिए से भी कुछ नहीं कहेंगे। वरना सच पूछें तो, चौधरी, खास दोष नानिए का ही है। मैं खुद वहां बैठा था। यों ही उसने कालिए को गाली दी। पर, मेरे मेहरबान, इतने दिन तो बुड्ढा भला था, सह लेता, पर अब तो कोई नहीं सहेगा!' कासम की आंखों में गुस्से की पतली रेखा उभरी, 'मुझे याद है उस ब्राह्मण ने जो कहा था...आप सबको चुन-चुनकर मारेगा अगर ये वैर बढ़ाएंगे तो!'

रणछोड़ मुखिया समझ गया, 'सो तो आप उसका न्याय करें तो ठीक, वरना दो

दिन के बाद भी फरियाद तो करूंगा ही। एक बार तो उस कालिए के छिलके उतरवा दूं, फिर जो होनेवाला हो।'

आदत के अनुसार रामा की जीभ तक आ गया, 'क्या होगा फिर? कालिए को घाव-सिट्टा के इलाज से पांच दिन में दुरुस्त कर देंगे और दूसरी बार तो वह हाथ-पैर ही तोड़ देगा...'

सारे गांव में इस लड़ाई की ही बात थी। बच्चे भी पटाखे फोड़ना छोड़, 'कालू चाचा यों कूदे और नाना चाचा यों गिरे!' यही बात करने लग गए थे।

उस दिन बाकायदा मजलिस तो कहीं न हुई, पर एक-एक करके कालू के घर इकट्ठा हुए लोगों को बात में बेकायदा की सुखड़ी तो मिली ही। रामा ने ही सूचित किया, 'कालू भाई, तूने हमें बिना सुखड़ी के रखा तो अब तू ही सेंक।'

'सो सेंक, ना कौन कहता है?' कालू ने कहा।

'पर मेरी जगह पर 'हुडे' (लोकगीत) कौन गाएगा?'

'वह काम मैं करूंगा, ला!' और कालू रामा की जगह बैठ गया। कोदर तथा वेचात की गाई पंक्ति शंकर और भगा के साथ स्वर मिलाते उसने गाई—

'हुड़या...राणांनी वाजी रे छत्रीस शरणाई ओ,
पेला गुजरांनां ढमक्यां रे...ढोल!'

(हे तोते, राणा की बजी छत्तीस शहनाइयां, उन गुर्जरों के बज उठे ढोल।)

भगा ने पंक्ति पूरी करते कालू से कहा, 'यह तो आप और नाना चाचा पर ठीक अंटता है, कालू चाचा!'

'क्यों?'

'क्यों, क्योंकि...' कहने जा रहा था कि तभी दूसरी खाट पर बैठे हुडे गाते कोदर का खयाल आया। कुहनी मारते कहा, 'समझ जाइए न! आपकी और नाना चाचा की लड़ाई 'वेलू' के लिए ही है न?'

कालू को तो भगा ने कहा तभी खयाल आया। भगा की खोज पर वह खुश हो गया। था भी वैसा ही, 'वेलू' (नायिका) के लिए एक ओर से राणा चला तो दूसरी ओर से कालू-सा गरीब भोजा गुर्जर...

दूसरी कड़ी गाते हुए कालू की आवाज बदल गई। उसमें भावुकता आ मिली—

'राणो पहांच्यो रे गामना झांपामां,
पेलो गुजरो सीमडि जाय।'

(राणा पहुंचा गांव के तोरण तक, वह गूजर सिवान में जाए।)

न जाने क्यों कालू को आज अजीब प्रकार का दर्द हुआ। ऐसा लगने लगा जैसे, आज ही जीवन में कोई बड़ी न्यूनता आ गई है, निहायत सूना...अकेला अलग...!

ढलती रात में खाट में लेटने पर भी नींद नहीं आ रही थी। किसी क्षण आ जाती है तब भी वेलू और राजू, नाना और राणा, खुद और राणा, खुद और भोजा— ऊबकर

हुक्का भरा। बड़बड़ाया, 'यह तो जैसे राणा और भोजा लड़ रहे है वैसे सपने में मैं और नाना भी लड़ने लगे हैं।'

तंबाकू के नशे में या फिर रतजगे के कारण, नींद तो आ गई पर साथ-साथ सपने भी अलग थे, किंतु राजू के ही...

सुबह-सुबह पत्नी ने जगाया तब भी उसकी नजर मानो कुछ खोज रही थी...कुछ खो बैठा था वह—याद करते हंसा। बगल में दबी पिछौरी खींचकर खाट से नीचे उतरते हुए बड़बड़ाया, 'उतरती रात का सपना सही निकले तो नाना के साथ सारी जिंदगी लड़ना ही पड़े...' कालू का हृदय मानो नाचने लगा...थिरकने लगा।

21

गांव गोरू के साथ, कालू मन के साथ

कालू जगा तब अरुणोदय हो चुका था। गांव के उस छोर पर बसे ठाकरडाओं के घर मुरगा बोल रहा था। कासम घांची का मुरगा तो नीम पर चढ़कर सारे गांव को इस नूतन वर्ष की बधाई दे रहा था, अभिनंदन कर रहा था, 'कुकड़ूं...कू...ऊ!'

नूतन वर्ष में सारी धरती कुलबुला रही थी। स्त्रियां कूड़ा-करकट के साथ अपनी झुंझलाहट भी निकाल कर फूटी हांड़ी में भरकर गांव के बाहर डाल आईं। पंद्रह दिनों में एक बार नहाने वाला बुड्ढा जगा भी आज पानी मंगाकर नहाया। बच्चों को भी केवल एक-एक बार ही झकझोरना पड़ा। उन्होंने नहाने के साथ ही नए कपड़े पहनकर पटाखे छोड़ते अपना खेल शुरू कर दिया, 'कालू चाचा, ए फलां चाची...'

कालू को रामा के बच्चे बुलाने आए पर कालू बोले तब न? अभी तो वह नहाया ही नहीं था। बिना नहाए वह बोले तो वे बच्चे उसे कहेंगे 'जाइए, गांव के गधे चरा आइए!'

वैसे बच्चे तो नहाए हुए को भी गधे चराने भेजते थे।

कालू दातुन करने बैठा तभी घर-घर घूमता गांव का नाई शिवा आ पहुंचा, 'भाभी, भाभी! पानी निकालिए, चलिए। उठिए, कालू भाई।'

'तू खुशी से जा शिवा, दूसरे घर। तू आया, यही नहलाने के बराबर है।'

'अरे ऐसा भी हो सकता है, कालू भाई? आप जैसे को तो...' शिवा ने हंसकर बात बदली, 'और शायद पीठ पर लहू जम गया होगा।'

'क्यों?' तभी कालू को याद आ गया, 'हां भाई! मैं सोच रहा था कि मेरा बदन क्यों दुखता है...'

'क्यों न दुखे?' शिवा बीच में ही बोल उठा, 'आप तो नानिए पर झपटे थे और पीछे खड़े रणछोड़ मुखिया ने आपके बदन पर घूंसे-लात कम जमाए थे क्या?'

'अच्छा?'

'अच्छा क्या? सो तो भाई, आप ही सह पाए। इतनी मार खाने पर मुझ-सा तो सीधा खाट में ही पड़ा रहे।'

कालू ने भली से कहकर, शिवा 'ना' कहता रहा फिर भी, रात के लड्डू दिलाए।

लड्डू खाते शिवा ने वह बात जारी रखी। कालू ने दातुन करते-करते हुंकारी भरी।

इतने में भली ने पानी निकाला। कालू ने कपड़े उतारे। इस बीच शिवा ने पानी ठंडा-गरम करके नहाने योग्य बना दिया, 'लीजिए, बैठ जाइए, चलिए।'

शिवा ज्यों-ज्यों नहलाता गया, कालू के अंग मसलता गया, त्यों-त्यों 'ओहो! यहां तो लहू जम गया है...ओहो! पहलू में भी यह देखिए तो, ओहो...ओहो!'

'खैर! ले चल, पूरा कर दे। तुझे फिर देर होगी।'

'अरे अभी तो आधा गांव बाकी है।' शिवा ने कालू पर गरम पानी की धार डालते हुए कहा। कालू को धोती देते ही रवाना हो गया, 'बदलिए कपड़े, मैं तो जाऊं!'

'अबे तंबाकू तो पी,' कालू ने कहा। पर इससे पहले तो शिवा आंगन भी पार कर चुका था, 'तंबाकू पीने से शिवला थोड़े ही खुश होने वाला है?' सामनेवाले घर, परमा चाचा के घर, पहुंचते बोला, 'लट्ठे-सी आठ हाथ की धोती चाहिए...फिर आप जानें!' और बुड्ढे को पुकारा, 'बाबा, कहां गए नाथा भाई? कंकु भाभी, पानी निकालिए...'

अरुण के पीछे-पीछे ऊषा आई; अबीर उड़ाती हुई, चारों और कुंकुम बिखेरती, बादलों के डूंगर-डूंगर पर घूमती और फूल चुन-चुनकर आंचल में भरती हुई...

स्त्रियों ने ढोर बाहर निकालना शुरू कर दिया। पुरुष रात में पीसकर रखी हिरमजी से उनके सींग रंगने लगे। कालू जैसे ने तो गाय-बैलों के अंग पर इंडुरी के निशान भी बनाए।

पर हिरमजी से भी कालू के मस्तिष्क में ढलती रात में सपने ज्यादा घुल रहे थे, सपने में खास बात न थी; भली से संतान नहीं होती और रामा, भगा आदि राजू को उसके कपड़े पहनाते हैं। राजू भी विधवा हो चुकी है।

कालू का एक मन स्वप्न को आकाशवाणी-सा सच मानता था, तो दूसरा मन, 'अरे सो तो सपना है!' यह कहकर दूर कर देता था।

उस बुढ़िया गाय पर निशान लगाते हुए उसके मन में एक लहर आ गई, 'अगर यह गवरी गाय तोरण[1] पहुंच जाए तो सपना सच, नहीं तो गलत।

गाय का तोरण पहुंच जाना भी सपने-सा ही अनिश्चित था। गवरी का स्वभाव जितना भड़कीला था, उतनी ही वह बुढ़िया थी; बल्कि बुढ़ापा ज्यादा था। कालू ने न्याय करने के लिए, गवरी की चमक बढ़ाने के लिए, गले में घंटी बांधी।

'अब तो ठीक है न! जो होगा, आज शाम को मालूम हो जाएगा।'

'उस पहली बार ब्याई हुई गाय के गले में बांधते तो अच्छा था,' भली ने कहा।

1. नूतन वर्ष के दिन शाम को गांव के मुख्य दरवाजे में तोरण बांधा जाता है, जिसके नीचे से थाली बजाकर छोड़े हुए ढोर, जिनमें स्वाभाविक रूप से गाएं ही आगे होती हैं, पार निकाले जाते हैं। जो सबसे पहले निकले वह 'तोरण-पहुंची' कहलाती है।

'बुढ़िया तोरण पहुंचे तभी सही सही माना जाए,' कालू ने भली को जवाब देते हुए अपने मन को भी जवाब दिया।

रामा तो हंसने ही लगा, 'अरे कालू भाई, बूढ़ी गाय के गले में घंटी!' पर उसे भी कालू ने वहीं जवाब दिया, 'यही सही है। सच-झूठ की परख यों ही हो जाती है?'

'लो छोड़ो, छोड़ो अब, झूठ को सच करने जाए सो भी हो सकता है? घंटी बांधो या घंटी का बाप बांधो!'

'पर तोरण पहुंच जाए तो सच होगा या नहीं?'

बेचारा रामा! उसे क्या मालूम कि कालू का सच-झूठ अलग ही है?

'हां जाओ। अरे अभी मालूम हो जाएगा—गाएं 'खेलाते'[2] ही।'

पर रामा ही क्यों, ढोर छूटे, तो सारा गांव कालू पर हंसने लगा। कालू के भी मन में चिंता पैठी, 'शायद सपना झूठ निकले!'

यह अच्छा था कि कोदर न था। राजू को बुलवाने के लिए उसकी मां ने भेजा था। नहीं तो वह तो कालू को एकदम निराश कर देता।

'ठीक... है। सच होगा तो गवरी तोरण पहुंचेगी ही।' कालू स्वगत बोला।

गांव का वह चार-पांच सौ का धन रहावन वाले विशाल मैदान में इकट्ठा हुआ। गाएं 'खेलाने' आए हुए युवक, युवतियां और बच्चे टीलों पर खड़े हो गए; माना गोपाल पूरब वाले टीले पर लाठी को टेके टंडे कलेजे से इस धन को देख रहा था।

युवकों ने भैसों को अलग करके मानो खिचड़ी से दाल चुन ली। सारा ही मैदान बगुलों के पंखों-सा हिलने-चमकने लगा।

दिवाली का त्योहार शुरू हुआ तब से ही गायों की आंखें फटने लगी थीं। हिरमजी लगाने के बाद तो गोल-गोल घूमने ही लगीं।

बदन दुखता था, फिर भी कालू ने कांछ लगाया। एक किशोर से थाली ले ली।

'ला, मुझे दे तो!'

सभी समझ गए, कालू गर्व दिखाने को ही आगे हुआ है।

माना गोपाल से कालू ने कहा, 'माना चाचा...जो भी हो, पर आज शाम मेरी गवरी को तोरण पहुंचाना है। आप मुझसे एक धोती ले जाइए।'

पर माना गोपाल की धोती की व्यवस्था तो ब्राह्मण करते आए थे। किसी-न-किसी की गाय तोरण पहुंचने वाली थी और उसके मालिक का धोती देने पर ही छुटकारा होना था, इसीलिए तो गोपाल ने कहा, 'आज की धोती तो लिखाकर आया हूं, कालू! पर हां, धोती-धोती में फर्क जरूर होता है!'

'अरे हमारा तो—आप चाहे पानी बांध लें!'

---

2. नए वर्ष के दिन ढोर छोड़ते वक्त गांव के बाहर वाले मैदान में गायों को रोका जाता है। थाली बजाकर उन्हें छोड़ा जाता है उस मैदान में उन्हें दो-चार बार दौड़ाया जाता है। इस 'खेलाना' कहते हैं। वैसे यह शाम को तोरण पहुंचाने का रिहर्सल है।

गोपाल खुश हो गया, 'तो तुम्हारी गवरी पहुंची ही मान लो।'

इसके बाद कालू को होशियार रहने की सूचना देते हुए गोपाल ने उसे आगे भेजा। फिर कहा, 'देखना, संभलना, हां कालू, तुम लोग! अगर दौड़ते-दौड़ते कोई गिर गया तो गायों के खुर के नीचे...।'

'कभी गिरा हूं कि इसी साल...आप बेफिक्र रहिए।'

कालू के साथ शंकरदा, भगा और वेचात का छोटा भाई भी जा मिला। तीनों ने लकड़ियों से थालियां बजाना शुरू किया। आहिस्ते-आहिस्ते गति बढ़ाते गायों को पुकारने लगे—'ही...यो! ही...यो!...'

गोपाल की ओर मुंह किए खड़ी गायों ने थाली की झनकार की ओर मुंह फेरा, 'ही...यो' की आवाज़ पर ध्यान दिया, कुलबुलाहट हुई। कदम बढ़ाए...और आधे मैदान तक पहुंचते दौड़ पड़ी। उन गोपालों के बीच की दूरी कम होने लगी, एक रस्सी भर...पांच हाथ...हाथ भर...

भगा का पैर दबे-न-दबे और वह मैदान के छोर तक आ पहुंचा। बगल में मुड़कर टीले पर चढ़ गया जबकि गाएं तो सीधी गांव की ओर ही...।

पर तभी तो अन्य युवक लाठियां लेकर बीच में आ गए। रुक गई गाएं मुड़कर मुंह फेरती हैं तभी वह आवाज़ सुनाई दी—

'ही यो! ही...यो मां!' गायों के कान हिरन के कानों से सावधान हो गए।

क्षण-भर तो थाली की उस गहरी झनकार के साथ दूर से आती उस आवाज को मानो पहचानती रहीं। बीस साल का पुराना और पहचाना हुआ माना गोपाल टीले पर खड़ा पुकार रहा था, 'ही...यो! ही...यो!'

रामा ने कालू से कहा, 'तू थाली लेकर आगे हुआ था तो उस बार तो गवरी आगे थी। पर इस बार अगर आगे हो जाए तो तेरा घंटी बांधना सफल!'

'तो सफल न? देखना, भाई!' कालू ने दूसरे लोगों से रामा की बात कह सुनाई; इतना ही नहीं, शाम तक—तोरण पहुंचते तक—राह देखने की बजाय अपने मन को उसने मना लिया, तोरण-फोरण कुछ नहीं, और लोगों से कहा, 'इस बार अगर गवरी गायों के इस सारे झुंड को बेधकर आगे निकल जाए तो सही न? तो तोरण पहुंचने के बराबर मानेंगे न?'

हर एक ने कुबूल किया, 'हां, अगर इस बार इस छोर से उस छोर तक निकल जाए तो तेरी गवरी तोरण पहुंच चुकी, ऐसा मान लेंगे, जा।' रामा ने सबकी ओर से कहा।

पर यह तय हो इससे पहले बिफरी हुई गवरी आधा झुंड पारकर चुकी थी। ऊपर से माना गोपाल ने पुकारा, 'ही...यो! गवरी ही...यो...'

गवरी ने अपना नाम सुनते ही मानो धरती तोड़ डाली। पर अन्य गाएं कुछ कम खीजी हुई न थीं...

घुड़दौड़ के खेल में तो दृष्टियां आठ-दस घोड़ों पर बंटी रहती हैं, जबकि यहां तो सारे गांव का दृष्टि इंडुरी के निशानों से सजी एकमात्र गवरी पर थी। कालू तो सांस लेना भी भूल गया था। प्राण भी आंखों में आ पहुंचे, 'जरूर! सपना तो सच निकलेगा— राजुड़ी इसी जन्म में आ मिलेगी...ऐसा ही लगता है,' पर हाय रे तकदीर! गवरी पहले न पहुंची सो न पहुंची!

अलबत्ता, रामा आदि ने तो बखान ही किया, 'जो भी हो, पर गवरी को धन्य कहना पड़ेगा! इतनी गायों को बेधकर टेट वहां पहुंचना, यह छोटे बच्चों का खेल नहीं है।'

पर दूसरी बार तो पीछे रह गई गवरी पूरी तरह आगे निकल गई। रामा को कबूल करना पड़ा, 'कालू मूर्ख नहीं है कि बुढ़िया गाय को घंटी बांधे।' लोगों ने भी कान पकड़ लिए, 'हम तो हंस रहे थे पर गवरी का तो रंग जम गया, भाई!'

और कालू ने, इस पंच-कथन को सच मानकर सपने को भी सच ही गिना। खुश हो गया...सचेत होकर हंसा। मन में बोला भी, 'क्या मन रमाता है पागल!'

अंतिम बार तो माना गोपाल ही-यो...ही...यो, हीयो...करता हुआ सामने वाले उन घनघोर टीलों में अदृश्य हो गया। उसका पीछा करती गाएं भी। और घड़ी-आध घड़ी उस वनराजि में बगुले के पंख फड़फडाते रहे...

22

भेद में भेद

लोग गांव की ओर लौटे। सबके पीछे नए वस्त्रों में यौवन चमकाती स्त्रियां चार-चार, पांच-पांच की पंक्तियों में गीत गाती आ रही थीं :

'माता आजनां भड़केला क्यारे आवशो?
मारी सांजनी वेलाए वाटी जोजो रे
थनगन करता आवशुं...'

(हे माता, आज भड़कने के बाद अब कब आओगी? शाम के वक्त मेरी राह देखना, थिरकती हुई आऊंगी मैं...)

स्त्रियों से कुछ आगे चलते युवक अपने हुडों में मस्त थे :

'भोजनां ढोर पों' च्यां रे सामी मालीए,
पेली वेलानां ओढणोमां य...'

(भोजा के ढोर पहुंच गए उस पार, पहले के रहावन में भी...)

सबसे आगे बच्चे थे; फूलवाले घेरदार कुरतों की एक-दूसरे के साथ तुलना करते और धूल उड़ाते हुए, पटाखे छोड़ते और लड़ते!

पर कालू, न तो उन युवकों के साथ था, न बच्चों के साथ ही। अकेला-अकेला ही चल रहा था। पर न जाने क्यों कल रात के बाद उसे वे हुडे कपड़ों से चिपक गए लपटौएं की तरह चुभते थे, वह खुद और राजू बछड़े-पंड़वे इसी तरह चराते थे न?

'तारी धाणी ने मारा दालिया
वेलु भेगा भेलवीए आज।'

(तेरी खील और मेरे चने, हे वेलू, साथ मिलाएं आज!)

और यह खील-चने की बात तो बिल्कुल सच थी। कालू की नजर के सामने नदी तट वाला वह बरगद, बरगद नीचे की वह बैठक, खील का भुना जाना और बांटना, बरगद की बरोह से झूलना और गाने गाना...वह सारा बचपन सामने खड़ा हो गया।

सचेत होते ही वह अपने आप पर खीझ गया, 'मुझे आज दो दिनों से हुआ क्या है?' हंसने का प्रयत्न करते वह बड़बड़ाया, 'नींद में सपने हो सकते हैं, पर यह तो जागते हुए भी?'

घर जाने की, खाट में पड़कर सो जाने की इच्छा होने पर भी कालू शंकरदा के घर मजलिस में गया। उसे जाना पड़ा क्योंकि गांव का पंच न्याय करने जो बैठेगा। कालू-रामा तो खुद ही चाहते थे, पर ये हुडे कालू का पीछा कर रहे थे, उसका क्या हो? ज्यों कोई डरपोक आदमी डर-डरकर थक जाने पर मान जाए उसी तरह कालू भी कूद पड़ा, खुद ही हुडे गाने लगा :

'तारी ओढ़नी ने मारां फालियां,
वेलु गोरियो घुमड़ीए आज...'

(तेरी ओढ़नी और मेरे साफे, वेलू चल, आज बछड़ों को घुमाकर खेलें...)

कालू को मजा आ रहा था। जीए हुए जीवन को फिर से जीने का वह आनंद लूट रहा था, पर तभी शंकरदा ने उसे पुकारा, 'तू इस तरह हुडे गाता रहे सो तो नहीं चलेगा कालू, चल भाई और कुछ तैयार है, सुखड़ी तो सेंक ले!'

कालू को उठना ही पड़ा। घर में जाकर भगा की बहू को ही पकड़ा, 'ला चल, रतन बहू! पहले तो दो-चार लकड़ियां ला...घी ला, गुड़ ला और...आटा है या फिर सारी रात— यों ही!...' और इस तरह कालू भगा की बहू के साथ हंसी-मज़ाक करता गया और सुखड़ी सेंकता गया।

जबकि बाहर, रूठे हुए रणछोड़ मुखिया और उसके भाइयों को मजलिस में मनाकर लाने की पंचायत चल रही थी। बुड्ढा परमा तो कल शाम से खाट में पड़ा था, वरना वह तो जैसे कि वेचात के चाचा ने कहा, 'बुड्ढा होता तो अभी एकबारगी बुलाने पर ही आ जाता, पर ये तो भाई, नए जमाने के आदमी हैं। पूंछ पकड़ी सो पकड़ी। उसमें भी रणछोड़ तो बुड्ढा गधा होने लगा, पर फिर भी अक्ल न आई।'

'तो भेजिए कालिए को, बुलाने!' एक बुड्ढे ने रास्ता निकाला। दो-चार आदमियों ने हुंकारी भरी, 'हां...हां! तभी तो आएंगे न?'

वेचात बिना बोले रह न पाया, 'कालू के घर थोड़े ही काज है कि वह मनाने जाए?'

'हां...हां।' चार-छह जनों ने इस बात में भी हुंकारी भरी। आड़ पर बैठे रामा ने मौका हथियाया, 'तब ऐसा ही कीजिए न— रणछोड़ मुखिया की पूंछ के साथ ही कालू भाई को बांध दीजिए!'

'अरे भाई, सभी ऐसा कह रहे हैं तब इस त्योहार के दिन मुखिया को टालना है क्या? अगर सच कहें तो आप सभी एक गाड़ी में बैठ गए हैं। इसीलिए मुखिया के घर वाले नहीं आ रहे।' उस बुड्ढे ने कहा।

'सही बात! न्याय करना नहीं और...'

कासम घांची को हंसी आ गई, 'आप भी कैसी बात करते हैं! वह फरियादी यहां आए तभी न्याय किया जाए या वहां घर बैठे-बैठे...?' और उन लोगों से कहा, 'जाइए, इतना प्रेम हो तो बुला लाइए। फिर देखिए कि न्याय होता है या नहीं?'

जोश में आ गए दो-चार आदमियों के साथ वह बुड्ढा भी खड़ा हुआ और रणछोड़ मुखिया को सभी मिलकर लगभग खींच लाए। उस बुड्ढे ने शंकरदा के दालान में प्रवेश करते ही कहा, 'लो, ले आए, कीजिए अब न्याय! कैसा करते हैं, देखें?'

रामा तो मानो राह ही देख रहा था, 'हां, ले लो न्याय, चलो।' आड़ से उतरकर दहलीज पर जा बैठा, 'बुलाइए उस भेंमा डामोर को।'

'अबे, पर भेंमा का यहां क्या काम है?' रणछोड़ बोल उठा।

'बच्चे, समझा इसे बच्चे! बोलो— क्या काम है?' रामा चिढ़ गया।

रामा का कोई भी काम— उसका बोलना भी— हंसी-मजाक माना जाता है, तभी तो बहुत-से तटस्थ आदमियों को और खुद कासम घांची को भी बोलना पड़ा, 'तू इस बात को समझता नहीं। और भेंमा से क्या काम है तुझे?'

'वह भेंमा ही भेद है, कासम चाचा!' रामा खड़ा हो गया। 'अगर रणछोड़ मुखिया भेंमा को बुलाएं तो लिख करके दूं— कभी नहीं बुलाएगा।'

'भाई, जाने दो न, मुझे न्याय ही नहीं करवाना। आप अपने काम कीजिए जो करते हों, हो गया आप लोगों का न्याय!'

'आप गांव वालों को झंखाड़ के चक्कर मत लगवाइए, मुखिया! नहीं तो मुझे सारी बात बता देनी पड़ेगी।'

'सो बता दे न, ऐसी क्या बड़ी बात है?' दो-चार जने बोल उठे। सभी के मन में गांव के छोर पर रहने वाला भेंमा सचमुच भेद हो गया है, 'है क्या यह घोटाला?'

खुद मुखिया के पक्षकारों को कौतूहल होने लगा। रणछोड़ की सलाह ली, 'बुलाएं तब भेंमा को? देखें तो सही।'

मुखिया बीच में ही बोल उठा, 'अबे भाई, मरने दो न आप सब! मुझे न्याय नहीं करवाना। नानिए की नाक टूटी तो टूटी, दूसरे ने तो नहीं तोड़ी न? भाई ने ही भाई को मारा है? होता रहता है ऐसा!'

कासम घांची खुश हो उठा, 'तब ऐसा उदार दिल ही रखिए, मुखिया!'

जबकि सभी पक्षकारों को, लगभग चार-तिहाई गांव को अचरज हुआ। शंकरदा को तो लगा भी, 'घड़ी पहले तो मुखिया सभी के आगे फरियाद कर रहे थे। नानिए को घर से बाहर खींच लाए और नाक की टूटी डंडीर दिखाई। दांत हिलाकर दिखाए और गद्‌गद होकर कहते थे, 'गांव मेरा न्याय नहीं करता,' कहते थे, 'शंकर भाई, तू भी चलती गाड़ी में बैठ गया...' और अब कह रहे हैं, 'भाई-भाई तो हैं।' तब इसे क्या समझा जाए? मेरे मन में तो था कि कालू को कुछ दंड देकर मुखिया को खुश करेंगे, जबकि यह तो...'

कालू भी यह सब सुन रहा था। उसका खयाल भी भेंमा को बुलाने का न था क्योंकि भेंमा आएगा, तो राजू का नाम जरूर आएगा...और सारी फजीहत होगी। अलबत्ता नाना की भी फजीहत थी। फिर भी कालू को विश्वास था कि ये लोग इस तरह

की फजीहत की परवाह करने वाले नहीं है...'मान न मान कालू पर'—सोचते हुए कालू को रणछोड़ की 'भाई-भाई तो हैं' वगैरह ढीली भाषा में कोई तीसरा ही भेद दिख रहा था। इस भेद को समझने की कोशिश में सुखड़ी भी कड़ी हो गई, पर वह भेद तो समझ में आया ही नहीं।...

आखिर शाम को सारा गांव तोरण गया, तभी वह भेद खुला। फागुन का फला-फूला पलाश जैसे सारी वनराजि में उभर आए वैसे ही गांव की स्त्रियों में राजू उभर आती थी। कालू को चिंता हुई, 'चौकस, आज रात को कपड़े पहना दे! इसी कारण रणछोड़ मुखिया ने न्याय करवाना छोड़ दिया, छेंकछाक न की...और बुढ़िया ने इसी कारण राजू को ले आने भेजा। नहीं तो लड़की दूर ब्याही हो तो नए वर्ष के दिन भी न आए। यह मेरे घर से नहीं गई न!...' पास में खड़ा कोदर आज उसे दुश्मन-सा लग रहा था।

कालू इस हद तक बेचैन था कि 'हीयो, हीयो गवरी...हीयो' करता गायों के आगे दौड़ता माना गोपाल या थाली में मूंग की तरह नाचती-दौड़ती आती गाएं आदि दृश्य उसे दिख ही नहीं रहा था। उस ओर नजर करे तब न? जब कि ध्यान 'राजू से कब मिलूं?...कहां मिलूं...मिलूं या न मिलूं?...कहूं या न कहूं?...' वगैरह सवालों में ही फंसा हुआ था। चावल डालकर धन की पूजा की सो भी सबके अनुकरण में बिना ध्यान दिए।

पंच ने कालू की गाय 'पहुंची', इसका ऐलान किया। रामा, भगा आदि ने उसका अभिनंदन किया। कासम घांची ने 'बड़े सगुन भाई, आनेवाला साल भाग्यशाली निकलेगा...' वगैरह कहा पर, वह सब कालू सुनता रहा, सुनने का दिखावा ही करता रहा...

काल के अगणित कुंड़रों पर धरती ने एक ओर कुंड़रा शुरू किया। अस्त होते सवितादेव को मानो धरती गोधूलि के रूप में उड़कर पूजने लगी, आज की विदा देने लगी...

गोधन के पीछे आते ग्राम लोक ने—खासकर युवतियों ने—गीत शुरू किया। गीत गवाती राजू की आवाज तो कोयल की तरह अलग उभर आती थी, बेध्यान कालू का ध्यान भी राजू के इस नए गीत ने एकतान कर दिया।

'दन तो दोड़तो जाय, मनखो माण्यो नथी रे लोल!'

(दिन तो दौड़ता जा रहा है, जीवन को भोगा नहीं है।)

नया गीत था सो गाने की पंक्ति तो राजू अकेली गवाती थी। कालू को तो आज की राजू और ही प्रकार की लग रही थी और तभी तो वह गहरी सांस लेते बड़बड़ाया न?...'न जाने तेरे कितने पहलू हैं?' उल्लास से वह मानो छलक रही थी, जबकि उमड़ता उल्लास तो उस गीत के प्रत्येक शब्द में गूंज पैदा करता था।

'सवारो समणे थाय, मनखो माण्यो नथी रे लोल!'

(सपने में ही सुबह हो जाती है, जीवन को भोगा नहीं है।)

कालू को लगा— राजू मानो उसे ही कह रही थी। उसके आगे अपना दुख गा रही थी।

'वर्षो व्याजमां जाय, मनखो माण्यो नथी रे लोल!'

(बरस ब्याज में बीत रहे हैं, जीवन को भोगा नहीं है।)

और यह पंक्ति सुनने पर तो कालू को लगा, 'अभी शायद हिया गले में आ अटकेगा!' लेकिन हिया तो आकर नहीं अटका, पर नीबू की फांक-सी उन आंखों में आंसू जरूर आ गए। 'मेरा भी यही हाल है, राजू!' और दुबारा गाते समय तो कालू का हृदय भी मानो गाने लगा— रोने लगा।

'वर्षो व्याजमां जाय, मनखो माण्यो नथी रे लोल,
जीवड़ो झंखनों जाय, अरे रे माण्यो नथी रे लोल।'

(बरस ब्याज में बीत रहे हैं, जीवन को भोगा नहीं; जी में तीव्र कामना रहती है, अरे रे—जीवन को भोगा ही नहीं।)

'यही होनेवाला है! तुझे और मुझे भी!'

कालू के बगल में ही कोदर, भगा आदि हुडे गाते आ रहे थे। पर कालू के कान तक उसमें से एक शब्द भी नहीं पहुंच पाता था। गीत समाप्त हुआ मानकर वह तेजी से चला, 'मलनिये महुए' की ओर मुड़ने का रास्ता देखकर ही, क्योंकि उसे तो जाना था सीधा घर। जाते-जाते ही राजू से मिलना था। वह वहम था तो कम, इस गीत ने उसे अधिक शंकाशील बना दिया, 'मानो या न मानो, पर राजू है आज मौज में।'— और यह भी कम हो तो राजू ने उसे गीत में पलटा लिया :

'सहियर एवुं नां थाय, मनखो माणी ले जो रे लोल।'

(हे सखी, ऐसा मत करो, जीवन को भोग लो।)

और दूसरी पंक्ति ने तो कालू को चौंका ही दिया :

'जाग्यां त्यांथी सवार, मनखो माणी ले जो रे लोल।'

(जब जगो तभी सुबह, जीवन को भोग लो।)

'मान न मान कालू, पर राजू ने मुझसे सारी दुनिया से 'हां' कहकर जो करने की ठानी है, वही कह रही है! सुन-सुन, मूरख वह क्या कहती है?'

'कूटशे लोढ़ लपार, मनखो माणी ले जो रे लोल।'

(लुहार तो लोहा कूटेगा ही, जीवन को भोग लो।)

'इसका अर्थ समझा? चिंता और गुत्थियां। भले ही सब कुछ कुएं में जाए पर उसे तो छैल-छबीले नानिए के पास ही जाना है, जीवन भोगना है...बता? अब पूछना है कुछ? सुन, 'दनमां बब्बे वार (दिन में दो-दो बार)...'

और इसके बाद अब राजू उस 'टेक' के स्थान पर दूसरी ही टेक बोल रही थी, पर व्याकुल अधीर कालू ने तो 'दिन में दो-दो बार' के साथ ही वह टेक भी मिला

ली, साथ-साथ दांतों तले उंगली दबा गया, 'यह क्या कह रही है वह! पागल हुई है या...' मन में हुआ कि जाकर राजू के मुंह में पिंडा ठूस दे—गला दबा दे।

परंतु इतने में खयाल आ गया। टेक के स्थान पर कुछ और ही शब्द थे, हलक अलग थी। कालू ने खुद ही अपने आपको शांत किया, 'तू पूरा सुन तो सही।'

और राजू के मुंह से दुबारा गाया जाता वह चरण उसने ध्यान से सुना :

'दनमां बब्बे वार।
सांजनी साथे सवार।
जोवनाई के छे झपाह! मनखो माणी ले जो रे लोल।'

(दिन में दो-दो बार, शाम के साथ सुबह, जवानी कर रही जुहार, जीवन को भोग लो।)

और दिन होता तो कालू इन पंक्तियों पर खुश हो उठता, बोल पड़ता, 'सही बात है, सूर्यनारायण दिन में दो-दो बार उगते और अस्त होते हमें चेतावनी दे रहे हैं। कह रहे हैं, पगले! सावधान हो जाओ, यही जवानजुहार करती जा रही है, सो— '

पर आज तो वह भी बड़बड़ाया और सो भी राजू के नाम।...तभी तुमने चेतना शुरू किया है। जब जागे तब प्रात:काल! कालू को भरोसा हो गया, 'वह तो आज खुलेआम कह रही है, लोग चाहे न समझ पाएं...चोकस—गाने के भेद में भेद ही कुछ और है!...'

पर तभी तो रामा कोदर ने उसे टोका, 'एं, कहां चला कालू, गांव की ओर?'

इस सवाल और झकझक ने और लोगों का भी ध्यान खींचा, 'अरे, तू भला आदमी है। घर जाकर भी आए बिना तुझे चारा नहीं है और हमें तुझे बुलाए बिना, तुम्हारे (रणछोड़-कालू के) अबोले तोड़े बिना, गांव थोड़े ही मिल पाएगा?'

और इसके बाद तो कासम, शंकर ने भी उसे डांटना शुरू कर दिया, 'ओ हो हो! गांव में कभी कोई लड़ता ही नहीं होगा? और तुम लोग तो एक ही बाप की आंतें हो। उसमें भी नए साल के दिन तो भाई-भाई से मिले बिना चल सकता है क्या, काले!'

और कालू को उन लोगों के साथ जाना ही पड़ा—वैसे भीतर तो 'एक बाप की आंतें' और 'भाई-भाई' आदि शब्दों ने आग सुलगाई थी जबकि कासम, शंकर और रणछोड़ की मधुरता ने उस वहम के साथ अधीरता की सीमा भी तोड़ दी थी...पर क्या करे! पुरखों के रिवाज ने उसे बांध रखा था!

23

तुझे क्या?

उस मलनिए महुए के नीचे गोल घेरे में बैठे बुज़ुर्गों पर रणछोड़ मुखिया ने दृष्टि फेंकी। दो घर के आदमियों के न आने का कारण तो सभी जानते थे। कुछ दिन पहले उन लोगों के बीच झगड़ा हुआ था, एक का रामा से और दूसरे का अंधे बुड्ढे जगा से। कारण तो एक ही था, खेत को गायों ने खराब किया था।

मुखिया ने आदमी भेजकर उन लोगों को गांव से बुलाया। इस दरमियान यहां कालू तथा रणछोड़ के बीच मनुहार चले। अलबत्ता कालू ने 'रणछोड़ भाई से मिलने में तो कोई एतराज नहीं, पर नानिए से तो नहीं मिलूंगा,' यह कहकर आधे मनुहार कुबूल कर लिए। परंतु उसने देखा कि शंकर दा, कासम आदि लोग नाना से मिलने की जिद लेकर मुखिया की गाड़ी में बैठ गए थे। कालू समझ गया कि ये लोग भरमा गए हैं...और उसने लाख बात की एक बात कह डाली, 'मुझसे उमंग से मिला न जा सके फिर...आप ही कहिए! मन बिना मिलना कैसा?'

वैसे उन लोगों ने तो कहा, 'मन और बे-मन, मेरे भाई, तू मिल ले कि हो गया सब!' पर कालू ने नहीं माना, कंधे मिलाने से कहीं दिल भी मिलता है? उसने साफ-साफ इनकार कर दिया, 'आप नाहक सिर कूट रहे हैं। नानिए से तो मैं, कुछ भी करें, पर नहीं मिलने वाला।'

'कोई कारण?' कासम ने पूछा।

कालू क्या जवाब देता? अलबत्ता, मन में तो था ही, 'क्योंकि इस तरह नानिया के साथ समाधान करवा के आप लोग मुझे बांध लेना चाहते हैं और फिर आप लोग राजू को कपड़े पहना देंगे...' परंतु इसके बाद सवाल उठेगा ही, 'राजू को कपड़े पहना दें तो भी इसमें तुझे क्या?' इसका जवाब कालू नहीं दे सकता। अगर सच बात बता दे, 'मानूं...तो बहुत कुछ है और न मानूं तो कुछ नहीं।' यह जवाब दे तो लोग उसे पागल ही समझ लें और उसने फिर से लाख बात की एक बात कही, 'आप कहें तो मैं उठकर चला जाऊं यहां से।'

कालू की हठ देखकर उन लोगों ने भी पीछा छोड़ा। उन चार आदमियों को दो-दो शब्दों में मना लिया और सभी खड़े हो गए। चीटिंयों की पंक्ति मानो दोहराने लगी।

गले लगाने के साथ 'रा...म राम!' की आवाज करते भ्रमर मानो गुंजन करते रहे...

पर कालू का जी बड़ा छटपटा रहा था— यहां तक कि कासम घांची को भी 'सलाम' कहने की बजाय 'राम राम' कह बैठा...

माता की, हनुमान जी की ओर 'गामखोड़ा' की जय समाप्त होते ही वह छरका। गांव की ओर चले लोगों ने हुडा शुरू किया :

'जीयो जागो तो रापणां बेसाड़जो।
पेला मुयलाना छेला झवार।'

(जिंदा रहो तो मजलिस बुलाना, उस मरनेवाले की आखिरी जुहार!)

पर यह कड़ी पूरी होते-होते कालू दो खेत दूर निकल गया था। एक ही लगन थी, उन लोगों के आने से पहले राजू से मिलने की।

उसके भेजे में अनेक तर्क उठ रहे थे। राजू को घर में बिठाने की बात जैसा कुछ है भी या मैं ही यह सोच बैठा हूं?...उसके पास कोई प्रमाण न था। किसी ने बात भी न की थी और फिर भी कालू का अंतर पुकार रहा था, 'लिख कर दूं अगर गलत निकले! रणछोड़ के घरवालों ने ही बुढ़िया को पक्ष में लेकर कोदर को उसे बुलाने भेजा और आज रात में राजू को भी मना न लें तो क्या कहे...कोदर से तो कोई पूछेगा भी नहीं! उसमें उतनी सूझ-बूझ होती तो फिर और क्या चाहिए था?'

कालू ने जोर से सांस ली।... 'राजू मान भी जाएगी? क्या कहा जा सकता है!...नहीं है पति का सुख या नहीं है खाने-पीने का सुख? किसकी ओर देखकर दिन काटती रहे? एक बच्चा— ' मर्कट-सा मन अपनी दिशा में आगे बढ़ा, 'अपनी ही बात क्यों नहीं करता? तू और वह एक ही समय ब्याहे थे, फिर तेरे नहीं है तो उसे कैसे होता? और नानिए की बहू को तो ससुराल आए पांच साल हुए। दूसरी पत्नी करे तो नानिए की बात वाजिब कही जाए...' कालू का सिर हिल उठा, 'ना भाई ना! मैं तो पांच साल तो क्या, दस साल के बाद भी पालना न बांधा जाए तब भी दूसरी औरत की बात ही नहीं करूंगा। नानिया को करनी हो तो भले ही करे!' और इसके साथ ही बोल उठा, 'पर राजू को नहीं। राजू को भी जाना हो तो— बिरादरी में दूसरों को मेंढक नहीं निगल गए, बहुत-से पड़े हैं। पर यहां मेरी छाती पर और इसमें भी नानिया की तो नहीं...मेरी नाक काट दी, अरे मेरा सारा जन्म बेकार कर दिया है उसने, और उसमें भी यह राजू का संबंध उससे हो जाए तो मेरे लिए जीना भी मुश्किल हो जाएगा!'

राजू जैसे अभी ही जाने लगी हो, कालू अकुला उठा— गांव में प्रवेश करते ही तय कर दिया, 'रामा-फामा को भेजने से नहीं चलेगा, मैं खुद ही मिल लूं। और अब छिपा हुआ भी क्या है? अब तो नानिया और मैं खुलेआम लड़ाई के मैदान में हैं। विवाह तय हुआ तब तो मैं नासमझ था, पर अब तो नानिया अगर राजू को ले जाए तो उसके लिए तो नाक जाने पर भी होंट रहने जैसा होगा, पर मेरे लिए तो सारी जिंदगी भर छाती में भट्टी जलेगी!...कालू जान पर खेलने को तैयार हो गया, 'अगर राजू समझाने पर भी न

माने तो आखिर...काट डालूंगा, उसमें भी भूल नहीं। पहले उसको और फिर अपने आपको। नानिए को भी जिंदा नहीं छोड़ूंगा...'

राजू के घर की ओर मुड़ा कालू बीच में से ही लौट आया। 'यहां बात करने का ठीक मौका ही नहीं मिलेगा।' और वह सीधा घर आया। नए साल के दीए जलाती पत्नी से कहा, 'एक काम कर, जा, राजू को जरा बुला ला न!'

भली कारण तो समझ गई थी, सुबह भेंमा का नाम आया तब से तो सारा गांव जान गया था। अगले दिन की कालू-नाना की लड़ाई का भेद भी सभी पा गए थे। नाना को राजू लानी है और कालू बीच में आता है। फिर भी भली ने पूछा, 'क्यों?'

'काम है। एक बार तू जा, फिर कारण कहूंगा। और देख, बुढ़िया जान न पाए, इस तरह कहना। कहना कि पल-छिन के लिए आ जाए। कोदर की पत्नी को तो इसकी बू भी नहीं लगनी चाहिए।'

भली के जाने के बाद हुक्का भरते कालू का कलेजा धड़कने लगा, 'आएगी या नहीं आएगी? और मान लो कि न आई तो?...'

'तब भी उसे नानिए के कपड़े तो पहनने नहीं दूंगा।...आखिर वेचात की मदद मागूंगा, ऊंट पर डालकर उठा ले जाऊंगा— '

'उठा ले जाएगा? फिर?' कालू के भीतर से किसी ने पूछा, 'फिर क्या? छोड़ आऊंगा उसे उसकी ससुराल में।'

'और राजू नहीं मानेगी तो—ऊंट से उतरेगी ही नहीं तो?'

दरवाजे के पास वाले छोटे चबूतरे पर बैठकर हुक्का पीते कालू ने एक गहरी सांस ली, 'ऐसे धन्य भाग्य कहां कि वह न उतरे!...तो...तो होनेवाला हो सो हो, पर ऊंट को— ' और कालू की आंखें उस घनघोर अंधेरी रात में नीम के पत्तों के आर-पार देखती रहीं, खुद आगे और राजू पीछे, ऊंट चला जा रहा है, झाड़ियां बेधता और डूंगर लांघता, नदी-नाले पार करता और राह में आते गांवों को दाएं-बाएं छोड़ता...

सामने आती हुई भली को देखकर ही कालू होश में आ गया, 'तू भी क्या-क्या सोच लेता है, देख!' बड़बड़ाते हुए वह हंसा। 'यहां आने से ही इनकार करती होगी, फिर ऊंट से न उतरने की या मुल्क में चले जाने की तो बात ही दूर!' और पूछा, 'क्या कहा?'

भली का मुंह फूला हुआ था। 'आती है, कहकर सीधी घर में ही चलती बनी।'

'पर खड़ी तो रह, मुझे पूरी बात तो बता! वह कहां मिली?'

'घर में और कहां, वीराने में थोड़े ही— '

'सो तू इसमें इतनी चिढ़ती किसलिए है?' कालू भी चिढ़ गया। पर तुरंत ही खयाल आया, 'या किसी ने कुछ कहा?'

'इसमें कोई क्या कहने वाला था?'

कालू की नजर टोली के बीच आती छाया पर पड़ी। अंधेरे में भी उस लचीली

चाल को उसने पहचान लिया, 'ठीक है, जा।' कहकर भली से जाने के लिए कहा।

'आइए,' कालू ने सत्कार किया।

'हां!' कहके राजू घर में जाने लगी। कालू ने रोका, 'यहीं बैठ न! मुझे थोड़ी-सी बात करनी है।'

'सो आपने खा तो लिया होता? मैं कब तक दीया जलाऊं?' भली की आवाज में कुछ गुस्सा था, और क्यों न हो? भली को डर था— सिखावन देते-देते कहीं अपना ही न कर बैठे इसे! इसके लिए बंधन पर्याप्त था, चचिया-सास को तो घर में बिठाएगा नहीं न?'

राजू से कालू बात करे, यही भली को पसंद न था। भले ही वह मायके के हित की बात हो!

'मैं आता हूं, तू खा ले।' कालू को भी भली की उपस्थिति खलने लगी थी।

घर में गई हुई राजू लौटी। चबूतरे के पास वाले खंभे को टेक बना बैठ गई, निडर और निश्चल। आस-पास नजर करके दूर पड़ी सलाई ली। दांत कुरेदते हुए पूछा, 'कहते चलिए! घर में किसी से कहने भी नहीं रुकी।'

कालू क्षण भर उलझा-न उलझा और उसने सीधा ही सवाल किया, 'ये सब जो बातें हो रही हैं, वे सच हैं?'

'कौन-सी बातें?' राजू की हंसती आंखें कह रही थीं कि सब जानने पर भी वह बन रही है।

'क्यों, कौन-सी? नानिया के घर बैठने की, सारे गांव में एक ही बात है न?' कालू को राजू की हंसी पसंद नहीं आई।

'गांव से कहने मैं तो गई नहीं थी न?'

'तू तो नहीं गई पर— ' कालू ने हंसने की कोशिश की, 'तब यही कह न कि वह बात तो सच है?'

'सच ही है तो— '

इन शब्दों ने कालू के दिल को स्तब्ध कर दिया। हंसती राजू उसे डाइन-सी लगी। कह देने की इच्छा हुई, 'उठ यहां से।' पर उससे पहले उसने और पूछना पसंद किया, 'क्या सच है?'

राजू फिर हंसी। पर इस बार का हास्य फीका था, 'लोग बात कर रहे हैं, वही तो!'

'ये बातें सच हैं?' कालू ने सवाल किया।

और राजू ने छोटा-सा जवाब दिया, 'ना।'

'और फिर भी तू बिना बोले सुन रही है?'

राजू कोहनी पर की तीन चूड़ियां और कंकण फेरती रही।

कालू ने आगे कहा, 'तेरी जगह और कोई होता तो सारे गांव को दीवाना कर

देता...किसी के नाम गलत बात चलाना कोई खेल है?'

'पर मेरे आगे कोई बात करे तभी न...किससे लड़ूं?'

राजू के अंतिम शब्दों में खेद था, कुछ भेद भी था।

'तुझसे किसी ने कुछ पूछा ही नहीं?'

राजू की नजर बाएं हाथ की चूड़ियों पर ही थी। गरदन हिला कर 'ना' कहा।

'तेरी मां ने भी नहीं?'

दीए का प्रकाश नजदीक होता, थोड़ी-सी रोशनी होती तो कालू राजू की आंखों में पानी देख सकता था। वैसे आवाज भी परखी जा सकती थी, 'यह सब पूछने का कोई कारण?'

'कारण यह कि— ' बेचैन होकर कालू चबूतरे पर जरा पीछे खिसका। स्वगत कहा, 'जो हो सो पूछते हैं पर...नाहक क्योंकि...लगाव है इसलिए?'

कालू से राजू ने पूछा होता, 'जो भी हो, पर कौन पूछता है?,' तो सचमुच वह भड़क उठता, खिसियाना हो जाता। अपने मन को छोड़ उसने किसी से बात ही नहीं की थी, फिर पूछता कौन?

'हां-हां! चचिया सास हूं, फिर लगाव क्यों न हो!' राजू की आवाज में पूरा दुख था, कड़ुआपन था, स्पष्ट कटाक्ष था।

कालू क्या जवाब दे? उसका अंतर कह रहा था, 'भूल जा, राजू! बहुत दिन साथ खेले...खेलते-खेलते तूने मेरा पानी भरा और भोजन पकाया...खाना भी खिलाया और— ' उसने जोर से एक सांस ली, मानो बाहर आते रुदन को लौटा दिया, पर विचारतंत्र तो चलता ही रहा, 'सब कुछ समझते थे। पर ऐसा मानना कि तेरे-मेरे इतने ही लेख थे...जो झूठ था उसे सच मानें और इस सच को झूठ मान लें। मानो जन्म ही दूसरा है। और भूल जा! गई-गुजरी...जाने दे पगली!...' कालू ने निःश्वास छोड़ा। बोल गया, 'उन बिगाड़नेवालों का निरबंस हो, जीते जी उन्हें कीड़े खाएं!' नीबू की फांक-सी उन आंखों से टप-टप आंसू बरस पड़े।

किसे शाप देता है और किस सिलसिले में बोलता है, ऐसा सवाल भी राजू ने नहीं किया। उसने भी मानो निःश्वास के द्वारा वही शाप दिया उन्हें—जन्म बिगाड़ने वालों को।

'और उसी का घर बसाने को तू तैयार हुई है, राजू?' कालू ने आंख के कोने पोंछते हुए कहा।

घर में बर्तन गिराती, धमाचौकड़ी करती भली की ओर किसी का ध्यान नहीं था, राजू अब भी चूड़ियां फेर रही थी। आंख से टप-टप गिरते आंसू का भी खयाल न था।

'बोल न?...तेरे मुंह से जवाब सुनूं तभी मुझे चैन मिले, राजू!'

राजू को चुप देख कर फिर कालू बोला, 'मैं जानता हूं कि तुझे नहीं है पति का सुख या अन्न भी पेट भर नहीं मिलता...और हमारी जाति में पति को छोड़कर जाने में

छोटाई नहीं है। खुद पेथा पटेल जैसे की बेटी भी गई है। पर— यहां मेरी छाती पर मेरा जीवन बिगाड़ने वाले नानिया के तो— '

'पर आपसे कहा किसने कि मैं नानिया के जा रही हूं?' राजू की आंखों में रोष था।

'तू नहीं कहती, पर लोग तो कहते हैं न? इसीलिए तो मैंने तुझे, तेरा वचन लेने को बुलाया है न?' राजू को चुप देखकर पूछा, 'बोल, तेरा क्या इरादा है?'

'आप मुझे बांध लेना चाहते हैं?'

'इसमें बंध जाने-सा क्या है, राजू? तू ऐसा मानती होगी कि नानिया को दो पैसे का सुख है, पर दूसरी ओर घर में वह खोड़ी (नाना की पत्नी) और बुढ़िया माली दोनों नागिन से भी बुरी हैं सो मत भूलना। तेरे गले से महेरी ही उतरने नहीं देंगी...कहनेवाले ने कहा है कि एक अलगनी पर सौतों की साड़ियां भी लड़ें— '

जाने क्यों राजू अंतिम वाक्य सुनकर यकायक खड़ी हो गई। 'लड़ने दीजिए— ' कहकर पीठ फेर गई।

कालू के कानों के पास यकायक किसी ने बंदूक छोड़ी।

'इसे हुआ क्या है कि उठकर— ' बड़बड़ाता हुआ वह भी खड़ा हो गया, गंभीर भी उतना ही था, 'ऐसे नहीं, राजू, खड़ी रह। मुझे एक बात बताती जा।' कहता हुआ वह भी आंगन में गया। रुक गई राजू के पास जाकर उसने आगे कहा, 'अपने मन में ही वह साफ-साफ बता दे सो मुझे भी मालूम हो?'

'क्या मालूम करना है?' राजू अब भी रोष में थी।

'मालूम...और तो कुछ नहीं पर...इतना तो चौकस रहूं कि नानिया के घर तो मैं तुझे बैठने नहीं दूंगा...फिर...सारी धरती चाहे उलट-पुलट क्यों न हो जाए!'

'क्या करेंगे?' कालू की निश्चलता ने राजू को कुछ खुश किया।

'अभी तो कुछ कहा नहीं जा सकता।' कालू अत्यंत गंभीर था।

'मार डालेंगे मुझे?' राजू की तिरछी आंखें कह रही थीं कि 'हां' सुनने के लिए ही वह तड़प रही है।

'हां! मार भी डालूं!' कहकर कालू, राजू को उन चिर-परिचित आंखों की ओर ताकता रहा। दो-चार पल के मौन के बाद बोला, 'और कुछ नहीं हो पाएगा तो आखिर साधुओं में चला जाऊंगा, पर मुझसे तुझे नानिए का पानी भरते देखा नहीं जा सकेगा...फिर तो तू जाने!' और कालू पीठ फेर गया।

'मुल्क में राख की कमी नहीं है। कहें तो अभी किसी के चूल्हे से टोकरी भर लाऊं!'

राजू के मजाक ने कालू को इतना अधिक बेचैन कर दिया कि जैसे वह मरने-मारने के बीच एक रुदन ही उपाय न हो!

'तू मुझसे अभी कुछ बोल मत, जो तुझे सूझे वहीं कर। मुझे अब कुछ भी नहीं

कहना!' और कालू सीधा घर की ओर चलने लगा।

अड़ोस-पड़ोस सुन सके, इतनी ऊंची आवाज में राजू ने कहा, 'चुपचाप कलेजा ठिकाने रखकर सोना चैन से! राजू के दिन नहीं फिरे कि वह दो जीवन में से फिर तीसरा जीवन– ' और वह भी अधूरा वाक्य छोड़कर पीठ फेर गई, टूटे हृदय से और आंसू भरी आंखों से!

अलग हुए दोनों अपने-अपने अंतर से एक ही सवाल कर रहे थे। कालू पूछता था, 'पति खड़ा छोड़कर जाए या सांपिन-सी माली-खोड़ी के फंदे में फंसे तो भी मुझे क्या उसमें? दूसरे से ब्याही गई तब से ही वह तेरी तो नहीं रही न? दुनिया को तो याद भी नहीं कि उसके साथ तेरी मंगनी हुई थी और याद हो तब भी उस समय की बात तो खत्म हो गई। अब तो वह तेरी पत्नी नहीं है न कि तुझे सिर झुकाकर चलना पड़े! अरे, नहाने-निचोड़ने का भी संबंध नहीं है। फिर नानिया के जाए या काले चोर के जाए तब भी तुझे क्या?'

राजू भी कह रही थी, 'वह मार डाले तो क्या, धरती पर भार कम हो। और साधुओं में चला जाए तब भी तुझे क्या? संसार में रहकर भी वह अपना जन्म तो सार्थक करवा देने योग्य नहीं है न? फिर मुझे क्या?'

और फिर भी ये दोनों हृदय, 'मानें तो बहुत है और नहीं मानते तो कुछ नहीं' कहते-कहते भी बहुत-कुछ 'गिन' रहे थे।

24

दंशन

घर पहुंचने पर राजू और रोने लगी। मुंह ढांपकर रोती रही।

'क्या हुआ तुझे?...बता तो सही। किसी ने कुछ कहा था— हाय-हाय रे बाप! यह लड़की रोती क्यों है?'

'कहा होगा कुछ किसी ने। बेटी के हितैषी कम हैं गांव में!' कोदर की पत्नी केशर ने कहा।

'क्या बात कर रही है यह? किस बात के हितैषी?'

'क्यों? दामाद हैं न!'

'किसका दामाद?'

'किसका क्या आपका— मां-बेटी दोनों का वही है, और कौन?'

बुढ़िया आगबबूला हो उठी, 'जरा होश संभाल कर बोल नहीं तो...मां-बेटी दोनों का एक दामाद अपने बाप-गोत में भी कहीं देखा है?'

'मेरे बाप-गोत में नहीं है, पर आपके गोत में तो है। जो बेटी का वर था उसे बेटी का दामाद करवाया। अब कुटिए सिर सभी मिलकर। अभी उसकी भली भतीजी इशारा करने आई थी सो गई होगी दामाद से मिलने, और दामाद ने भी कुछ भला-बुरा कहा होगा तभी।'

'इसीलिए तू मां-बेटी का एक दामाद बताती है...बाप! बाप! बेटे की बहू उलाहना न दे तो और कौन दे!' कोदर को आता देखकर ही उसने कहा होगा, 'यह सब बेटे में हिम्मत नहीं तभी बहू से सुनना पड़ता है न!' कहकर बुढ़िया रोने लगी।

कोदर के लिए ऊबना कोई नई बात नहीं थी और इसीलिए वह इसका आदी हो गया था न! आज त्योहार के दिन वह कहे बिना रह न पाया 'यह क्या यज्ञ शुरू किया है...?'

'आप भी हो जाइए शामिल, लीजिए साड़ी दूं।' कहकर केशर अपने आपसे बोली, 'न जाने निगोड़े किस जात के हैं?'

'आज तू चुप रहना, हां।' कोदर गुर्राया।

पर केशर को पति की परवाह नहीं थी, 'आ तो सही घर में।' पनसाल से पानी

लेकर रसोईघर में जाती केशर ने कहा।

कोदर के घर में अड़ोस-पड़ोस से नए साल के निमित्त मिलने आए आदमी बढ़ते गए और इनके साथ ही कोदर का गुस्सा भी बढ़ता गया। चीख-पुकार भी बढ़ती गई, 'यह मत बोल, हां, ठीक कह रहा हूं!'

केशर से रहा न गया। रसोईघर से बाहर कोठियों के आगे आकर खड़ी हो गई। कोदर से कहा, 'तेरी मां-बहन में अकल होती तो आज त्योहार के दिन घर के बीच बैठकर मुंह ढांपती? इन रांड़ों का क्या जाने वाला है? नए साल के दिन असगुन हुआ तो मेरे घर हुआ!'

'तेरा घर! अपने बाप के घर से ले आई होगी!'

'तूने अपनी बहन को गांठ बंधाया होता तो मुझे भी अपने मां-बाप ने...'

'इतना मत बोल, ठीक कहता हूं। देखा है यह! लुआठा ही चांप दूंगा, हां।' कोदर ने दरवाजे के पास वाला चूल्हा दिखाते हुए कहा।

'लुआठे तो घर में और चूल्हे में भी बहुत हैं। ले चल, चांपने हों तो।' केशर को गुस्सा तो इतना अधिक आ गया था कि कोदर के मुंह के सामने उस चूल्हे के आगे ही खड़ी हो जाती—'ले चांप तो, फिर देख किसके मुंह पर चंपता है!' यही कहती, पर क्या करे! दूसरे क्षण उसने कहा, 'तुझे लाज नहीं आती, पर मुझे आती है।'

'तू कैसी लाजवाली है सो मैं जानता हूं, पर ठीक है। आज तो मैं कुछ नहीं कहता।'

और कोदर ने अपने हर रोज के अपने स्वाभाविक शब्दों में तकरार समेट ली। फिर मां-बहन की ओर मुड़ा। बुढ़िया को झकझोरते हुए कहा, 'तुझ पर दुख के डूंगर टूट पड़े हैं, सो जानता हूं, पर आज नया साल है, इतना तो जरा खयाल रख। रोने के लिए तो बहुत दिन पड़े हैं।'

'सो तो पड़े ही हैं, तुझ-सा बेटा जो मिला है।' बुढ़िया ने बेटे की ओर हाथ हिलाते कहा, 'डूब मर डूब, निगोड़े नामर्द! तेरी बजाय तो मेरे पेट से पत्थर जनमा होता तो लोग कपड़े तो धोते!'

सिसकती राजू चुप हो गई। उठकर बाहर ही चली गई, जबकि बुढ़िया और बेटा हुज्जत करते रहे। बीच-बीच में केशर भी बरमा फेर जाती।

तभी शंकर दा, कासम घांची आदि दालान में आ बैठे। कोदर हुक्के भरने में लग गया। बुढ़िया राजू को लेकर पिछले दरवाजे के बाड़े में जा बैठी, जबकि केशर बाड़े की सूत्रधार बनी रही।

सबसे पहले वह बुढ़िया को चेता गई, 'देखो, मैं आपसे फिर कहे देती हूं। अपनी बेटी का घर है खाली और आप यहां से ले-देकर भरना चाहेंगी, सो नहीं होगा। इसलिए बेटी का सुख देखना हो तो जो मैं कहती हूं वैसा ही कर दीजिए। राजू बहन के लेख ही नाना भाई के साथ हैं। सो उनके नाम चढ़ी हल्दी उनसे ही उतरवाइए।

बिरादरी का जुर्माना तो जो कुछ होगा, भरेगा सामनेवाला। लक्ष्मी चलकर तिलक करने आई है, फिर कपाल धोने जाओ तो तुम जानो, बहन!' अंतिम वाक्य उसने राजू से कहा।

'तिलक करने तो आई है भाभी, पर किसका, वह जानती हैं?' राजू स्वस्थ हुई। इसके सिवा चारा नहीं था।

'किसका? कुंकुम का, बहन!'

'मसी का! मसी भी तवे की!' राजू ने कटुता से, तिरस्कार से कहा।

'आगे-पीछे सोचोगी तो मालूम होगा! और ठीक कह रही हूं! भाभी तो तुम्हारे भले में राजी है। मां ने तो मकई से निकाल कर कोदो में डाला, पर मैं तो कोदो से गेहूं में डाल रही हूं। मान जाइए, मेरी बाई!'

'सही बात है, बहन!' मां ने हुंकारी भरी।

राजू इन लोगों को कैसे समझाती।...फिर भी कहा, 'और सौत का जो दुख होगा?'

'सौत बहुत तंग करेगी तो नानिया उसे मायके का रास्ता दिखा देगा।'

'कैसी बात करती हो? इन आठ बरसों में एक दिन के लिए भी मायके नहीं गई है। वह ढोर थोड़े ही है कि गाड़ी में डालकर छोड़ आएगा?'

'सो नहीं जाएगी तो भी आपका क्या बिगाड़ेगी? पड़ी रहेगी एक ओर। पिछले कमरे के कोने में। उस लंगड़ी को...'

राजू कुछ हंसी।

भाभी की आशा बंधी हुई होगी, 'जो लोग आए हैं उनके लिए मैं खाना पकाती हूं। तब तक मां-बेटी दोनों सोच लो!'

राजू चौंक उठी। खाना पकाना मानो कसार बनाना। और पकाना, खिलाना माने नाना के घर बसाने की बात पर मुहर लगाना। अरे, इन लोगों का इरादा तो उसे अभी भेजने का था। वह भड़क उठी। पूछा, 'क्या करती हो?'

'पाहुनों के लिए भोजन!' केशर ने हलकी-सी हंसी के साथ कहा।

राजू को लगा कि अकेली भाभी ही तय कर बैठेगी तो उसके सामने मां-भाई की भी नहीं चलेगी और उसे बांध-घेरकर विदा कर देगी! वह छेड़ उठी, 'चलो चलो, खाना पकाने वाली! तुम मुझे बेचने पर उतारू हुई हो?'

'मेरे क्या दिन फिरे हैं कि कन्या को बेचूंगी? और बेचूंगी तो भी तुम्हारे भाई के घर में, उससे लाभ...'

'तब तो ऐसा ही करो न भाभी, उस कासम घांची के घर ही मुझे विदा कर दो, सो सारी जिंदगी की तकलीफ दूर हो जाए!' कहकर राजू ने भौंहें तानीं, 'हुंम्!'

राजू के शब्दों की अपेक्षा उसकी आंख में भरे हास्य ने कोदर को डराया। उसने प्रयत्नपूर्वक हंसते हुए कहा, 'यह क्या बोलती हो, राजू बहन!'

'तो सुन लो सब। मेरे भाई का घर बरबाद हो जाए और मेरी मां को भी कल भूखों मार डालने की बजाय आज मार डालो, पर मैं तो तुम्हारी बात मानने वाली ही नहीं।'

'हाय-हाय, राजू बहन! तुम्हारे भरोसे तो मैंने वचन दे दिया है।'

'सो तुम जानो।' कहकर राजू खड़ी हो गई। मां के बहाने भाभी को भी चेता दिया, 'और तू भी मां—देख, मेरे सामने ऐसी बात की तो, और तो कुछ नहीं कहती पर तेरे गले बतीसा भरूंगी, हां।'

'पर तुम खड़ी तो रहो बहन, इस तरह जाती कहां हो?'

'घर में जा रही हूं।'

'हाय-हाय! पर मैं उन बड़े-बड़े आदमियों को जवाब क्या दूं?'

'मैं खुद ही दे देती हूं,' कहके राजू आगे बढ़ी। भाभी दबी आवाज़ में पीछे से पुकारती ही रही, 'राजू बहन, आप सुनिए तो सही? जरा लौटिए तो...'

राजू ने दरवाजे के बीच खड़े रहकर शंकर दा से पूछा, 'क्यों आए हैं, शंकर चाचा?'

शंकर दा तो बेचारे यकायक यह सवाल सुनकर चौंक उठे।

'हम लोग— '

राजू के इस सवाल की अपेक्षा उसकी तनी हुई देह-लता ने शंकर दा को ज्यादा घबड़ा दिया, 'हम तो यों ही, नया साल है सो।'

पर कासम सिपाही बच्चा था! 'तू जानती है, फिर भी हमसे क्यों पूछती है, बेटी? हम तो तेरे भले के लिए— '

'आपका तो मुझे पता नहीं पर— ' राजू बीच में बोली, 'शंकर चाचा तो एक बार भले में थे, पर आज तो वे भी...' राजू ने जोर से सांस ली। शंकर दा से फिर सीधा सवाल किया, 'सच कहना शंकर चाचा, मुखिया से उस वक्त का बैर मिटाने तो नहीं आए?' क्षण भर रुककर वह आगे बोली, 'मैं तो आपके सामने बालक हूं, पर कहना पड़ता है कि घड़ी में इस डाल पर और घड़ी में उस डाल पर, इसमें आदमी की शोभा नहीं!...और मुखिया के साथ वैर तो...'

'मेरा कैसा वैर! पर मैंने सोचा इसमें तू भी सुखी रहेगी और नानिया का भी सुधरता है।'

'तो सुधारिए न? राजू के सिवा हमारी जाति में दूसरी लड़कियां नहीं हैं? और अब तो पेथा पटेल की लड़की ने आगे बढ़कर पति को छोड़कर करावे का उलाहना भी नहीं रखा। मैं भी उसमें दोष नहीं देखती, पर इतना तो सोचना था कि जिसने हमारा— ' होश आते ही राजू ने अंतिम शब्द बदल दिया, 'मेरा जीवन बिगाड़ा है उसी के घर— ' और स्वगत बोली, 'वह दंशन जीते जी मैं भूल पाऊंगी?' शंकर दा ने जवाब न सूझने पर गोल-गोल बोलना शुरू किया—

'पर तेरा तो— पंच ने ब्याह तब से तय किया था कि घर बसाएगी तो ठीक है, नहीं तो घर और वर बिरादरी देख चुकी है, इसमें तुझे— '

राजू बीच में बोली, 'जहां जाऊंगी वहां मजदूरी ही करनी होगी, शंकर चाचा! पेट तो गेहूं से भी भरा जाता है और कोदो से भी...सो मेरी चिंता तो आप कीजिएगा ही नहीं। मेरी मां से नए साल पर मिलने आए हैं तो मिलकर चले जाइए वापस।' अंतिम शब्द बोलते-बोलते राजू ने पीठ फेर ली।

कासम घांची बोल उठा, 'पर छोटी, तू सुन तो सही। यह तो बेचारे नानिए की दो-दो बार नाक काटने जैसा हुआ है और हम भी क्या जवाब दें— '

'कह दें,' राजू लौटकर बाहर देखते बोली, 'कह दें, राजू कहती है कि आठ साल पहले की हल्दी न उतरी हो तो कौंच घिसे शरीर पर, उतर जाएगी। और यह भी कहिए कि नाक तो किसी ने कल दिवाली के दिन ही तोड़ डाली थी न? इतना ही कह दें, जाइए।'

भीतर की ओर मुड़कर भाभी को भी सुना दिया, 'तुम भी आज की रात मुझे यहां पड़े रहने दो तो ठीक, नहीं तो गांव में और किसी के घर जाकर पड़ी रहूंगी।'

'सो पड़ी रहो न, बहन! सारा जीवन पड़ी रहो। मेरे बाप का क्या खा जाओगी?' कहते हुए भाभी दुत्कार के साथ रसोईघर में जा बैठी।

मां से भी राजू ने भरे गले से कह दिया, 'एक के दो जीवन तो करवाए हैं तूने, और फिर तीसरे की बात— ' और वह आगे न बोल पाई।

मां भी बेचारी क्या बोलती?

रुदन-भरे पर रोष में बोले गए राजू के शब्द शंकर दा और कासम ने भी सुने और वे भी उठकर चलते बने।

शंकर दा तो नाना को समाचार पहुंचाने भी न गए। सीधे घर ही संभाला। कासम की इच्छा न थी, पर किसी को तो समाचार पहुंचाना चाहिए न? नहीं तो नाना, 'अभी आए,...अभी आए' कहता हुआ रात भर इंतजार ही करता रहेगा।

पर नाना की चिंता से भी अधिक तो वह अपने बारे में सोच रहा था— पछतावा कर रहा था, 'उस लड़की ने जूते मारे, हम इसी के योग्य हैं। उस दिन हमीं कालू के पक्ष में थे, आज भी हमीं फिर नानिया के पक्ष में...मुखिया और बुढ़िया ने जरा विनती की तो इतने में ही भला-बुरा, आगा-पीछा भूल गए, पर यह, यह लड़की बता रही थी कि आदमी की शोभा नहीं इसमें।'

और कासम प्रायश्चित करता हुआ, इंतजार करते नाना, रणछोड़ और बुढ़िया को समाचार देते हुए कहता रहा, 'कुछ नहीं, भाई! आपकी तकदीर में यह लड़की है ही नहीं— इसके वजन बराबर रुपए दें तब भी!'

'हाय-हाय, कासम भाई! तू यह क्या कहता है? सारे गांव में बात फैल गई है! रांड़ ने मेरी दूसरी बार नाक...'

कासम को बुढ़िया का रांड़ शब्द खला और तभी उसने हंसकर कहा, 'पर वह 'रांड़' क्या कहती है सो जानते हैं आप?...कहती है कि नाक तो कल दिवाली के दिन किसी ने तोड़ दी है; नाना के तो नाक ही कहां रही है?'

'सुना अब? संतोष हुआ?' कहता हुआ रणछोड़ उठकर चला गया। जब कि नाना और बुढ़िया ऐसे कूदने लगे मानो मिर्च लगी हो, खास कर कालू पर...

पर कासम यह देख कर सोचता ही रहा। वह बीच-बीच में हुंकारी भरकर उन्हें ज्यादा जलाने लगा। पर तभी—

'ले कालिया—मेरे पेट का जना हो तो कसम खा कि उस कलमुंहे से बैर का बदला लिए बिना तू नहीं रहेगा!'

और गुस्से में पशु बन बैठे नाना ने शपथ ली, 'अगर उस कालिए का जन्म न भुला दूं तो तेरे पेट से पत्थर जनमा था, जा!

फटी आंखों से ताक रहा कासम तिरस्कार बरसाता खड़ा हो गया।

'धत्, तेरी जान के कमीने मारूं!' कहता घर से बाहर निकल गया। 'ऐसे कमीनों के घर में वह देवी-सी लड़की सुहाती कभी?'

और कान पर से गोली निकल गई हो इस तरह घर जाते हुए कासम सारे रास्ते में बड़बड़ाता रहा, 'जाह रे जाह! इन लोगों के साथ तो—बेचारी लड़की जो कुछ कहती थी वही होता! तीसरा जीवन भी बिगड़ जाता! ...जाह रे जाह! ...ऐसा उलटा दंश और औंधापन भी आदमी के लच्छन हैं!'

25

दुख कहां है?

जिद में आकर नाना ने आठ ही दिन में दूसरी औरत कर ली। जगत का ताना दूर किया।

कालू उलटा खुश हो गया। अनेक कारण थे : एक तो छाती पर आती राजू सदा के लिए टल गई— कोई भरमा देगा यह डर टला; दूसरे, अपनी बात कायम रही। तीसरे, दो औरतों के बीच फंसा नाना कभी न कभी, कालू के अंदाज से तो, पंद्रह दिनों में ही टिकाने आ जाएगा। नानिया के साथ रहती तो बुढ़िया माली की दशा धोबी के कुत्ते सी हो जाती...

यह सब सोचते हुए कालू को दुख भी हो रहा था। बेचारी बुढ़िया को मरते वक्त दुख के दिन भोगने पड़ेंगे। नाथा तो पहले से ही अलग हो गया था और रणछोड़ भी बाल-बच्चे लेकर धीरे से खिसक गया। नानिया की खोड़ी और बुढ़िया के बीच तो वैर का ही रिश्ता है और यह नई भी सुख भोगने आई है, बुढ़िया का मिजाज सहने नहीं आई!'

पर आखिर कालू ने सोचा, 'है ही इसी के योग्य। बुढ़िया ने भी 'आ बैल, मार' वाली बात की।' इस तरह मन को समझा लिया। इससे भी अधिक राजू के विषय में जो निश्चिंतता हुई इससे कालू के हृदय पर से अनेक मन का बोझा उतर गया। अब तो एक ही लगन थी। राजू को यथासंभव मदद करके उसे सुखी देखना।

और अगर अपनी ससुराल— राजू का घर नजदीक होता तो कालू दो हाथ से दोनों घरों को निबाह लेता। पांच कोस दूर होने पर भी उसकी लगन तो वही थी और तभी तो वह अपनी जाड़े की जोताई और धान के खलिहान आदि के काम उतावली से पूरे कर देना चाहता था? एक दिन पत्नी से कहा, 'इन चार दिनों में दोनों खेतों की एक-एक जोताई कर लेनी है और फिर ससुराल जाना है। तू जरा बैलों के लिए एक बोझा घास-चारा ज्यादा लाया कर न!' कालू ने दूध में आटा पकाते हुए कहा।

घी का करवा गरम करती भली चिढ़ गई, 'ये क्या देखकर बोलते होंगे! घर में तो बारह हाथ का बांस घूमता है।'

'हमारा तो सुधरा ही है। चूरमे-सी तो जोत की है। सारे गांव में किसी का बाड़ा

इतना सुधरा है, जितना हमारा? देख!' कह के कालू ने आंख नचाकर चूल्हे से करवा निकालते हुए कहा, 'ला, तसला ला, चल!'

तसला लाती भली ने कहा, 'और बहुत-से काम हैं घर में, कमाई करने का इरादा हो तो...बनिए का घोड़ा तो बाड़ों में हिनहिनाता है और— '

'सो बाड़ों में हिनहिनाता होगा— आए तो भले ही आए। तिल तो अभी हरे चाबुक घुमाते हैं। उनकी भी कटाई होगी तभी कुछ पकेगा न? ला, घी ला, चल— पड़ने दे, पड़ने दे! जरा आंतें गीली हों इतना तो पड़ने दे!' कालू हंसा।

'और बनिया सात पंसेरी का जो कुप्पा छोड़ गया है वह कैसा? भैंस के झरने से भरेगा?' भली ने दुत्कार से कहा।

'सो तो भर जाएगा। नहीं भरेगा तो भी रोएंगे लाल पगड़ी वाले। भैंस उसके बाप ने नहीं ला दी।'

'क्यों नहीं ला दी? रुपए तो आपके बाबा ने घर में गाड़ रखे थे तो निकाल कर दिए होंगे।'

कालू को रोष तो ज़रा आ गया पर करता क्या? चलते-फिरते कहां कलह करता रहे? उलटा वह हंसा, 'सेठ भी जानता है कि भैंस सानी के बिना दूध नहीं देती।'

'सो यह भैंस को खिलाते होंगे!'

'अरी पगली, हम भी भैंस से ही हैं न? तुझे मालूम है? हमारी जात में किसी की मंगनी करनी हो तो कन्यावाला पहले आंगन में ढोर-डंगर देखेगा, हमारा धन तो वही है। और बनिए का धन हम। उसे भी ग्राहक पर कन्या मिलती है, समझी? मेरे बापू कहते थे कि हमारे भाग्य में तो 'निकालें घी और पाएं छाछ, बोएं गेहूं और पाएं कोदो।'

कालू ने तो बातों में ही खाना खा लिया, पर भली उसकी बातें सुनने को रुकी नहीं थी, भैंस की सानी जमा रही थी।

सूर्य का उजाला अभी पूरी तरह उतरा नहीं था। गांव के मुहल्ले के लोग भी अभी जाग रहे थे। एक बीमारी भोगता बुड्ढा परमा, आठ दिन से जगता बैठा था। खांसी करवट भी नहीं लेने देती थी। कालू हल लेकर निकला तब रामा दरवाजा खोल रहा था।

'अरे कालू भाई,' रामा ने जम्हाई लेते हुए कहा, 'तूने नींद को बांध लिया है क्या?'

'क्यों?' कालू जरा रुका।

'क्योंकि हम लोग चार-पांच हैं फिर भी खलिहान में अभी धान पड़ा है और खेत के विकारों का टिकाना नहीं है। खेत भी बिना जोते पड़े हैं और— '

कालू ने हर रोज का-सा जवाब दिया—

'तू तो भाई आदमीवाला है और खेती ज्यादा आदमियों का खेल है। मुझ-सा

अकेला-दुकेला उतावली न करे तो इस जिंदगी का खेल खत्म ही हो जाए न?' कहता हुआ कालू निकल गया टोली के फाटक के बाहर।

हर खेत में मकई बंधे गट्ठे इकट्ठे करके ओध बनाए गए थे। खेतों के किनारों की कटाई हो चुकी थी और खेत जोते गए थे। कालू जैसे के खेत में तो ढेले भी हेंगे के नीचे दबकर आटा बन बैठे थे। गेहूं बोए जाएं इतनी ही देर थी, पर वह भी उसका वक्त आने पर। ठंड पड़नी शुरू हो तभी न?

कालू ने खलिहान में पड़ा धान भी शीतल चांदनी रात में मसल डाला। कोठी में उसे डालकर, भली के गुस्सा होने पर भी, चला ससुराल।

यहां काम करते कालू को अपने घर की अपेक्षा अधिक उत्साह का अनुभव होता। थकान तो नाम को नहीं थी। कोदो की रोटी, सो भी छाछ-प्याज के साथ, पर इसमें भी निराला स्वाद था। कभी-कभी स्वगत पूछता भी, 'रोटियां बनाते समय राजू के हाथ की मधुरता तो नहीं उतर आती?...और खा भी लेता हूं कितना ज्यादा! मानो जीवन-भर की भूख जमा हुई हो!'

इस सबका कारण एकमात्र राजू है, यह तो कालू समझ गया। पर दूसरी ओर इस 'अलबेली' राजू के घर-संसार के विषय में सोचने पर वह कांप उठता। कभी-कभी तो यह भी लगता कि उसे नानिया के जाने से रोककर महा पाप किया है। कभी-कभी यह शंका भी हो आती, 'कब पति मर जाए और कब करावा कर ले, इसकी राजू राह देख रही है?'

और एक दिन कालू ने घास की गाड़ी भरवाती, गाड़ी पर पूले पहुंचा देती राजू का अंतर पाने का यत्न किया, 'मेरे चाचाजी की कुछ दवाई करवाइए न?...दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हैं।'

'अब क्या दवाई करवाऊं? चरके भी दे दिए। आपने देखा नहीं उनका बदन? चरके देने वाला—कोई मिला तो बगल में दिए, किसी ने सारी पसलियां ही जला डालीं। और डुग्गियां बजवाने में भी कसर नहीं छोड़ी। मेरा गौना हुआ तब पैसा-पैसा जो गोद में डाला (गांववालों ने तथा संबंधियों ने) वे सारे पैसे भी तीन रुपए थे। डुग्गियों में खतम हुए। झुमका, तावीज और हाथ की अंगूठियां भी उसी में खोईं। पर फिर भी— '

'पर ऐसे—दुख कहां और चरका कहां, इस तरह कैसे ठीक होगा? मुझे तो यह अंगरोग ही लगता है।'

'अंगरोग हो तब भी हम बैद थोड़े ही हैं कि—और जड़ें भी कम-से-कम पांच सेर तो पेट में गई होंगी!' और निःश्वास छोड़ते कहा, 'पर वह सब पत्थर पर पानी!'

राजू के लटके मुंह ने कालू को विश्वस्त कर दिया, 'नाना! वैसी तो यह है ही नहीं; इसे यह पति और यह घर छोड़ना ही नहीं है वरना बेचारी ने अपने तरकस में से सभी तीर तो छोड़कर देख लिए, अब करे क्या! डुग्गीवाले बकरे-मुरगे मांगेंगे तो चरका देनेवाले अफीम-कसार खाते जाएंगे और जलाते जाएंगे! जबकि जड़वाले तो,

चवन्नी देना बेहतर, पर उनके घर चक्कर काटते रहना अथवा...'

गाड़ी भरकर बीड़ी का कश खींचते बैठे कालू ने कहा, 'तू कहे तो राजू हम उस भभूतेश्वर महादेव की दवाई करवाएं। वह साधु मुझे...'

'हाय हाय! ठीक कर दे तो और क्या चाहिए! मेरे मायके की यह एक चुन्नी बची है, वह भी बेच डालूं!' राजू खुश हो उठी। उसके मुंह पर निरी लाचारी थी।

कालू के विस्मय की सीमा न रही। युवती राजू के अंग पर— पैर में हलकी चांदी के छल्ले थे और जेवर के नाम पर नाक में चवन्नी-भर सोने की चुन्नी थी। इसके अलावा चांदी की पट्टियों-सी चूड़ियां और सात तोले चांदी का कंकण। उस पतली गरदन में चारेक आने के मनके होंगे और— कालू एक गहरी सांस लेते हुए स्वगत बोला, 'खुरासानी थूहर पर डाल-पत्ते हों तो राजू के अंग पर कुछ जेवर!' और कहा, 'चुन्नी तो ठीक है पर— '

पर राजू तो साधु को बुला लाने के लिए गले पड़ गई, 'मुआ यह काम न हो तो हम कर लेंगे पर आप', राजू मानो गिड़गिड़ाने लगी, 'इतना तो कीजिए ही!...साधु को बुला ही जाइए!'

कालू को कहने की इच्छा हुई और कह ही डाला, 'तू रोष न करे तो एक बात पूछूं, राजू!'

राजू समझ गई और समझ गई इसीलिए तो खुश दिखती थी न! और खुश क्यों न हो? जीवन में ऐसा सवाल करनेवाला कोई न था!

पर दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर नाराजगी जैसा भाव उभर आया। हंसने का प्रयत्न करते हुए पूछा, 'आप मानते हैं कि मैं रोष करूंगी और वह भी आप पर?'

कालू ने अपने निराश होते मुंह को, 'रोष तो नहीं पर— ' इस तरह गोल-गोल बोलते हंस कर छिपा लिया, और पूछा, 'क्या सचमुच तू दयाल जी को अच्छा करना-जिलाना चाहती है, राजू!'

राजू के चेहरे पर दुख का बादल उतर आया। दर्द-भरी हंसी के साथ बोली, 'आप भी मुझसे यह पूछते हैं?...दुनिया सोचती है कि यह आदमी मर जाए इसकी राह देखती राजू बैठी है, पर— ' उसने कालू की ओर गौरव से छलकती आंखें फेंकीं, 'किस लिए? किस सुख के लिए?...आप सभी मानते हैं कि राजू को भी दुख है पर'— उसकी सूरत पर लापरवाही उभर आई। पूछा, 'क्या दुख है मुझे? ...मां-बाप के समान जेठ-जेठानी हैं। बच्चे भी मेरे स्नेह के भूखे हैं और पति भी— ' उसने हंसने का प्रयत्न किया, 'आप-सा छैल-छबीला होता तो दिन में दस-बीस गालियां देता, जबकि यह तो आज्ञाकारी, कदम-कदम पर फिक्र करने वाला है' ...और सुस्ती-भरी आंखें दूर क्षितिज पर टिकाते हुए स्वगत कहा, 'क्या दुख है मुझे?' राजू की सूरत ऐसी थी जैसे वह दुख देनेवाले दैव का ही मजाक उड़ाती हो!

कालू तो राजू को देखता ही रह गया...आदर-भरी नजर से कहा, 'तुझ-सी हमारी

बिरादरी में बहुत कम स्त्रियां होंगी, राजू...मैं तो एक भी नहीं देखता!'

'सो तो ठीक है पर आप कहिए न– उस साधु को कब बुला लाएंगे?'

'तू कहे तो आज ही।'

'मैं तो अभी कहती हूं अभी, गाड़ी भी मैं हांक लूंगी।' और हंसते-हंसते कहा, 'गरज को अक्ल थोड़े ही होती है!'

कालू को न जाने क्यों दुख होने लगा। मानो राजू से वह अनेक योजन दूर भाग रहा हो...पर दो-चार घड़ियों के लिए।

दूसरे दिन वह उस साधु को बुलाने के लिए चल पड़ा, उसे जाना ही पड़ा।

सारे रास्ते वह अपने-आपको समझाता रहा, 'राजू को दुख कहां है? यह एक उसका पति ठीक हो जाए तो– बात सही है! उसका-सा सुख किसी को नहीं। घर में कलह का नामोनिशान नहीं...कहने वाले ने कहा है कि जहां मेल वहां सुख-शांति!' ...और राजू के ही शब्द दोहराता रहा, 'हां तो! मां-बाप-से जेठ-जेठानी हैं, अपने जाए हों ऐसे भतीजे हैं और आज्ञाकारी पति, उठते-बैठते चिंता करता रहे, ऐसा! और दयाल जी के भी ऐसी औरत! ऐसी तो बड़े भाग्यशाली के भी नहीं होगी!' और कालू इस सुखी परिवार से ईर्ष्या करता गहरी सांस लेते हुए बड़बड़ाया– 'कौन सुखी? धनधान्य से भरे लेकिन एक-दूसरे से झगड़ते सुखी या खाने-पीने में दुखी होने पर भी एक-दूसरे के स्नेह की छांह में रहते, भरे मुंह बोलते-बुलाते ये लोग सुखी?' सिर हिलाते वह बड़बड़ाया, 'मेरे बापू ठीक कहते थे कि पेट की जलन सही जा सकती है, पर हृदय की जलन नहीं सही जा सकती।'

कालू सोचता रहा, 'राजू के समान स्त्री जिसके नहीं हैं, संसार का सुख नहीं है, खाने-पीने का सुख नहीं है, पहनने-ओढ़ने का सुख नहीं है और तिस पर भी कहती है कि कहां दुख है, तब जीवन में दुख जैसा है कहां? या फिर?– ' और इस तरह दुख का मूल खोजता वह वीराने की राह काटता रहा।

26

धरती का बोझ ढोने वाला

एक ओर ठंड चमकी, दूसरी ओर खेतों में गेहूं-चने का आला-पाला। लोगों ने तिल की कटाई करके उन्हें झाड़ भी लिया। और घास-चारा टांड़ पर चढ़ा दिया...फुरसत मिली तो वह कारवां शुरू हो गया।

महसूल शुरू हुआ...मुखिया के दरवाजे पर ठाकुर के घोड़े हिनहिनाए। ठाकुर के चचेरे भाई दीपूभा घर-घर घूम चुके, 'चलो भाई, अब हमारी आवभगत करो— पाहुनों ने घर पूछे हैं।'

साठ साल की दुबली-पतली काठी वाले ठाकुर चितकबरे बाल से भरी दाढ़ी को कानों की ओर ऊंचे चढ़ाते और मूंछों पर ताव देते, गहरी उतरी हुई मोती की तरह चमकती आंखें नचाते गांववालों के साथ हंसने लगे, नए युवकों को पहचानने लगे, 'यह कौन है, भाई? ओहोहो, अपने वाला भाई का बेटा कालिया? ओहो! शंकर, यह तेरा जवान? नानिया, अब तू तो हमसे होड़ करने लगा है, पचीस की उम्र में दो औरतें तो पचासवें साल में मेरी तरह चार ही हो जाएंगी। ले, आ आ। हम दोनों समदुखी, सुख-दुख की बातें करें! एक औरत वाले इस कालिए जैसे को क्या मालूम? जिसे रामबाण लगे हों वही जाने।' तो वहां से फिर घोड़े की घास के लिए चमार को बुलाने जा रहे दीपूभा को भी बात में लपेट लिया, 'देखना दीपूभा, चमार को पीटना मत, नहीं तो वह बेचारा आपका रोष औरत पर उतारेगा और औरत बच्चेवाली होगी तो बच्चों पर और बिना बच्चेवाली— बोल तो कालू, बिना बच्चेवाली किस पर रोष उतारेगी?'

कालू क्या जवाब देता? पर ठाकुर के आग्रहवश कहना पड़ा, 'पति पर, बापूजी!'

'ना...ना! तू कच्चा है, बहुत कच्चा! कितने बच्चे हैं तेरे?...एक भी नहीं? शंकर? तो फिर औरत कोई भली— '

रामा बोल उठा, 'नाम से और काम से तो भली है बापूजी, वरना बोलने-चालने में तो— ' और वह हंसता रहा।

'समझ गया। पटलानियां से मैं अनजान नहीं हूं। पर हां! देख मैं तुझे बताऊं, बिना बच्चेवाली औरत अपने पर ही रोष उतारेगी। पति से रूठकर अलग चारपाई डाल और यों इस कड़ी ठंड में अकेली...'

'पर आदमी भी टंड में...'

लोगों को कालू का सवाल पसंद न आया, 'जी हुजूर' ही कहना चाहिए। एक-दो जनों ने तो एक-दूसरे से कहा भी सही, 'तलकचंद कारबारी आए होते तो सिखाते कि बड़े लोगों के साथ कैसे बात की जाती है?'

'तू अभी बच्चा है जवान, आदमी तो बेचारा थकान के मारे सुखी हो गया और औरत तो...'

कालू ने फिर से विरोध किया, 'हमारी तो औरतें भी कड़ी मेहनत...'

ठाकुर खुश हो उठे, 'हां...तेरे ही मुंह से न्याय! तुझे मालूम है, औरत और गधों को एक जात में गिना गया है। पीठ पर चार मन का बोझा हो तो भी, भांआं...भांआं करते मौज में आ जाएं। ऐसा ही औरतों का है। क्यों शंकर, सही है न?...'

ठाकुर की बात सभी के गले उतर गई, 'बात तो सही है, बापूजी...'

और यों बातें बनाते और कुसुंभे घुलवाते, हथेली के बाद हथेली पी जाते और हाथ में लेकर ग्रामजनों को पिलाते, अच्छे माने जाते घर पर न्यौता स्वीकार करते और कसार-चूरमे का भोजन करते, अंतिम दिन गांव के उन पचासेक घर का महसूल लेकर, किसी के पांच मन दाने तो किसी के दस मन, इस तरह ढाई सौ मन दाने पहुंचा देने के लिए कहकर, बाकी रह गए तीन-चार से 'अगले साल देना, भाई! आपके बच्चों को थोड़े ही मार डाला जा सकता है!' कहते हुए वहीं से दो आंकड़े लिखकर ठाकुर ने बिस्तर बांधे। उस उड़न-घोड़ी पर मखमली नमदा-जीन लगाए गए, तंग कसे गए और लगामें चढ़ीं।

फाटक तक विदाई देने आए हुए गांव के किसी स्वजन की विदाई देने की तरह ठाकुर के रिसाले को विदाई दी। सभी के 'राम-राम' स्वीकार करते ठाकुर ने घोड़ी को एंड़ लगाई। थाली में मूंग की तरह नाचती घोड़ी को गांव वाले देखते रहे, 'ओ जा...ए, ओ...जा...ए, वह पहुंची तोरण तक, डूंगर उतरी...ए...ए—खलास!'

और कालू सरीखे यह कहते लौटे, 'क्या तेरा पानी है, घोड़ी! दीवार की ओर दौड़ाओ तो दीवार को बेधकर आर-पार निकल जाए!...'

ठाकुर की उड़न-घोड़ियां छूटीं और लेनदारों के टांड़ और घोड़े आकर बंध गए।

हिसाब-किताब होने लगे : तीन-चार बरस की लेन-देन पढ़कर सुनाई गई और आंकड़े लिखे गए, जमाके बाजू घी के कुप्पे। —कालू कहता था, 'सही-गलत तो राम जाने और बनिया बताए।' बाद में सोलह-सोलह मन के नाप से पैदा हुए और पैदा होने वाले अनाज लिखे गए। किसी के जेवर लिखे गए तो किसी की खतौनी में खरीदे गए...और वे भी घर-घर लड्डू का भोजन करके, गाड़ी में और टांड़ पर अनाज-घी भरकर अपनी राह चले।

इस ओर गेंद-डंडे के खेल वाली मकर-संक्राति भी आ गई। साथ-ही-साथ शिशिर में डोलती फसल के हरे वस्त्र भी लेती गई। वसंत ने पीले पटोर बिछाए और

उन्हें भी फागुनी पवन ने खिसका लिया।...एक ओर पकी फसल पर हंसिए फिरे, दूसरी ओर होली के ढोल ढमके।

लोगों ने दो-चार दिन के लिए हंसिया-दवरी आदि को छोड़ दिया। स्त्रियों ने गोबर-मिट्टी से फाग खेला। पुरुषों ने डंडे लेकर घेरे डाले। डूंगर-डूंगर पर, गांव-गांव पर, ढोल दनदन, होली की ज्वालाएं घूमती रहीं...और सो भी उन निरे पागल बने फगुहारों के बीच, 'जाती है, होली जाती है...ई ई! अर्र्र्र्!'

गेहूं-चने के खलिहान लिए गए और टिड्डी की तरह उतर आए आसपास के इलाके के ब्राह्मण-विधवाओं को दो सेर-चार सेर 'खलिहान' दिए गए। नेगियों को फसल के अनुसार सुखड़ियां दी गईं, बनिए की खतौनी में लिखे गए अनाज उनके कोठारों में पहुंचे। जो बचे, कोठियों में राख मिलाकर रखे गए। कालू-कोदर जैसे तीन-चौथाई गांववालों ने तो राख मिलाए बिना ही डाले। 'खाओ सो भी और राख से मिलाकर रखो तो भी!'

गरमी के लंबे दिन शुरू हुए। ऐसी ही लंबी, ठंडे कलेजे से यात्रा करती साधुओं की जमातें गांव-गांव खेमे डालतीं और ऊंट-हाथी के साथ पड़ाव करतीं, लोगों को उपदेश देतीं, 'हाथ से दिया वही हाथ देगा, जो इधर देगा उसको उधर मिलेगा...पुण्य से पाप हटाए जाते हैं सो— ' और इस तरह काली रोटी और दूधपाक का भोजन करती गईं और आशीर्वाद के बाद कपाल पर राख मलती गईं। एक के बाद एक निकल गईं वे भी, काशी, मथुरा और बड़ौदा की ओर।

किसी-किसी गांव में लग्न की शहनाइयां बजीं। रणछोड़ मुखिया सरीखे पैसेवाले माने जाने वाले घर की स्त्रियों ने संदूकों से 'तरेड़िए', सोने की हंसलियां और नए कपड़े निकाले...कोई पहन-ओढ़कर फूलता फिरा तो कोई आंखों में काजल लगाकर होश भुला बैठा। और यों लग्न के वे तीन दिन युवक-युवतियों ने मानो जवानी की दीवानी भांग पी...बुड्ढों ने अफीम के कटोरे घोले, पर चौथे दिन तो— चक्की पर साफा डालते हुए कालू ने कहा, 'विवाह बीता कि खंभे पर मौर!'

पर तभी तो बुड्ढे परमा के बारहवें ने विवाह का बदला चुका दिया। बिरादरी के सारे इलाके में न्यौते भेजे गए और पचहत्तर साल की मौत पर ढाई-ढाई मन के कुप्पे खाली करके बुड्ढे परमा का क्रियाकरम हल करने आए हुए ढाई-तीन हजार आदमी सेठ के शब्दों में—'पटेल भाई, बीस मन घी उड़ाकर पूंछ से हाथ पोंछते चलते बने!'

गरमी के दिन तपने लगे और बैसाखी बवंडर छूटने लगे। इधर-उधर गौने आदि हुए और किसी-किसी गांव में भाट की घुंघरूवाली घोड़ी आ पहुंची, 'खुश रहो बाप, खुश रहो! रंग है तेरे मात-पिता को...लाओ बाप, लाओ बेटे की नाम-लिखाई लाओ। आप तो मोटी पिछौरी वाले! कच्छ के रेगिस्तान में जाऊं और मुश्किल के वक्त पानी बांध लूं ऐसी साड़ी लाओ...काल-अकाल पड़े और चार आंचल से चार बच्चे जीएं— सारा दिन 'चुभर-चुभर' चोखें ऐसी भूरी भैंस दीजिए। अपने गांव पहुंचूं कि बच्चे

चीखने लग जाएं, भागो रे भागो...हाथी का बच्चा आया, भागो!...' और इस तरह भाट भी लकड़ी के अनुसार छिलके उतारते चलते बने वतन की ओर।

भाट की घोड़ी के घुंघरू बंद हुए न हुए तभी सुनाई दीं भांड़ों की भूंगलें, 'भां हां ह हा! भां हां हां ह! ता ता हता थेई...'

किसी गांव में भर्तृहरि राजा और पिंगला रानी का खेल हुआ तो किसी गांव में 'गोपीचन', 'संधरा-जेसंग' और 'जसमा ओडनी' का, और कहीं 'राणक देवी राखेंगार' का खेल हुआ। पर लोगों को तो वे रंगला-रंगली (मसखरे) ही ज्यादा पसंद आए, नखरे करते और आंखें नचाते। रंगली की रुसवाइयां और आधी रात के मनुहार, सौतों के कांटे और तकरार, तो रंगला का पराई स्त्री के पीछे पागल होना।

रामा जैसे लोगों ने तो कहा भी, 'मेरे बेटे, ये रंगला-रंगली ही रंग तो रखते हैं! लोगों को तो वे ही पसंद आते हैं।'

'पसंद क्यों न आते?' कालू बोला, 'तेरी बात मुझे अच्छी लगे और मेरी तुझे। और देखता नहीं? रंगली का गाल रंगला चूमता है, पर होठ तो हमारे ही गीले होते हैं न? और उन औरतों के गाल? कोई जाकर देख आओ, रंगली के बजाय उनके ही गालों पर चूमे नहीं उभरे?...'

भांड़ों के नायक ने, 'बोलो अंबे मात की जाय...' लोगों की गूंज के बाद कहा, 'अब लड्डू का कौन कहे?'

और इस तरह गांव-गांव लड्डू का भोज पाते और पहले पुत्र के जन्म की बधाई में बर्तन आदि की भेंट लेते, नई बहुओं से साड़ियां मांगते और यों जाते वक्त छूट गए गांव मनाते-मनाते लौटती भूंगल के नाद वतन की ओर बहते रहे। गांव-गांव में छा गया, 'ता ता ह् ता थेई...! ता ता ह् ता थेई!'

किसी-किसी गांव में तो ऊपरी भूत-समूह की गूंज में सच्चे भूत— मोती छाड़ा देव या फिर शीतला-माता के नाम— भोले अज्ञानी लोगों के अंगों में घुस गए। उनका घूमना भी चार-छह दिन चला। पखावज और झांझ की तान में रमकर लोगों ने गड्ढे बना दिए। किसी ने चूड़ियां तोड़ीं तो किसी ने कुरते फाड़े...और सो भी स्वेच्छा से— नारियल या बकरा-मुरगा लेकर बवंडर के साथ वे भी विदा हुए।

सभी आ जाएं तब फिर तूरी (हरिजन-भांड) और नर रस्सी पर नाचना क्यों छोड़ देते? इसके अलावा मुरली बजाने और नाग डोलाते मदारी, तो भविष्यवाणी करते 'रंगास्वामी' निकल पड़े। फिर तलवार, भाले, तीर आदि बनाते गाड़िया लोहार, तो घर-घर भटककर मांगते और लंबे लहजे से बोलते वे बाजीगर भी कुछ कम न थे, 'दे रे बा...ई! रोटी पर भाजी और बहू आए ताजी!...'

आखिर आए बैसाखी बवंडर! पुराने पेड़ उखाड़ते, किसी पेड़ की डालियां तोड़ डालते तो किसी घर के छप्पर उड़ाते, मचान पर चढ़ाई घास तितर-बितर करते और बाड़ों से झंखड़ उड़ाकर कांटे बिखेरते...

और वे भी, पतझड़ के पत्तों को गगन में चढ़ाते और धरती की धूल के बादल रचते, बल खाते और कलाबाजी मारते, सूरज के तेज को धुंधला करते-करते पूरब के आसमान में नदारद हो गए...

आषाढ़ आ रहा था।

देवा बनजारा के बेटे रतना के कारवां ने मालवा की ओर मुंह किया, 'मर्र् रे मर्र् रे' करता टांडों को हांकता और अखबारों की तरह नई-नई खबरें देता, 'गोरा मैंने अपनी आंखों देखा और रेलवे में तो खुद ही बैठा। पांच अन्नी का टिकट लेकर पच्चीस कोस का मजा ले आया।'

पूछने वाले अनेक, पर सवाल एक ही, 'हें रतनाभाई, गोरा सागर पार से आया है, अच्छा आदमी-सा ही आदमी? और वह 'मेम' कहते हैं वह?...और गाड़ी?...मुआ, जरा बात तो करो!'

श्रोतागण की तल्लीनता रतना को शराब से भी ज्यादा नशा चढ़ाती है। बढ़ा-बढ़ा कर बात करता है। 'गोरा तो भाई, छत्तीस कलाओं को जानने वाला। देवताओं-सा उसका रूप! निरा कुंकुम से बना हुआ! और मेम तो दूसरी परी! झीना-झीना चले और तुतला-तुतलाकर बोले!—कुंकुम के कदम पड़ते और बोलती तब फूल झरते!...'

कालू ने तो कह ही दिया, 'उस मेम के दर्शन करने को मिले उसी में तू जनम पार कर गया, रतना भाई...' पर दूसरा वाक्य पूछ कर तो कालू ने रतना के गुमान को गला दिया। गोरे के रूप-गौरव एक कौड़ी के कर दिए, 'हें रतना भाई, कहते हैं कि ये गोरे शौच जाकर हाथ पानी नहीं लेते, सो बात सच है?— '

रतना को कुबूल करना पड़ा, 'मेरा व्यापारी कहता था भाई, बात तो सच है।'

और इसके साथ ही वह सारा मैदान गोरे के नाम पर थूक उठा : थु थु थु थु...

'लो, छोड़ो उस गंदले का नाम, हम तो गाड़ी की बात ही करें, कहिए।'

'क्या बात बताऊं, भाई! मदमस्त भैंसे-सा एंजिन! यों दौड़े...! यों दौड़े...!'

'मानो बापूजी की उड़न घोड़ी हो!' रामा बोल उठा।

बनजारा हंसा, 'अरे तेरे बापूजी की घोड़ी तो उसकी बिसात में कुछ नहीं। पर वे भी पीछे रह जाएं और पेट का तो पानी ही न हिले!'

'रहवाल चाल से।' कालू बोल उठा।

बनजारा उलझ गया, 'आप लोगों को मैं समझाऊं कैसे?...इस खाट की पाटियों की तरह लोहे की लाइन बिछाई हुई और ऊपर गाड़ी रखी हुई। चकई जैसे उसके चक्र फिरते और पानी के रेले की तरह छुक-छुक करती— आंख मूंदते-मूंदते तो जा पहुंचे पांच कोस!...

और इस तरह गोरे की और गाड़ी की गैबी बातें करते रतना बनजारे का कारवां भी मालवा का लंबा रास्ता तय करता रहा।

इस ओर सिर पर भी बादलों का कारवां दिखने लगा।

रतना बनजारा के पड़ाव से लौटते रामा ने तो कालू, कोदर आदि से कहा भी सही, 'रतना बनजारा के टांड में तो नमक, कपड़े और नारियल भरे हैं, पर हमारे इस आसमान के टांड में तो निरे मोती ही छलकते हैं।'

'और वे भी सच्चे!' कोदर ने कहा। क्षण भर बाद बोला, 'सारी दुनिया हमारे सामने हाथ बढ़ाती आती है पर हम तो केवल इस मेघराजा से ही मांगते हैं। एक उसके ही गरजी हैं।'

'कहने वाले ने कहा है कि किसान के पीछे करोड़, सो गलत नहीं है, भाई!' शंकरदा बोले।

'और फिर भी किसान दुखी! तब फिर भगवान के घर न्याय या अन्याय? जनम लिया तभी से कड़ी मेहनत! किसी तरह का सुख ही नहीं! न खाने-पीने का, न औरतों— '

कालू की बात के बीच रामा बोल उठा, 'अरे पगले, हमीं तो पृथ्वी के पालक कहाए! हमारे वे टेकी महाराज कहते थे सो तूने नहीं सुना था कि ज्यों मां-बाप को बच्चों की चिंता त्यों किसान को दुनिया की— '

कालू को हंसी आ गई, 'पालक तो नहीं, पर ऐसा कह कि धरती का बोझ ढोने वाले हैं।' और शंकरदा, कोदर की ओर मुड़ते हुए पूछा, 'मेरे कहने में क्या गलत है भाई! टांड़ पर कितने सारे घी, गुड़ और गेहूं भरे हों पर उसके मुंह में तो घास-चारा ही न? यही हमारा हाल भी है।'

कालू की बात हलवे के कौर की तरह हर किसी के गले उतर गई, 'बात तो सही है, भाई। कितने सारे गेहूं पकाएं, पर किसके बाप के? हमारे भाग्य में तो कोदो और बहुत हुआ तो मकई।'

रामा भी अपना विरोध भूल बैठा, 'और ये भैंसें दुहते हैं सो! भैंस अपनी, पर कुप्पे तो बनिए के ही न?'

कालू बोल उठा, 'कहावत है न रामा, गुड़ बहुत मीठा पर इससे घुटनों को क्या फायदा?'

और सभी बोलने लगे, 'बात तो तेरी बड़ी सच है...धरती का बोझ ढोने वाले ही हैं हम, पर कालू के मन पर तो धरती का ही नहीं, अपनी जिंदगी का भी बोझ था। राजू बिना जीवन भार था। क्यों खुद जी रहा है, उसकी समझ में नहीं आ रहा था— और फिर भी जीता जा रहा था—जीना पड़ता था!...'

कुछ मुआवजा था तो इतना ही कि मदद करने के बहाने ससुराल में राजू का मुंह देखने को मिलता था। दो बातें कर पाता था। महंगे मनुहार के साथ पेट की और साथ-साथ दिल की भूख भी घड़ी भर के लिए कम होती थी।...

पर दो-चार दिन रुकने के बाद घर की ओर लौटना तब तो फिर वही असंतोष, वे ही टूटे पैर और वही अंतर की आह! ...बोल उठा, 'घर में और बाहर, सारी पृथ्वी की पीठ पर टांड़ ही हैं न!'

27

अंतर सोचने का

बैसाख के बवंडर शांत हुए न हुए कि जेठ की धूप तपने लगी। बांसभर दिन चढ़ते-चढ़ते तो धरती से भाप निकलने लगती। दोपहर को तो किसी की हिम्मत नहीं कि घर से बाहर निकल सके।

गरमी के दिन आलस वाले गिने जाते हैं, पर यहां जेठ में तो आलस का नामोनिशान नहीं था। किसी के यहां खाद डालने का काम हो रहा था तो किसी के घर खपरैलों को फेरा जा रहा था। कोई घर की दीवार पर रहठे की आड़ तैयार कर रहा था तो कोई जलावन लाने में रत था। अरे, शंकरदा जैसे सुखी, बड़े परिवार वाले आदमी ने भी कमर पर रेशे बांधे थे, हाथ में चकफेरी फिर रही थी।

भली जैसी अकेली औरत को तो दिनभर उठाने के लिए खाद के टोकरे कम पड़ रहे थे। रात को घर का काम देर से खत्म करने के बाद चौमासे के लिए चावल तैयार करने का मूसल हाथ में लेती। आधी रात तक 'धीबंग-धीबंग' होता रहता और घर-घर मिर्च, हल्दी और नमक पीसे जाते।

कालू अकेला। ऊपर से दो घर का कामकाज। अपने और ससुरालवालों के भी खाद, जलावन और खपरैल फेरने थे। उसने किसी को सहायता के लिए बुलाया, तो किसी को हल मजदूरी पर ले आया।

वह दस ही दिन में अपने काम से फारिग हो गया। ग्यारहवें दिन दोपहर की रोटियां खाकर तलवार संभाली, 'मैं ससुराल हो आऊं?' भली से कहा।

भली को मानो इस क्षण मालूम हुआ, 'यह बात है। मैं तो मानती थी कि खेत-मजदूर लेने निकले हैं।' आवाज से भी भली की सूरत और आंखें अधिक कठोर हो गई थीं।

'खेत-मजदूर खोजने भी जाना है? पर उन लोगों ने समाचार भेजे हैं और— '

भली रह न पाई, कह बैठी, 'वे लोग— वे लोग! ऐसा कहिए न कि उस फुंदने वाली ने ही— '

पिछले काफी समय से कालू समझ गया था कि उसका ससुराल जाना भली को पसंद नहीं है। कारण तो आज खुद भली ने ही कह सुनाया, और आपको भी उसे देखे

बिना चैन नहीं! ये पंद्रह दिन— '

'जाने न देना हो तो साफ ना कह दे, पर यों बिना सोचे मत बोल। ले यह...रख दो तलवार।' कहते हुए कालू ने पनसाल वाली खूंटी पर तलवार टांग दी। पास में चक्की पर साफा डालते हुए कहा, 'एक तो तेरे मायके का निबाह करता हूं— एहसान मानना तो एक ओर रह गया, ऊपर से ताने सुना रही है। ठीक है भाई यह भी!'

बड़बड़ाया कालू बाहर दरवाजे की चौखट के पास रखा हुक्का लेकर चूल्हे से आग भरने बैठा। 'बात भी सही है! दो साल का खाद खेत में पहुंचे तो पचीस मन दाने ज्यादा पक जाते न? और बच्चे भी कोदो की बजाय मक्का खाने लग जाएं!' हुक्का भरकर बाहर दरवाजे के पास वाले छोटे चबूतरे पर वह बैठ गया, 'आज जो कहा वह पहले से ही कह देना था न? और मेरा लहू ऐसे दुलार के लिए तड़प नहीं रहा था कि साल भर दुगुनी मजदूरी करता रहता।'

भली ने आज पहली बार कालू को इतनी देर तक बोलने दिया। पर करती क्या? एक ओर कालू का कहना भी सही था और दूसरी ओर अपना खयाल भी गलत नहीं था। तभी तो उसने रोष-ईर्ष्या में मजाक भी मिला दिया। चौखट को टेकते हुए पूछा, 'छाती पर हाथ रखकर कहिए तो, आपके और राजू के कोई लगाव नहीं?'

क्षण-दो क्षण कालू उलझता रहा और फिर हंस पड़ा, 'क्या तू भी पागलों की-सी बात करती है? मेरे और राजू के— यों देखो तो बहुत कुछ है। दस साल तक हमारी मंगनी रही है और यों देखो तो हम भाई-बहन-से ही हैं!' गंभीरता में दुख आ मिला, 'भरोसा न हो रहा हो तो जिसे तू कहे, उसी की शपथ लूं।' भली कुछ खिसिया गई...उसे चुप देखकर कालू ने आगे कहा—

'इतना ही नहीं, पर मैंने कभी उससे मज़ाक भी किया हो तो ये देवता मुझ पर कुपित हों!...मेरी मां की कसम! अब तो बस न?'

पर इस बार भी भली कुछ न बोली। वह तो मुंह नीचा किए पैर के अंगूठे से दहलीज का पत्थर कुरेदती रही।

'यकीन नहीं हो रहा न? ला, घी का दीया ले आ। तू कहे तो पंच के देखते उठाऊं। अगर न उठाऊं तो आज ही भगवान मुझे— '

भली कुपित हो बैठी। बीच में ही बोल उठी, 'चुप रहिए अब! देखिए तो सही, ये कसम पर कसम खाने लगे हैं! कोई पूछता ही नहीं होगा? लीजिए, उठते हों तो उठिए। दिन तो इतना बीत गया और अभी पांच कोस जाना है।'

ऊंचे पैर बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते कालू की नजर सामने वाली जमीन पर थी, 'ऊं-हूं! अब तो बात गई।'

भली ने कालू की गोद में साफा खोंसा, 'लीजिए न आप भी?'

'तू टूट जाए तब भी नहीं जाऊंगा। जाना होगा तो कल जाऊंगा, पर आज नहीं।'

'तो उठिए, भागी (खेत-मजदूर) के लिए हो आइए, फिर उसकी तो फिक्र टले।'

'जाता हूं, छोड़ न!'

कालू की गंभीर, दुखभरी सूरत देखकर या जो भी हो भली ने ज़िद न की, तलवार चबूतरे से टेककर घर में चली गई। अलबत्ता मधुर बड़बड़ाहट तो चलती ही रही, 'ओ हो हो! यह कैसा रिसहा आदमी है भाई! ...उनसे तो कुछ पूछा ही नहीं जा सकता...'

कालू को भी घर में बैठना रास आने वाला नहीं था। साफा बांधकर, कंधे पर तलवार रखकर चल पड़ा नदी की ओर।

सारे रास्ते एक ही विचार—सवाल था, 'पर उससे (भली से) कहा किसने कि मेरे और राजू के कुछ है, मैं—उसी के लिए ससुराल के चक्कर काट रहा हूं?...और मेरे और राजुड़ी के बीच ऐसा है भी क्या?' तभी तो भली ने सवाल किया, 'रख तो छाती पर हाथ, कुछ नहीं है तो?'

कालू हंसा, पर फीका, 'यों तो मैंने भी उससे दिल खोल कर बात की है। मानूं तो बहुत कुछ है और...इस एकाध बरस में मेरे बच्चा न हो तो अरे वह विधवा न हुई तब भी पंच जो करना चाहें सो करें पर राजुड़ी को अपने कपड़े पहना दूंगा, भले ही नानिए की तरह झगड़ों की धूम मचे और मां को दिया हुआ वचन भी टूटे। पर एक बार तो अधूरे अरमान पूरे कर लूं। बचपन के सपने सच कर दूं...' और मुंह में पानी आ गया हो ऐसे बोल उठा, 'धरती पर राजुड़ी तो—उसकी मां ने राजुड़ी ही जनी है...क्या करूं...! राजुड़ी-सी मेरी बगल में हो!' सामने वाले डूंगर पर दृष्टि फेंकते बोला, 'इन डूंगरों को जोतकर समतल कर दूं। नदियों को रोककर तालाब बांधूं, जगह-जगह आम लगाऊं और कुएं खोदूं...जंगल में मंगल कर दूं...पर वह सब...एक राजुड़ी छांक लाने वाली हो!...' कालू निःश्वास छोड़ते हुए बड़बड़ाया, 'वह दिन कहां कि मियां के पैर में जूती!'

नदी में खोदी हुई कुइयां की ओर पानी पीने के लिए मुड़े हुए कालू का दिमाग ठिकाने आ गया, 'वह सब तू सोच रहा है पर इस ओर दो औरतों का दुख तो सोच ले! कुछ नहीं है उसमें—चिथड़ों का बाघ बना रहा है और सचमुच सौत ही आ गई तो तुम्हारे दोनों के गले महेरी उतरने देगी? अरे जन्म भुला दे, जन्म। नानिया को नहीं देखता? दो आदमी के बीच बैठने योग्य भी रहने दिया है?...और वह भी कम पीटता है? हड्डियां तो दोनों में से किसी की साबित नहीं रहने दीं। पर वह कहा है न कि बिना लगाम का घोड़ा और बिना लाज की औरत—सो तेरी मां ने अकारण वचन नहीं लिया। उनकी ही मिसाल क्यों नहीं लेता? वह तो भगवान को टिकाना था नाम और तेरा जन्म हुआ; नहीं तो, गया ही था न? सो दौ औरतों की बात तो भूल ही जा, पगले। पति की धोती धोने के मामले में भी दोनों लड़ पड़तीं। बोल, क्या करता तू उनका? इस पुरानी (भली) को कूट-कूटकर बरी बना दे तब भी संभव नहीं कि वह घर की दहलीज छोडे! सो...'

'और यों माने तो यह बेचारी क्या बुरी है? ज़रा तेज मिजाज की है, वरना कामकाज में तो सात औरतों की मिट्टी से यह एक गढ़ी है।...और राजूबाई में भी कौन से मोर टंके हैं? ठीक! बदन पर लहू है कुछ तब तक वह रूप और सब कुछ है... चार दिन की चांदनी है। हम किसानों को तो वह चार दिन की चादंनी भोगने का भी कहां अवकाश है? मीठा-मीठा बोलने से भागा थोड़ा ही फिरता है? हमें तो चाहिए कड़ी मेहनत करने वाली औरत...और वह मीठी जुबान भी दूर है तभी तक तो, वरना घर में आई कि वह भी...।'

और पास वाले टीले के झोंपड़े की ओर मुड़ते हुए हंसा, 'ठीक है, सब कुछ अंतर सोचने का है। वरना यों तो वह भी औरत है और यह भी औरत है—ठीक है मेरे भाई...कभी रंग के छींटे ही अच्छे, फिर कुंडे उड़ेलो सो किसी काम के नहीं।'

पर कालू ने तो उन 'छींटों' के बारे में भी निश्चय कर किया, 'छींटे-छींटे करते कहीं...'

और उसने, मानो किसी दुश्मन से कह रहा हो, इस तरह भली के ही वाक्य को सामने रखा, 'रख तो दिल पर हाथ...'

और कालू ने निर्णय किया बल्कि छाती पर हाथ रखकर संकल्प किया, 'शिव, तुझे साक्षी मानकर कहता हूं जो कभी किसी खास काम के बगैर राजू के घर जाऊं!'

28

तांबे के घड़े-हंडे

कालू नदी के उस पार गांव से दो कोस दूर जा पहुंचा था। रास्ता संकरा और झाड़ी घनघोर! दिन दहाड़े भी बाघ खा जाए। बाघ ने तो नहीं खाया, पर टीलों पर गोंद चुनते भीलों ने उसको स्वार्थ भरी नजर से देखा। 'किसका है बे जवान?' पूछने वाले की निगाह कालू के अंगों पर घूम गई।

लूटने योग्य कुछ भी न दिखने से या फिर 'वाला पटेल का बेटा' जानकर या शायद 'अलखा गायेती के घर जा रहा हूं' ऐसा सुनकर अथवा कालू की चौड़ी छाती और मजबूत हाथ, कंधे पर रखी तलवार देखकर वह उन्हें सताने योग्य नहीं लगा।

कालू के पिता वाला पटेल की इज्जत भील लोगों में अच्छी थी। पचास साल पहले, वाला की जवानी 'लड या लड़ने वाला दे' कह रही थी। उन्हीं दिनों मुगलों के झुंड आए। उस सारे गांव की, इन लोगों की भी, लाज रखी दो जनों ने, एक वाला ने और दूसरे वेचात के बाप ने। धाड़ गांव लूटने मुड़ी तब इन दो आदमियों ने नदी के उस पार वाला मार्ग रोक लिया। पाल के पांच-पचीस भीलों की मदद मांगी—एक संकरी जगह में छिपकर खड़े हुए...

यकायक किलकारी ने, सिर पर पड़ते मन-मन के पत्थर और तीर की वर्षा ने उन डाकुओं को घबरा दिया.. जैसे भी हो सका भाग निकले। कितने ही उस जगह मर गए, जो भाग छूटे थे वे भीलों के शिंकजे में फंस गए। जो बचे, न जाने किस रास्ते से कहां गए।

उस दिन से इस घाटी का नाम 'लाल घाटी' हो गया और पाल में भी उस दिन से बंदूकें बसीं। वाला तथा वेचात का घायल बाप भी लूट के माल के साथ एक-एक बंदूक ले आए। आज भी कालू के घर में— कौन जाने किस जगह पड़ी है, पर है सही।

अरे खुद पाल के कुछ भीलों ने ही वाला के हाथ का मजा चखा था; यहां तक उसका आतंक छा गया था कि वाला के नाम पर सारा गांव पाल में चल-फिर सकता था, उनमें एक प्रकार की दोस्ती हो गई थी।

कालू ने डूंगर चढ़कर उस झोंपड़े के आगे हाक लगाई, 'कौन है घर में?'

दस हाथ के उस घर की दीवारें झंखड़ खड़े करके बनाई गई थीं। खपड़ों की

बजाय छत भी पलाश के पत्तों से बनाई गई थी। दालान में भी झुककर प्रवेश किया जा सके इतना नीचा। चारपाई के स्थान पर चार खूंटे गाड़कर बैठक बनाई गई थी। दालान में खेलते तीन बच्चे कालू की आवाज सुनकर बाहर निकल आए। सातेक साल की लड़की के बदन पर सिर्फ लंगोटी थी। तीन-पांच साल के बच्चे निहायत नंगे। लाल धागे का कमरबंद जरूर था। रंग बिल्कुल काला तो नहीं कहा जा सकता पर सांवले थे।

'कहां गया है तुम्हारा बाप, बच्चे?' कालू ने गुर्राते कुत्ते की ओर तलवार रखते हुए पूछा।

बच्चे जवाब देने की बजाय दवाज़े की ओर देखने लगे। एक किशोरी बाहर निकल आई, उसका रंग गेहुआं था। मुंह का आकार भी सुडौल। बारह-पंद्रह के उस बदन पर पैर में दो-दो पायल, चिथड़े इकट्ठे करके नितंब पर लपेटा हुआ कांछ, गले में कांच के मोती—कौड़ियों की मालाएं, सिर पर उलझे बाल और फूटता-पनपता यौवन! या तो खुला यौवन सहज हो या अज्ञान होने से दो-पांच साल की दूरी पर हो, जो भी हो पर उसके चेहरे पर संकोच का नामोनिशान नहीं था। कालू के लिए भी इसमें कुछ नया नहीं था!

'मेरा बाबा तो गोंद चुनने गया है।'

कालू ने अंगारे मांगे। चिलम में तंबाकू भरी। धुएं की घटाएं निकालता चला दूसरे टीले की ओर...

चौथे टीले पर टोह लगी, 'हां भाई, 'भागी' के रूप में मैं एक छोरे को दूंगा. मेरा भांजा है, पर क्या दोगे?'

'जो देते होंगे, और क्या दें?'

'ऊंहूं! ऐसे तो नहीं। चलिए, अलखा गामेती के घर। हम दोनों के बीच वह तिसरैत!'

कालू ने कुबूल किया। दोनों टीला उतरे। रास्ते में ढोर चराते आठ-दस साल के लड़के को भी देख लिया। कालू ने नाम पूछकर बात कर भी देखी, 'तेरा नाम क्या है, रे लड़के?'

'मंगलिया। क्यों पूछना पड़ा, भाई?'

'मेरे घर भागी रहना है?'

'हां, मामा भेजे तो जरूर।'

कालू को लड़का चरबांक लगा; अपने योग्य।

अलखा गामेती का घर था तो रहटों से भरा, पर लीपा-पोता हुआ और जमीन पर लिपाई की लहरियां। आंगन भी स्वच्छ। इसके अलावा साहिबी भी ठाकुर-सी। आंगन में घोड़ी। ऊंचे दालान की खूंटी पर दो बंदूकें—अलबत्ता आग देने के फलीते वाली, दो-तीन तलवारें, जब कि तीर कमठे तो इतने कि बोझा बांध लीजिए।

अलखा गामेती ने कालू को पहचान लिया, 'ओ हो हो! मेरे वाला भाई का जवान? आ आ, भाई!' और हाथ से पकड़कर खाट पर बिठाया।

साठ साल के बुड्ढे की काठी नीची और मजबूत थी। उस खुले बदन पर बाल का मानो बख्तर चढ़ाया गया हो! कानों में भी भौंरियां घर बनाएं, इतने। पहनावे में घुटने तक छोटी धोती और सिर पर दो-तीन बट वाला साफा।

'पानी पीना है, भाई? घड़े का है, हां!' बुड्ढे ने न कहा होता तो भी कालू जानता था कि अलखा गामेती के घर पानी का घड़ा सदा अलग भरा रहता है।

'तू समझता हो कि मिट्टी का मटका होगा पर नहीं, तांबे का है; वह रहा, लाऊं लोटा?' बुड्ढा पानी देकर भी कालू की और आवभगत करना चाहता था। वैसे भी कोई उच्च वर्ण का आदमी इसका उपयोग करता रहे तभी उसके भरने का अर्थ भी है।

कालू को कहना पड़ा, 'लाइए तब, थोड़ा-सा पी लूं।'

तांबे का बेड़ा सुनते ही कालू को वह किस्सा याद आया, उच्च जातीय घर की एक बहू ने घड़ा-हंडा फोड़ा। बहू-सास के बीच झगड़ा हुआ। बहू ने कहा, 'तांबे के घड़े-हंडे लाई होती तो कुम्हार को अनाज न देना पड़ता। और सास ने ताना मारा, 'तांबे का बेड़ा तो एक पाल के गामेती के घर है। जा, वह भरना।'

ताना न सह पाने से बहू निकल पड़ी, मानो कमठे से तीर छूटा। आते ही गामेती के घड़े से लग गई। पहले पानी पिया और फिर घड़ा-हंडा संभाला...

गामेती बहुत पछतावा करता रहा, पर करे क्या...

इस किस्से के बारे में पूछने की कालू को इच्छा हुई, पर अगर अलखे के कुल में ही वह हो तो? और दूसरे, समय नहीं था। उसने काम की ही बात की, 'तो पीजिए, अलखा चाचा! इस लेंबा के भानजे को मेरे घर भागी रखना है। दाने में भाग लेने से तो इनकार करता है— '

'क्यों बे कनके?'

'ना तो नहीं है गामेती बाबा, पर मैं सोचता हूं कि भाग लेकर अनाज तो मेरे ही बच्चे खा जाएंगे और पैसे तो उसके पास रहेंगे— '

'समझ गया! ठीक है, ले बोल, क्या लेना है तुझे? चल, मुझे ही सौंप दे। यह अखर तीज तो गई, पर आने वाली अखर तीज के बाद इतने दिन पूरे करने पड़ेंगे।'

अतिरिक्त दिनों के बारे में आनाकानी करने के बाद—लीबा ने बारह कंकरिया गिन दीं। गामेती ने भी गिनकर देखीं। दो ले लीं और बाकी दस कालू को दीं, 'वाजिब न लगे तो तू अपनी इच्छा के अनुसार मुझे जवाब दे।'

कालू को सोचता देख कनका बोला, 'यों दिनाती गिनें तो दिन के तीन पैसे गिनने पर कितने हुए? क्यों गामेती? पर यह तो— '

'ठीक है सो तो! एक साथ तय करने में दिनाती नहीं गिनी जाती। ले, ला चल।' और कहा, 'तू विचार करता है, पर मैंने ठीक ही कहा है।'

कालू ने कुछ आनाकानी के बाद कुबूल कर लिया। दो कपड़े देना भी कुबूल किया और खड़े होते पूछा, 'क्या, आते हो उसे छोड़ने?'

'तू कहे तभी, क्यों लीबे?'

कनका ने 'हां' कहके सम्मति प्रकट की।

कालू ने कहा, 'आज अच्छा दिन है—गुरुवार। सो अगर आज ही छोड़ जाएं तो—'

'तो ऐसा ही कर न तू—उस छोटे को आज ले आ। हम कल आएंगे—सुबह के पहर में ही।'

'अच्छा।' कहते हुए कालू और कनका चले। अलखा तोरण तक छोड़ने आया।

कनका ने मंगल को आगे कर दिया। उसकी आंखों में पानी आ गया, 'बिना मां का है भाई—उसे दुख—'

'उसे किस बात का दुख? खाएगा, पिएगा और बैल चरा लाएगा। तू तनिक भी फिक्र मत करना, कनका भाई। जैसे तेरे लिए भांजा है वैसे मेरे लिए भी भांजा है, समझा?' कालू ने कनका को आश्वासन दिया और मंगल को आगे करके चलता बना।

कालू ने मंगल से कुछ सवाल पूछे न पूछे और उस तांबे के घड़े-हंडे के विचार में बह गया। उसे उस गामेती से ईर्ष्या हुई। जन्म सफल हो जाने-सा ही लगता था। अपने लिए भी ऐसा हो जाए! राजू-सी आकर घर में पैर रखे और दुनिया में डंका बज जाए...मेरी बेटी, बात रह जाए, हां!...

पर होश आते ही कालू ने वही निःश्वास छोड़ा, 'कहां राजू और कैसी यह बात है! तांबे का घड़ा ही असल में नहीं, फिर? जमना फूफी से मेरे जनम के वक्त देने को कहा है, वही अभी तक नहीं दिया गया? और मान लो, सबसे प्यारी चीज बेचकर तांबे का घड़ा-हंडा ले आऊं? पर यों तांबे के घड़े के नाम पर ही कोई आ जाती हो तो—नानिया के घर दो-दो घड़े-हंडे थे। लेकिन, इस अलखा गामेती-सी साहिबी है क्या...पर भाई मेरे, असल में राजू को ताना मारने वाला कोई है ही नहीं, फिर लंबी-छोटी बात ही कहां रही?'—

और उसने मंगल से बात करने में जी लगाया, 'घर पहुंचते ही वह लंगोटी निकाल देना। अपनी एक पुरानी धोती दूंगा और कुरता भी सिलवा दूंगा...'

कालू ने जागते-जागते तो सोचना बंद कर दिया पर नींद में क्या करता? वही का वही। 30 साल में तांबे के घड़े-हंडे चमक रहे हैं। पतली, ऊंची, गोरी और नुकीली आंखों वाली राजू तनी हुई गरदन से आती है, चट से घड़ा-हंडा संभालती है...

राजू पनघट से पानी भरकर बिना हाथ से पकड़े स्थिर घड़ा-हंडा लिए चली आ रही है। घड़े-हंडे पर सूरज खेल रहा है। आंखों में मोहिनी। लोग पूछते हैं और राजू जवाब देती है :

'मने तांबा ने बेड़ रेड़ लागी!' (मुझे तांबे के घड़े-हंडे से बड़ा चाव है।)

आंख खोलते ही देखा कि सामने मंगल मुस्करा रहा था।

और कालू, भगवान की ठिठोली समझकर हंस पड़ा। मन में बड़बड़ाता रहा, 'भगवान ने बेचारे को जैसा था दिखाया...तेरे भाग्य में तो यही है। और आज से तो अब भील का मुंह देखना है!'

पर—हाय रे मनुष्य, तेरी आशा! खाट से उतरता कालू उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कर रहा था, 'भील की जात सो क्या हुआ? है तो मनुष्य ही न?...उलटे यों कहा कि आज तो जिंदगी में पहली बार हंसता चेहरा देखने को मिला है। सुबह के पहर में हंसता मुंह!...मेरी आत्मा अकारण नहीं चाह रही!...बापू गाते थे। वह भजन खोटा नहीं है और कालू उस भजन को याद करने लगा :

कोणे ढंढोल्यां मारां सूतां समणां ने
ओल्यां, कोणे हळवेथी सोड़ ताणी?
झंखी झंखीने चेतन आतमे पूर्या,
तारां समणाएं सोड़ने संकेली।

(किसने जगाया मेरे सोते हुए उन सपनों को, खींचकर धीरे से सौर?...कामना करते-करते आत्मा चैतन्य हुई, तेरे सपनों ने ही तुझे जगाया है।)

और कालू अपने हृदय को बहलाता रहा, 'तेरे सपने भी एक दिन अंगड़ाई लेंगे और सौर हटाकर सजीव खड़े हो जाएंगे। इन दिनों जो सपने आते हैं ये ही सिद्ध होंगे। तेरे सपनों की राजू सचमुच कहती होगी, 'मुझे तांबे के घड़े-हंडे से बड़ा चाव है...' कालू के मन में दो शब्द भी ठीक से बैठ न पाए और इसलिए तो उसने हंसकर इन्हें दूर कर दिया। लोगों से तो वह ऐसा ही कहेगी न? ऐसा थोड़े ही कह सकती है कि मन के मिलन के कारण— ' और इसके साथ ही कालू के हृदय में, अंग-प्रत्यंग में गुदगुदी होती रही...खाट से उतरते हुए सपने की राजू के शब्द, गद्य की बजाय पद्य में गाकर मस्त होता रहा—

मने तांबाने बेड़े रेड़ लागी,
रेड़ लागी रे रेड़ लागी—
मने मनने मेळापे रेड़ लागी!

(मुझे तांबे के घड़े-हंडे से बड़ा चाव है, लगन लगी रे तांबे के घड़े-हंडे से! बड़ी लगन—मुझे मन के मिलन की लगन है!)

29

मन के मोर

'गड्ड्ड्...गड्ड्ड्ड्...' गीर के डूंगरों में सिंह गर्जना करने लगे। उत्तर की ओर बादल मंडराने लगे, अंतर में भयंकर उलझन हो रही हो जैसे।

कालू, कोदर और प्रत्येक किसान का हृदय नाच उठा। सभी दालान के बाहर निकलकर बार-बार देखने लगे। कोई कहता, 'बदरी छूटी है, जरूर आज बारिश होगी।' रामा जैसा तो खुश हो उठा, 'आहाहा! क्या बदरिया दौड़ रहा है, क्या दौड़ रही है! सन्नाटा बोल रहा है!'

बदरी सचमुच दौड़ती थी मानो कोई पनहारिन उतावली से घर की ओर दौड़ी जा रही हो कि उसका बच्चा रो रहा होगा।

देखते-देखते आसमान छा गया। बादल कड़कने लगा और बिजली मानो सूर्य को उलाहना देने लगी थी, 'एक दिन तो धरती को इतनी उजागर कर दे!'

जबकि मेंह पनिहारी को उलाहना दे रहा था, 'ओलती के नीचे खाली बर्तन तो रख, कितने समय में भर जाता है!'

देखते-देखते पानी बह चला। टोली में बाढ़ आ गई और खेत, जैसे कि कालू ने कहा, अगर ऐसे ही दो घड़ी तक बरसता रहे तो नदी और खेत सब एकाकार हो जाएं!

ऐसा ही हो जाता, पर धरती आठ-आठ मास से प्यासी थी, पानी के लिए छटपटाती और उसका पेट भी कहां छोटा-सा था? गांव का बह जाता पानी तो आसपास के खेतों के लिए भी पर्याप्त नहीं था।

पर मेघराजा अगर एक ही जगह को यों तृप्त करने में रुक जाएं तो और जगहों का क्या होगा? यह तो पहला परोसना था। फिर बहुत प्यासे को एक साथ ही सारा पानी न पिलाना, वह भी न्याय की बात थी और वह सांड की तरह मुहल्ले से निकल गया दक्षिण की ओर।

किसान ने फिर से कमर कसी। कोई हल की कुसी की धार तैयार करवाने लुहार के घर चला तो कोई हल ठीक करवाने बढ़ई के घर। कोई बीज के लिए घूमने लगा तो कोई कुंकुम-नारा लेने के लिए बनिए की दुकान की ओर चला। जबकि शिवा नाई तो मुहल्ले-मुहल्ले में हांक लगाकर न्यौते ही दे रहा था, 'मुखिया बरामदे में बुलाते

हैं...चलिएगा सभी।'

इच्छा न होने पर भी कालू ने आज— आषाढ़ी दिन— मुखिया से चलती रुसवाई को एक ओर रख दिया, 'मुझे भोजन करने थोड़े ही बैठना है? गांव के साथ बैठकर कुसुंभे करके लौट आना है।'

कोठी से मकई निकालती भाभी अपना ही गाना गा रही थी, 'आप खाद के कामकाज में मदद करने न गए सो न गए, पर बीज भी नहीं पहुंचा आए!'

'ले जाएंगे गरज होगी तो।' कालू ने साफा बांधते हुए कहा।

'इतने दिन तो दौड़ते जाते थे और इन पंद्रह दिनों से हुआ क्या है?... या फिर मैंने वह कहा इसीलिए?'

'ऐसा हो तो भी इसमें बुरा क्या है?'

'पर बीज तो दे आइए! ठेठ गरमियों से कह रखा है और अब— '

'ले जाएं आकर। उनके पैरों में नहरुआ तो नहीं है न? या फिर तू ही जा। यहां के काम के लिए तो मैं और मंगल दोनों हैं— ' बैलों को घासचारा देते मंगल से हुंकारी भरवाई, 'क्यों मंगलिया?' फिर पत्नी से कहा, 'और मंगलिए को ले जाना हो तो ले जा। मैं अकेला ही ठीक हूं।' कह के कालू ने हुक्का संभाला।

'आप गए होते तो आज ही लौट सकते थे। हल जोतने को आज अच्छा दिन नहीं है, इसीलिए— '

'ना भाई ना, मुझे तो बहुत-सा काम है और तुझे जाना नहीं है। ले जाएंगे गरज़ होगी तो।' कहकर कालू चलता बना।

कालू की धारणा थी कि राजू भी आखिर अपने जेठ को लेकर बीज लेने आएगी। पर दूसरा दिन हो गया, फिर भी कोई न आया। 'बड़े गुमानवाली औरत है यह तो भाई!' कालू मन-ही-मन चिढ़ता रहा। दूसरी ओर जी भी उतना ही जल रहा था। 'अपने टेढ़ेपन में शायद कोदो ही बोएंगे। गांव में तो सेर दाने कोई उधार देने वाला नहीं...इससे तो कल मैं दे आया होता तो भी ठीक था।'

पर अब तो कालू मुक्त नहीं हो सकता था। मंगल था। पर मकई बोना आता हो तभी न? और आए तब भी कालू से होड़ कर सकता है! एक हल से डेढ़ हल जितनी मकई बोता था।

इन आषाढ़ी दिनों में कालू के पैर में और जोश था। कुरता उतार दिया था। धोती भी ऊंची पहनी थी और सिर का साफा भी उस गत वर्ष रोपे हुए आम के बाड़े पर रख दिया था। बादलों में छिपा सूरज आज ज्यादा खीझ गया था। वह उमस गर्मियों की धूप से अधिक असह्य थी। कालू के बदन पर पसीना बह रहा था। उसकी पीठ तो मानो मटियाली धरती ही देख लीजिए! पर इसकी उसे परवाह न थी— खयाल ही न था। एक ही लगन थी, 'यह इतनी मकई बोकर कुएं वाले खेत में बो दूं; कल उतना पट निबटाकर परसों इस मकई को फाड़ डालूंगा (आड़ी जोत लूंगा)।'

सभी के हल दुपहरी के समय छूट गए थे, कालू का नहीं छूटा था। उसकी नजर दूर के गलियारे की ओर थी, 'छाक दीखे कि छोड़ूं।'

यकायक कालू की नजर खिंच गई, नीबू की फांक-सी आंखें छोटी हो गईं। बोल उठा, 'राजू? ना ना! वह कहां से? आई हो तो भी— उसके भाई का हल तो कुएं वाले खेत में चल रहा है।...ना, पर है तो वही। वही चाल और पतली कमर की वही लचक! मान न मान, पर मेरा ही छाक लेकर आ रही है!'

इसके साथ ही कालू का अचरज बढ़ गया, 'कैसी बात करती है? घर की औरत लाख काम हो तब भी राजू को छाक लेकर भेजती?...सपने में भी माना नहीं जा सकता।'

उसने हल छोड़ दिया। बैलों को खेत के छोर पर बरगद के नीचे ले गया। राजू भी आ पहुंची।

कालू का अंतर तो मानो नाच रहा था। यों तो उसने राजू के हाथ का छाक बहुत दिन खाया था, पर सो तो ससुराल में न? वह यहां— अपने घर और सो भी नानिया के देखते (नाना के हल पासवाले खेत में ही चल रहे थे)। कालू के तो मानो अधूरे अरमान पूरे हो गए। ब्याज के साथ बदला मिल गया।

उस ओर नीचे वाले भाग में बाड़ बजा रहे मंगल को हांक लगाकर बुला लिया और बैलों को घास-चारा डालने के लिए कहा।

पर मंगल तो घास-चारा डालते-डालते भी राजू की ओर देख रहा था।

उसने तो न पूछा, पर खुद राजू ने ही पूछा, 'मेरी ओर क्या टुकुर-टुकुर ताक रहा है बे छोरे?'

राजू को हंसती देख मंगल भी हंसा। 'ऊं...मैंने सोचा, भली मामी कहां गईं?'

'और यह भली मामी के बदले मैं आई हूं सो क्या बुरी हूं?'

कालू ने ज़िंदगी में आज पहली बार कह डाला, 'कह दे न मंगल, कह कि एक दिन आई इसमें क्या निहाल हुए?' फिर राजू की आंखों की ओर ताकते हुए कहा, 'भूख हो दो रोटी की और मिले टुकड़ा भी नहीं। यह तो उलटे मन तड़पाने की बात है।'

'अनाज होने पर भी भूखे रहें तो कोई क्या करे?' राजू ने मंगल के लिए दोने में दाल निकालते हुए कहा, 'ले बे छोरे!'

'पेट तो यह...' सिर पर बरगद की डाल पर बैठे कौवे को दिखाकर कहा, 'कौवे भी भरते हैं, राजू!'

'तो फिर आपको और चाहिए क्या?' मंगल के फैलाए कुरते के कपड़े में दो रोटी डालते हुए राजू ने कहा।

मंगल भी दो रोट सिर पर औंधे रखकर दाल का दोना लेकर चलता बना उस घटादार बरगद के उस छोर।

कालू बोलता था, 'राम जाने क्या चाहिए, पर इतना जानता हूं कि तृप्त नहीं हो पाता; जन्म लेकर मानो भूखा हूं और भूखा ही रह जाऊंगा।'

'लीजिए, हाथ धोकर खाना शुरू कीजिए। देखूं, पेट कैसे नहीं भर जाता!' पर कालू की दुखभरी सूरत देखकर तो राजू को आगे कहना ही पड़ा, 'कभी कुछ नहीं कहा, फिर आज कैसे यह सब सूझ रहा है?'

'सूझा था तो कब से राजू, छोटे थे तब से! पर आज ही तेरे सामने हृदय के पट खोल रहा हूं।'

'इतने दिन वह पट बंद रहा तो बंद ही रहने देना था न?' राजू हंस भले ही रही थी परंतु आवाज और आंखें कह रही थीं कि वह भी कालू से कम दुखी नहीं है।

कालू स्वगत बोलता हाथ धोने गया।

'इतना समझते थे तो खोलना ही नहीं चाहिए था।' पल-पल राजू का वह कुमुदिनी-सा मुंह फीका हो रहा था।

'खोलने से भी क्या बिगड़ गया है? पर सच कहना राजू, तुझे बचपन याद नहीं आता?...कोदर और हम सब इस बरगद के नीचे खेलते थे, तू रोटें बनाती और मैं हल हांकता। तू छांक लाती, साग भूल जाती और मैं तुझे पीटने उठता। तू पानी भर लाती और मैं घड़ा उतारता, याद आता है न वह सब?'

खड़ी हुई घुटनों के आसपास हाथ बांधकर, पैर के अंगूठे से गीली धरती को कुरेदती, राजू ने बिना निगाह उठाए ही गरदन हिलाकर 'हां' कहा।

कालू बोलने लगा, 'मुझे तो जब-जब ये आषाढ़ी दिन आते हैं, वह दिन याद आए बिना नहीं रहता...तू नहीं मानेगी, पर मुझे तो उस समय के तेरे पैर के छोटे-छोटे निशान भी इस धरती पर दिखते हैं। वह झूलवाली घाघरी और वह सब सारा-का-सारा सामने आ जाता है...मन बहुत चाहता है कि उतने और उतने ही छोटे रहे होते! भगवान ने हमें बड़ा ही न किया होता तो...'

राजू स्वगत बोली, 'मेरे कहां भाग फूटे कि छांक पहुंचाने आई!' दाल की कुल्हिया पास खींचते हुए कहा, 'लीजिए खा लीजिए। चलिए, मुझे देर हो रही है।'

'ना...! एक बार कह दे कि तुझे वह बचपन याद आता है...'

'याद करके भी...' राजू ने कालू की ओर लाचार लेकिन ममता-भरी निगाह फेंकी, 'क्या करेंगे! हमारी चलती तो बड़प्पन के ये बांधे उतारकर छोटे हो जाते, वैसे ही खेलते रहते, मैं आपकी रसोई बनाती और पानी भर लाती—सब कुछ करती, पर अब करें क्या! नदी में लकड़ी बह रही हो तो दौड़ते-दौड़ते छोटे सागर तक पहुंच कर भी वापस ले आ सकते हैं, पर यह तो— ' उसने ज़ोर से सांस ली, 'बह गया वक्त लौट आए तो आदमी को चाहिए क्या! लीजिए, खाना शुरू कीजिए, चलिए।'

कालू ने दाल की कुल्हिया और रोट लेते हुए फीकी हंसी के साथ कहा, 'आज तो भूख ही मर गई है, राजू!'

'मैंने आकर भूख मार डाली तो उससे फायदा क्या? जानती होती तो भली बहन को ही भेजती!'

'वह तो मेरे दुर्भाग्य में है ही— '

'ऐसा कहिए कि भाग्य में है, अरे हृदय से जड़ी हुई है। जिस कोदो ने अकाल दूर किया, उसे ताना कैसे दिया जा सकता है?'

'ताने न दें, पर कोदो को गेहूं तो नहीं कहा जा सकता न?' कहते हुए कालू ने मुंह में रोट का बड़ा टुकड़ा डाला।

'वे ही हमारे तो गेहूं हैं। समझदार होकर क्यों भूल रहे हैं, कालू?'

बिना ठीक से चबाए रोट के टुकड़े गले उतारते हुए कालू ने सिर हिलाया, 'ऊंहूं! खाना और पेट भरना इन दोनों में बड़ा फर्क है, राजू...तू ही बता, नहीं है फर्क?'

दूर नदी तट वाली झाड़ी की ओर ताकती राजू इतना ही बोली, 'है।'

'तू ऐसा समझती है कि हम जिंदगी जी रहे हैं?'

'सभी जीते हैं, उसी प्रकार हम भी जी रहे हैं।' उसने कहा, 'उनके जीवन में भी क्या मोर नाचते हैं?'

कालू दाल में रोट मसलते हुए बोला, 'पर हमारा जीवन साथ गूंथा गया होता तो सच कहता हूं, राजू, दिन-रात मोर ही नाचते रहते!'

'सो तो ऐसा लगता है।' हंसकर उसने कहा, 'राजू आपसे ब्याही होती तो घर की मुर्गी दाल बराबर हो जाती। दुनिया का यही कायदा है।'

'ना ना, राजू!'

'आंखों देखी बात है। पेथा पटेल की लखुड़ी छगन को देखती तभी दिन उगता और छगन के लिए भी मानो लखुड़ी की आंखों में ही उजाले थे। उन दोनों ने जो लगाव दिखाया है वैसा तो सारे इलाके में किसी ने नहीं दिखाया; आखिर बाप की आबरू पर भी उसने पानी फेरा...पर बारह मास तो पूरे नहीं हुए कि उनके उजाले भी रीत गए और मोर भी नाचने बंद हो गए। वही कलह और झगड़े। वह लखुड़ी को रोज पीटता है...लाइए, कुल्हिया लाइए। चलिए, मुझे फिर देर होगी।'

कालू ने, बीज कितना ले जाना है और किन खेतों में बोना है, कौन-कौन आए हैं और पति-पत्नी कल क्यों नहीं आए?— वगैरह सवाल पूछकर विदा लेती राजू से कहा, 'मैं तो अब तेरे घर बार-बार आने वाला नहीं हूं, पर काम की तकलीफ हो तो समाचार भेजना।'

'रूठ गए न?' पूछती राजू तिरछी नजर से ताकती रही।

'तुझे क्या मालूम कि मैं— '

'भली बहन ने मुझे सारी बात बताई है और आपको भी उसके बोलने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। मेरे सामने अंजुरी कर आंसू बहाए हैं। कहती है, मैं ही अपने हाथों मायके का बिगाड़ने बैठ गई। यों देखें तो वह बकवास करने वाली है, मन में जो आया

कह दिया और बाद में पछतावा!...बताइए, कब आएंगे?' कुल्हिया तथा बंध लेकर खड़े होते पूछा।

'भुट्टे आने पर!' कालू विदा देने खड़ा हुआ।

राजू हंस पड़ी, 'मक्का तो अभी टोकरे में पड़ा है और आप— '

'किसलिए, राजू! नाहक लोगों में बातें फैलाएं? ठीक है, कभी मिल जाएं तो जैसे आज बातें कीं इस तरह दो घड़ी हृदय का बोझ कम हो, वरना भूख तो कभी मरनेवाली नहीं!'

'ऐसा ही मान लीजिए न तब!' राजू के मुंह पर फिर से दुख छा गया। एक हाथ में कुल्हिया और दूसरे हाथ में बंध रखकर पैर के अंगूठे से वह फिर जमीन कुरेदने लगी। अपने आप से बोली, 'मन के मोर मन में ही खेलाने हैं और यों ही जीवन पूरा करना है!'

कालू भी स्वगत ही बोला, 'और वही— मन के मोर और मन का जीवन ही सच्चा जीवन है! वहां नहीं आता कोई, की हुई सगाई तोड़ने से नहीं करता कोई निंदा, घर की औरत नहीं करती ईर्ष्या या— ' कालू ने स्नेह-द्रवित आंखों से राजू को देखा— 'नहीं तो तू भी यों घड़ी भर में उठकर चली जाती!'

ये दो व्यक्ति, वह और दिल, आत्मा ही मानो बात कर रही थी...इसमें भी क्षण-दो क्षण के मौन ने तो मानो युग-युग की बातें कर लीं। हृदय मिले और मानो अलग होते रो पड़े। दोनों की आंखों से आंसू चूते रहे, ट...प, ट...प!

राजू आंसू निगलकर हंसी। गुंजा-फल से लाल होंठों से शब्द झरे, 'पेट को संतोष हो, पर हृदय को— ' और वाक्य अधूरा छोड़ राजू कालू की ओर नीबू की फांक-सी उन आंखों के आर-पार देखती रही। राजू की नुकीली आंखों पर ढली पलकें भी मानो बारिश से भारी बने बरगद के पत्ते-सी हो गईं।

'सही बात है!' गहरी सांस लेते कालू ने कहा, 'मेरे बापू कहते थे— पेट भर सुने हैं, पर दिल भर नहीं सुने।' और सपने से जागकर निःश्वास छोड़ता बोला—'जा!...तुझे फिर देर होगी।'

राजू ने भारी पैर उठाते हुए पीठ फेरी। कालू भी मुड़ा। पर वह तो अब भी मानो उसी लगन में था, 'मन के मोर मन में खिलाना और इसी तरह जीवन पूरा करना है।'

30

जीने-मरने की जुहार

पांच दिन में बोई हुई और परती जमीन हरी हो गई! यौवन में प्रवेश करती कन्या के अंग-प्रत्यंग में, रोम-रोम में ज्यों यौवन प्रकट होता है वैसे ही धरती के अणु-अणु में यौवन पनप उठा। देखते-देखते वृक्षों ने गहरा हरा रंग धारण किया जबकि सागौन से छाए डूंगर तो पंद्रह दिन में मतवाले हो उठे और आसमानी रंग ओढ़कर डोलने लगे।

मकई बित्ते-भर हुई और नाचनी, बंटी (सांवां की जाति का अनाज), कोदो, दलहन, कुरी वगैरह बोए जाने लगे। किसानों ने फिर से उस मकई में हल डाले—इस जोताई से घास मिट्टी से मिल गई, जबकि सोखी हुई मकई एक-दो दिन कुम्हलाई-न कुम्हलाई और पहले की अपेक्षा दुगुने वेग से बढ़ने लगी। कालू के खेत में तो इतनी छिदरी कर दी गई थी कि बित्ते-बित्ते की दूरी पर मानो आम बोए हों।

राजू के घर से दो-तीन बार समाचार आए, 'कालू से कहना कि जरा आ जाए।

पर कालू ने तो मानो प्रण ले लिया था, 'भुट्टे तैयार हों तभी जाना है।' और खेती से मुक्त होकर रामा-कोदर से कहने लगा, 'अब अगर एक बार बरसकर क्यारियां छलका दे तो धान बो लूं।'

'तू क्यारियों की राह देखता है, पर अगर यह वर्षा ऊपर दिखा-दिखाकर गरदन दुखा न दे तो याद करना भगला क्या कहता था। मकई को तो सुखा ही डालेगी।'

जबकि रामा तो उलटी ही आगाही करता, 'अरे अगर यह बैठता सावन मकई को बहा न ले जाए तो याद करना। गांव को डुबा दे और अच्छे-अच्छे छप्पर उड़ा ले जाए। जल के स्थान पर थल और थल के स्थान पर जल।'

कालू को हंसी आ जाती, 'अब रहने दो, तुम सब गरबीले हो गए हो सो! मेरे बापू कहते थे कि मौत, नभ और गर्भ—इनका किसी को पता नहीं चला और चलने वाला भी नहीं।'

और हुआ भी वैसा ही। बड़े-बड़े गरबीले भी झूठे पड़ने लगे, मुद्दत होने लगी, 'इस पांचवीं को चूक गई सो ग्यारहवीं को तो बारिश होगी ही...पूनों पर तो उसके बाप का भी छुटकारा नहीं है बिना बरसे...गोकुल अष्टमी खाली जाए तो मूंछ मुंडवा डालूं— '

एक आदमी को तो कालू ने सुना दिया, 'मूंछ तो बहुतेरे मुंड़वा डालेंगे, पर भिगोने के लिए पानी होगा तभी न? अभी से नदी में हनुमान दौड़ते हैं और कुएं में भूत कुदान कर रहे हैं। पीने के लिए ही पानी नहीं मिलेगा, फिर हजामत को तो बात ही कहां रही?'

बात सच थी। सिर पर बादलों का आना-जाना न होता तो कोई न कहता कि यह चौमासा है। कोदो, बंटी, दलहन आदि की बोआई जमीन में ही गड़ गई। बचा-खुचा बैल-भैसों के पेट में गया। खेतों पर काले-काले बादल उतर आए हों वैसी मकई दिन-ब-दिन पीली पड़ने लगी। पवन से बात करती पत्तियां थके हाथ की तरह लटक गईं, जैसे किशोरी को क्षय रोग हो गया हो।

मकई की ओर देखकर नि:श्वास छोड़ते किसान मुड़-मुड़कर आसमान की ओर देखने लगे। आसमान में बादल दौड़ा-दौड़ाकर ललचाता रहा। कालू जैसे को अनेक बार लगता, 'यह इतना सारा पानी जा रहा है और उसे (भगवान को) जरा भी दया नहीं आती होगी?...'

एक बार तो कालू बोल उठा, 'कोई मुझे उतना लंबा भाला दे दे तो?'

'क्या करेगा तू भाला लेकर?' कोदर ने पूछा।

'इस आसमान को छेद डालूं।'

वे सब हंस पड़े। रामा ने कहा, 'यों ही आसमान में छेद हो सकते तो भली भाभी बेचारी मुरगा बोलते ही कुएं पर जाकर राह देखती खड़ी रहती क्या?'

अकेली भली ही नहीं, लगभग आधा गांव— खास करके घर में अकेले-दुकेले रहने वाले गांव के तोरण के पास वाले कुएं पर दूसरा मुरगा बोलता कि चार-पांच खाली आदमियों के साथ जा बैठते। तांबे के घड़े वालों की— शंकरदा, नाना आदि तीन-चार घर की स्त्रियों की महत्ता बढ़ जाती, 'बहन, मुझे जरा दो घड़ी खींच लेने दीजिए न?...लाइए आपका घड़ा-हंडा भी मैं ही भर दूं...'

गांव में एक दूसरा कुआं भी था पर दूर, ठेठ नदी के पास। सो भी इतना गहरा कि उसकी अपेक्षा तो नदी में खोदी कुइयां से पानी भर लाना ही लोग ज्यादा पसंद करते।

भादो तक लोगों ने बारिश की आशा नहीं छोड़ी। अलबत्ता, मकई भी ढोर के पेट में चली गई थी पर— खैर, घास-चारा होगा तो ढोर तो जीएंगे न?

पर कैसा घासचारा और कैसी बात! जैसा कि कालू ने कहा, 'सावन सूने गए हैं तो क्या भादो भरने वाले हैं!'

आश्विन में तो आसमान भी खाली— मानो किसी ने सफाई कर दी हो।

दिवाली का त्योहार भी सूना। न कोई पटाखे लाया और न लाया फूल वाले घेरदार कुरते। गाएं खेलाईं पर छोटे बच्चों ने और तोरण पहुंचाई— तब न गीत थे, न हुडे थे। जैसे बस श्मशान में आ बैठे हों। आला-पाला और जड़ें मिलती थीं, फिर भी

ढोर के पैर, मानो आने वाले अकाल का ख्याल आ गया हो, त्यों टूट गए थे।

पर इस साल वह 'मलणिया महुआ' ठसाठस था। स्त्रियों को छोड़ छोटा-बड़ा सारा पुरुष वर्ग फूला था। वह भी नहीं कि हुडे गाने या रुसवाइयां तोड़ने न आया था, आया था आखिर भेंट करने को! जैसे कि शंकरदा ने कहा, 'किसे पता हममें से कितने जीएंगे और कितने मरेंगे! शायद सभी मर जाएंगे। पर भाई, कहना इतना ही है कि जो जिंदा रहें, अगले साल मरे हुए को याद करें और— '

उनकी आवाज़ घुटने लगी, बोल ही न पाए...सभी एक-दूसरे से लिपट-लिपटकर मिले, 'राम...राम!' कहते वे भी आखिरी विदा लेते थे!

लेकिन गांव की ओर लौटते वक्त तो युवक ही नहीं, यहां तक कि रणछोड़ तथा शंकरदा जैसे बुड्ढे तथा बेचारे रामा के सात-सात साल के लड़के भी हुडे गाते थे :

'जीवो जागो! तो रावणां बेसाड़ जी
पेला मुयलाना छेल्ला झवार!'

(जिंदा रहो तो मजलिस बुलाना, उस मरने वाले की आखिरी जुहार!)

कौन कहे कि वे गा रहे थे? शंकरदा-कासम की आंखों से तो पानी की धार बही जा रही थी। कालू-भगा जैसे पत्थर हृदय जवानों की आवाज भी गीली थी। रामा मौत के मुंह में पहुंचने पर भी टिटोली किए बिना रह न पाता, पर आज तो वह भी ढीला हो गया। यहां तक कि गांव में सभी बिखरने लगे। तब उसने अपने दोस्तों को न्यौता दिया, 'भगा, कोदर खाना खाकर आना मेरे घर। होगा होने वाला! आखिरी बार हुडे तो साथ मिलकर गा लें!'

गांव में लोग मंडलियों में घर-घर घूमने लगे। आबालवृद्ध से भेंट करते रहे— भावगीली, रुदनभरी, जीवन-मरण की आखिरी विदा लेते-देते रहे!

ठाकुर आए, पर महसूल का उन्होंने नाम भी न लिया। घर-घर न्यौते भी न होने दिए। दायरे अलबत्ता हुए। कुसुंभे भी निकले, पर मनुहार तो उस आखिरी दायरे के पास ही हो गई। ठाकुर ने उड़न-घोड़ी पर चढ़ने से पहले कहा, 'मैं तो समझता हूं भाई कि यह अकाल आया है और मेरी मौत सुधर गई! जिंदा रहो तो सुनना कभी कि ठाकुर धाड़ में मर गए!' फिर जोरों से सांस लेकर आगे बोले, 'पर क्या करूं! मेरी पहुंच कम है और आप सब परिवार वाले हैं; कहां तक पहुंच पाऊंगा? पर इतना कहता हूं कि हो सके तब तक गांव में टिके रहना, टिक न पाओ तब 'शेरपुर' आ जाना, दाने और दो-दो चार-चार ढोर लेकर। वहां तुम्हारा बाल बांका होने न दूंगा।' रकाब में पैर डालते हुए कहा, 'जब तक मैं और मेरी यह घोड़ी जिंदा है तब तक। लीजिए राम...राम।'

'रा...म राम, बापूजी!' पचास-साठ आदमियों की मेदिनी बोल उठी मानो भौंरे गुनगुनाए। जाते ठाकुर से रणछोड़, कासम कह रहे थे, 'बापूजी, कभी हमारी भी खबर लेना...? अपना जी संभालना, बापूजी।'

जबकि कालू ने तो ऊंची आवाज में कहा, 'और हम खत्म हो जाएं तो इस होली-चौक में हमारी याद के खंभे चुनवाना।'

'बापूजी, जीवो-जागो तो...' शंकरदा के इन शब्दों के साथ फिर सारी मेदिनी ने आवाज मिलाई, 'आखिरी जुहार।'

दो-चार पल तक छाई हुई उस शांति में प्रतिपल दूर, और दूर चली जाती घोड़ी की टाप सुनाई देती रही : 'तड़बड़, तड़बड़, तड़बड़, तड़बड़...'

किस बात का डर था इन लोगों को? अकाल से खत्म होना कैसा और याद के खंभे चुनवाना कैसा? ठाकुर जैसे थोड़े ही थे कि अनाज मर जाने से कहते, 'अकाल आया और मौत सुधर गई।'

डर दूसरा था।

जो अकाल से डरते थे वे तो नदी के सामने वाले डूंगर-डूंगर पर झोंपड़े बनाकर आदि-अनादि काल से पड़े थे। उनके लिए कपड़ों का अकाल तो अकाल माना ही नहीं जाता था, धान्य का भी सदा-सर्वदा अकाल ही बना रहता था। खेती करते थे पर खेती करना जानते नहीं थे, थोड़ा-बहुत पकता था पर उसे संभालना नहीं जानते थे।

और अलखा गामेती से जिस किसी को संभालना आता तो वे भी ऐसे वक्त इन लोगों की तरह ही डरने लग जाते!

डर उनसे था।

वैसे इन दिनों तो आला-पाला और घास बेचकर या कुछ पेड़ों के छिलके पकाकर, इमली-से पेड़ों की कोपलें खाकर दिन गुजारते जाते थे। पर अभी तो कहां?...

जाड़े की लंबी रातें तो पेट की खाइयों में घुटने गड़ाकर बिता दीं, पर गरमियों के लंबे दिनों का क्या करें?

आला-पाला भी अब तो कोई लेता न था और लेता भी कैसे? साहूकार माने जाते इन किसानों को ही बारिश तक पहुंचने में सांसत थी, फिर धान्य के बदले में ढोर जिलाने की कोशिश करें तो ढोर और मनुष्य— सभी को मरना ही पड़े न?

आला-पाला खरीदनेवालों के भी बुरे दिन आ गए। किसी ने गहने गिरवी रखना शुरू किया, तो किसी ने खेत...

शंकरदा, कासम— और खास करके रणछोड़-नाना तो सोच रहे थे कि ऐसा मौका आया कि आएगा। पांच सौ का खेत पांच मन दाने में और सो भी विनती के साथ...

फागुन की अंधेरी रातों से भनक शुरू हुई, 'डाकुओं ने धावा बोल दिया है...! आज पहुंचेंगे शायद...उल्लू...बंदूक की आवाज हुई वह...वह दौड़ने की आवाज सुनाई दे रही है।'

और इस तरह लोगों की नींद भी हराम हो गई।

युवकों के साथ गांव की रखवाली करते कालू को भी इन काजल-काली रातों में

मौत झांकती लग रही थी...। चांदनी रात में भी गांव के सिवान में डाकू आ रहे हों, ऐसा आभास होता। खुली तलवारों पर पड़ती चांदनी की चमक भी दिखाई देती जैसे।

कालू ने एक रात सोचा, 'कल तो मरने-जीने का आखिरी मिलाप कर ही आऊं!'

और सचमुच कालू बड़े तड़के राजू से मिलने चला...

दरवाजे में बैठी राजू ने चले आते कालू को पहचाना नहीं। कैसे पहचानती? कंधे पर तलवार लटकती थी। हाथ में करीब पंद्रह तीर का तरकस था। चाल भी बदल गई थी। कालू इन दिनों किसान न था, हाथ में सिर लेकर घूमता मरजिया था। बुकानी (मुंह पर बंधा कपड़ा) में चमकती वे आंखें भी ऐसी ही थीं. .बिलकुल नजदीक आ गया तब ही उसे पहचाना। हंसते हुए कहा, 'मैंने तो आपको पहचाना ही नहीं।'

'और तू भी कहां पहचानी जा रही है? अनाज वगैरह मिलता है या अभी से—'

'अनाज मिलता है, पर काम नहीं मिलता!' राजू ने खाट बिछाते हुए कहा।

'बैठे-बैठे तो आदमी उलटे मोटा होता जाए या ऐसा...दुबला!' घर देखते हुए पूछा, 'कहां गए हैं सब?'

'तीनों गांव वालों के साथ डेगड़िया गए हैं दाने लाने को और बच्चे कहीं खेलते होंगे।'

'दाने बिलकुल नहीं?'

राजू हंसी। बेपरवाही दिखाने की कोशिश तो की, पर सारा बदन ही फीका हो गया था, फिर हंसी में रंग कहां से आता?

'हैं थोड़े-बहुत! बिलकुल खाली थोड़े ही हो गए होंगे?'

'ना..! मान लेने को जी नहीं होता। चल, मुझे दिखा तो।'

कालू ने कंधे से तलवार उतारते कहा और खड़ा हुआ। 'मुझे देखने दे तो कोठियों में', कहता-कहता कमठे के साथ सामनेवाली कोठी की ओर मुड़ा।

राजू की इच्छा उसे रोकने की थी। कहना था, 'मैं झूठ तो बोलती नहीं।' तो फिर, 'चलिए, चलिए, किसी की इज्जत लिए बिना, बैठिए चुपचाप।' यह भी कहना था, पर कैसे बोल पाती? गले में घुटन थी और भी मानो सब जड़ हो गए थे...खाट के पाए के पास पड़े तीर लेकर उसने खाट पर रखे। पास में पड़ा झाड़ू एक ओर डाला और घर में पड़े कचरे का खयाल आते फिर से उठाया।

कालू कोठियों में कमठा डालता था तो अंदर से 'धम्म् धम्धम' की आवाज उठती थी मानो तह में बैठा काल गरज रहा हो! इतना ही नहीं, झोपडे से उठती 'सर्र, सर्र' आवाज भी इस शांति में भयंकर लगती थी।

राजू ने बुहारकर झाड़ू एक ओर डाला। घर से लौट आए कालू ने कमठा तीर के साथ रखा। खाट पर बैठते हुए बोला, 'खत्म!.. अभी तो अनाज पैदा होने के बीच गरमियों के तीन और बारिश के चार—सात महीने हैं और घर में तो एक कन भी अनाज नहीं!'

राजू हुक्के से चिलम लेकर अंगारे लेने के लिए घर से बाहर यों निकली। जैसे कालू के ये शब्द सुने ही न हो।

उसकी पीठ की ओर ताक रहा कालू फिर बड़बड़ाया, 'घर में अनाज हो तभी न आग सुलगाए?' उसने जोरों से एक सांस ली। 'न जाने अन्न खाए कितने दिन हुए होंगे!' ...और कुछ सोच रखा हो त्यों राजू की राह देखता दरवाजे की ओर ताकता रहा।

राजू के आते ही कहा, 'छोड़ यह तंबाकू और चल मेरे साथ, हो जा आगे।'

राजू तो चौंक गई। उसकी सूरत देखने से लग रहा था, रोऊं या हंसूं? मानो ऐसी द्विविधा में हो!

कालू की सूरत भी रोनी सूरत से कम न थी! वह आगे बोला, 'मैं तुझे इस तरह बुरी मौत मरते नहीं देख सकूंगा।'

'बुरी मौत तो सारा मुल्क मरेगा या मैं अकेली? आपके घर में कहां कोठार भरे हैं? बीज लेने आई तथा कोठियां तो— '

'सो तो सब हो जाएगा। मैंने हिसाब लगाया है। हम दोनों के तो अभी दो महीने निकल जाएंगे और मंगल को तो—आज मैं यहां आया वरना वापस पहुंचाने ही— '

राजू बीच में ही बोली, 'नाना! आप उसे छोड़ आने वाले होंगे, पर दुनिया क्या कहेगी? और छोड़िए दुनिया की बात, पर जी तो सभी के समान होते हैं न?' क्षणभर रुककर सिर हिलाते बोली, 'ऊं हूं! ठीक है, अपने किसी एक साले को ले जाएं तो वाजिब है, वरना—मेरा-आपका क्या संबंध?'

'बस न! इतनी ही बात न, राजू!' कालू की आवाज ही नहीं चेहरा भी दुख से मढ़ गया।

'ऐसे नहीं! आपके और मेरे मन से तो बहुत-कुछ है, पर आपके घर में तो— '

'अरे पर मैं अपने हिस्से से, हम दोनों एक-एक जून ही खाकर दिन बिताएंगे, फिर तो ठीक है न?'

क्षणभर के लिए राजू सोच में डूब उठी। परंतु अभी तक जैसे दिशा भूल गई हो, दूसरे ही क्षण होश में आकर चौंक उठी और बोलने लगी, 'कैसी बात करते हैं?...क्या सोचकर यह आप बोलते हैं? अपने घर के सभी को मौत के मुंह में छोड़कर मैं आऊंगी?' दो-चार पल की शांति के बाद शहतीर की टेक देने वाले उस खंभे पर नाखून से लकीरें खींचती हुई राजू ने कहा, 'मुझे ले जाने की बात तो भूल ही जाना, सपने में भी वह नहीं हो सकेगा!'

'तब ऐसा ही कह दे न कि तुझे जानबूझ कर ही मर जाना है।'

'मरना किसको भाता होगा!' हंसने का यत्न करते राजू ने कहा, 'मैं और क्योंकर— '

'क्योंकर कि मैं सब-कुछ समझता हूं, राजू! जगत में और कोई तुझे नहीं जानता होगा जितना मैं जानता हूं'—उसने राजू की ओर देखते हुए सवाल किया, 'बोल, खाना

तू पकाती है, वह सही है या गलत?'

'सही।'

'सभी को परोसती भी है तू?'

राजू ने हुंकारी भरने के लिए सिर हिलाया। कहा, 'बांटकर दे देती हूं।'

'और बांटने वाले के हिस्से में क्या बचता है, बताऊं?'

राजू की फीकी आंखें हंसती रहीं। भौंहें उछालते मानो ठिठोली करती बोली, 'कहिए।'

'उस बांटने वाले के हिस्से में तो, डौवे पोंछने से और हांड़ी धोने से जो निकल आए!' कहते हुए कालू खड़ा हो गया, 'किस लिए तू अपने ही हाथों— और भलाई तो जिंदा नहीं रखेगी! ठीक कहता हूं पगली! तू मानती होगी कि दुनिया तुझे नोंच डालेगी, पर इन दिनों तो नोंचने के लिए भी कोई फारिग नहीं। हर किसी को अपनी ही फिक्र है। अरे, देखना, मां ही बच्चे को पकाकर खा न जाए तो याद करना, कालिया क्या कहता था! अरे मान जा बेवकूफ— ठीक कहता हूं— '

'नाहक आप बकवास करने लग गए हैं।' राजू कुछ चिढ़ के साथ बोली, 'मैं तो यह घर छोड़कर कभी जाने वाली नहीं।' जमीन पर बैठते हुए उसने कहा, 'मेरा भाई बुलाने आए तब भी नहीं।'

कालू को आज राजू बड़ी ताकतवर दिखी। उसने मन-ही-मन इस जगदंबा को नमस्कार किया; काफी देर तक हुक्का गुड़गुड़ाने के बाद राजू की ओर नजर करते कहा, 'तो आखिरी बार तुझसे मिलने आया हूं, आशीष दे!'

'किस बात की आशीष और आखिरी बार मिलना क्यों?' राजू का फीका मुंह पूनी-सा हो गया, 'क्या बोलते हैं आप?'

'सच कहता हूं, राजू! हमारी ओर भी बहुत-से लोगों की दशा तुम्हारे जैसी है और बचाखुचा अनाज है वह भी आजकल में लुट जाने वाला है। इसीलिए मैंने तो तय किया है कि भूख से मर जाने की बजाय डाके का मुकाबला करते मरना क्या बुरा है! दुनिया याद का खंभा तो— '

'हूं...! तो इसलिए तीर-कमठे लिए हैं?'

राजू भेद समझ पाई और इसके साथ ही उसकी नुकीली आंखें तेज हो गईं। बोली सो भी कटाक्ष से, 'तब ऐसा ही क्यों नहीं कहते कि डाके में मरना है और याद के खंभे में जीना है।'

कालू न तो कटाक्ष समझ पाया, न राजू को पहचान पाया और इसी कारण उसने दुहरा जबाव दिया, 'तब भूख से, कुत्ते की तरह चीख-चीखकर कौन मरे?'

'हूं...!' राजू की आंखें जैसे दरवाजे के बाहर दिखते आसमान की ओर थीं, वैसे उसका ध्यान भी अन्यत्र था।

उसे चुप देखकर, कालू ने यह सोचकर कि वह ठीक से समझ नहीं पाई है,

कहा—

'मरते-मरते भी यह देह जो कुछ उपयोगी हो पाई।'

राजू की तेज नजर तीखी बनी रही। कालू की ओर आंखें करते हुए पूछा 'कभी उपवास किया है आपने?'

'अभी तक तो भगवान की कृपा से— '

'तो ऐसा कीजिए, दो दिन रुककर जरा देखते जाइए कि भूख कैसी है! और फिर जाकर— '

कालू को राजू के शब्दों की अपेक्षा उसकी दीन सूरत अधिक उलझा रही थी। यहां तक कि वह उलझन में आधी बात तो समझ ही नहीं पाता था। बीच में ही कहा, 'मैं तनिक भी समझ नहीं पाता, तू क्या कह रही है?'

'भूख देखी नहीं, फिर कैसे समझ सकते हैं!' राजू मानो स्वगत बोली। दूसरे ही क्षण उसने कालू की ओर देखा, 'आप नहीं जानते'— राजू की आंखें कटु थीं, आवाज कटु थी, 'जिस दिन मैं सेठ के घर दाने लेने गई तो उनके कोठार अनाज से फट रहे थे, सेठ ने मेरे रूप का बखान किया और छेड़खानी करनी चाही, उस दिन खाली हाथ लौटते हुए मैं बहुत-कुछ सोच रही थी कि मैं पुरुष होती तो उस साहूकार का खून कर देती और भूखों मरते उन सभी को बुलाकर वह कोठार लुटा देती।' राजू की आंखें सचमुच खून से भरी थीं। जोर से सांस लेकर उसकी आवाज मंद हुई, 'आज भी मुझे तो, आप आए उस वक्त मैं बैठे-बैठे यही सोच रही थी। पर क्या करूं, भगवान ने मुझे औरत बनाया है।'

कालू तो ठंडा हो गया। बोलने के लिए कुछ मिला ही नहीं।

उसे चुप देखकर राजू आगे बोली, 'आपको लगेगा कि राजू बेवकूफ है। पर राजू क्या करती? जो गहना था वह सब बेच खाया और ये घर-खेत भी कोई खरीद ले तो दस मन या दो मन दाने में बेच दूं। कहावत है न कि जिंदा होंगे तो बादशाही पैदा करेंगे पर— '

कालू को कहने की इच्छा हुई, 'पर तुझे जीना है कहां! तुझे तो भलाई से पेट भरना है।' और कह डालता, पर हिम्मत न हो पाई...एक निःश्वास छोड़ते कहा, 'पर तू न तो लूट पाएगी और न लुटाएगी अपनी जात। फिर मरना ही तो बाकी बचा न?'

राजू इतने दुख में भी कालू को दुखी होता न देख पाई। हंसकर बोली, 'आपको मौत का अचरज है, वरना हमें तो— हम तो जिंदगी के नाम पर नहीं बैठे हैं। उस नदी में अभी से हर रोज तीन-चार चिताएं जलती देखते हैं। उनके साथ एक दिन हमारी भी जलेगी। उसमें है क्या?...आप तो कहते हैं कि मौत को हाथ में लेकर घूम रहा हूं!'

कालू को फिर वही आवाज, वही सूरत अपनी ही लगी, 'अपनी मौत से तो यहां डरता ही कौन है? पर इच्छा हुई कि मरते समय हम दोनों साथ होते तो— ' कालू की आंखें भर आईं, वह चुप हो गया।

'आपको जो हो रहा है, मुझे नहीं होता होगा?' कहती राजू फटे आंचल को फाड़ती रही— 'मन को तो बहुत-कुछ होता है कि जीते जी मिल न पाए तो खैर, पर मरते क्षण तो— ' और सांस लेते हुए कहा, 'ऐसे भाग्य कहां कि मरते वक्त साथ में— '

पर 'जल्दें' कहे इससे पहले तो उसके जेठ-जिठानी और पति आंगन में आते दिखाई दिए। सिर पर गठरियों-सा देखते ही राजू का मुंह खिल उठा, 'लीजिए, महीने तक तो मौत टल गई, तब तक तो फिर बादशाहत पैदा करेंगे।' और वह खड़ी हो गई।

पर कालू जानता था कि राजू के ये शब्द और लापरवाही उसे खुश करने के लिए ही थी।

ससुर-चाचा से 'राम-राम' करने के बाद कालू ने उन लोगों से सिर्फ दिखावे के लिए ही समाचार पूछे। बैल बेचकर अनाज लाए हैं यह जानकर वह खुश हुआ, 'यह तो समझदारी का काम किया। गायें भी होंगी न आपके तो, तो उन्हें भी कोई ग्राहक मिल जाए तो बेच— '

'ग्राहक तो मिल जाये पर-- ' चच्च् चच्च् चच्च् चच्च्— कालू के ससुर ने अनिच्छा प्रकट की, 'अरे राम राम! वे लोग तो भूख के मारे न मरने के काम करें, पर हम कैसे पाप के साझेदार हो सकते हैं?'

कालू भी समझ गया कि वे बैल भी भूख तोड़ने में गए, और ये गायों के ग्राहक भी— और वह सलाह देने के लिए पछतावा करता रहा— मानो कोई महाभारी पाप कर बैठा हो!

'देखना, कहीं राजू बहू के सुनते बोल न बैठे।'

ससुर का यह वाक्य सुनकर कालू की इच्छा हुई, राजू को ताना देने की, 'वाह रे आपकी राजू बहू! आदमी का खून करने में और लूट चलाने में धर्म बीच में नहीं आता और ये गाएं बेचने में— ' पर दूसरे ही क्षण उसी राजू को मन-ही-मन प्रणाम करता रहा, बड़बड़ाता रहा, 'राजू! इस प्रेत-मुल्क में और कठोर जाति में तुझ-सी क्यों हुई? तुझे तो किसी राजवंश में या किसी पंडित-ब्राह्मण के घर पैदा होना चाहिए था!...'

इसके बाद कालू ने दाने संभालने और किफायत से खाने के बारे में कुछ सीख दी। साथ-साथ अपने गांव की भी बात की और घर की चिंता करते हुए जाने की इजाजत मांगी, 'तो मैं जाऊं।'

सास-ससुर ने भोजन करके जाने का आग्रह किया। घर में भोजन पकाने में लगी राजू ने बाहर आकर स्नेहभरी डांट हो दिखाई, 'आपको लाज होती तो खाना खाए बिना उठते भी?'

कालू को खाने की रुचि ही न थी, भूख भी मर गई थी। पर करता क्या? बिना बोले भी राजू की आंखें कह रही थीं, 'मेरे हाथ से आखिरी खाना तो खाते जाइए, बाद में किसे पता कौन जिया, कौन मरा!'

और कालू को बैठना ही पड़ा।

राजू ने घड़ी भर में पीसने का काम पूरा कर लिया और कालू नहाए इतने समय में रोटियां तैयार कर दीं। उसने कालू को ठेठ घर के चूल्हे के पास खाने के लिए बिठाया।

विदुरजी की भाजी में इन कोदो की रोटी-सी मधुरता नहीं होगी! तिस पर फिर लहसुन की चटनी और छाछ।

खाते-खाते भी कालू की आंखों में आंसू आ गए और राजू ने अंधेरा होने पर भी पहचान लिया, धीरे से कहा—

'कहते हैं न कि मर्द हूं!...इतनी ही हिम्मत है?'

'फिर से मिल पाए न मिल पाए!'

'तो भी क्या? वहां तो मिलेंगे न?'

'मुझे बहुत-कुछ कहना था, राजू—' और कह ही दिया, 'तेरी गोद में सिर रखकर आखिरी बार को रो लेना था—' जाने-अनजाने भी उसका सिर राजू की ओर बढ़ा।

'खाइए चुपचाप!' राजू ने कालू के सिर पर हाथ फेर दिया। दूसरे ही पल पानी का लोटा भरने के बहाने उठकर चली गई, पर कालू को अब वह वहां बैठी रहती तब भी कोई इच्छा नहीं थी। न तो आशीष अधूरी थी या गोद में सिर रखकर रोने के अरमान ही अधूरे थे। सिर पर फिरती उन पांच उंगलियों में ही सब-कुछ आ गया—जीने-मरने की आखिरी जुहार थी।

खाकर हुक्का पिया-न पिया कि उसने हथियार संभाले। सास-ससुर तथा चाचा-ससुर से आंसू भरी विदा ली, अंत में राजू से, पर वह केवल आंखों से। 'पंद्रह दिन में मैं चक्कर लगा जाऊंगा और आप भी समाचार लेते-देते रहिएगा...लीजिए, राम-राम।' और पीठ फेरते-फेरते कालू से कह दिया, 'राजू! फिर मिल पाए, न मिल पाए तो जीने-मरने के—'

गले में घुटन के कारण आखिरी जुहार अधूरी ही रह गई!

खुद राजू भी होश भूलकर खड़ी थी।...कालू की पीठ की ओर अनिमेष ताकती और आंसू बहाती—कालू की कलगी दिखनी बंद हुई तभी उसने पीठ फेरी और आंखें भी पोंछी।

31

भूखे भूत

कालू के रास्ते में आता वीराना छप्पन के अकाल के कारण 'खांऊ-खांऊ' कर रहा था। पक्षी भी भूख-प्यास से तड़प रहे थे। चैत की लू भी निहायत रूखी! जली-भुनी धरती तो कालू के खुले पैरों के लिए दुश्मन बनकर लुआठे चांप रही थी।

परंतु कालू का उस ओर ध्यान ही न था। मस्तिष्क में एक ही विचार घूम रहा था, 'राजू उस साहूकार को अपनी काया तो सौंप नहीं देगी न?'

दूसरी ओर उसे पूरा भरोसा था, 'धरती की परत भले ही पलट जाए, पर राजू नहीं पलटेगी!...भले ही वह भूख की मारी कल मरती हो तो आज ही मर जाए पर— '

और कालू ऐसी शंका करने के लिए अपने-आपका तिरस्कार करता रहा, 'धिक् हत्यारे! तूने अभी राजू को नहीं पहचाना? वह चोरी करेगी, लूटपाट करेगी— बिगड़े तो शेरनी की तरह कितनों को खत्म कर डाले, प...र,' उस बात में कच्ची पड़ेगी?

फिर भी कालू ने अनाज की उन गठरियों और घर के आदमियों का हिसाब लगाया...राजू किफायत करके भी एक मास तो निकाल देगी! और उसने निश्चय किया, 'फिर भी पंद्रह दिन में एक चक्कर तो लगा आऊंगा।'

इसके साथ भली के पैर की चूड़ियां, लौंग, झुमका, हाथ की चूड़ियां, बाली, पट्टियां और दो-तीन अंगूठियां भी उसने गिन लीं, हुक्के पर लपेटे हुए आठ-बारह अन्नी भार के तार गिनना भी न चूका, बड़बड़ाया, 'यह सब बेच देने पर दूसरा एक महीना नहीं निकलेगा? और...'

उन गठरियों और जेवर के सहारे दो मास काटने की बात सोचते उसने सवाल किया, 'बारह-बारह मास से गई बारिश जेठ के पिछले पंद्रह दिनों में भी नहीं लौटेगी?'

और मानो जेठ का दूसरा पक्ष अभी आकर खड़ा हुआ हो। कालू बोल उठा, 'चौमासा शुरू हो गया फिर झख मारता है। पेड़ों की कोंपलें और भाजी खाकर भी दिन गुजार देंगे, पर एक बार बारिश तो हो।...'

यह सब सोचने के कारण या फिर गांव का सिवान आ जाने के कारण या ढलते सूरज की कम होती धूप के कारण तेज चलने के लिए उसने पैर उठाया। परंतु उठा

हुआ पैर ऊंचा ही रह गया! गांव की उत्तर दिशा से नदी के छोर से चीख सुनाई दी, 'दौड़ना— ढोरों में धाड़ पड़ी, दौड़ना. ई.. '

कालू के अंगों में एक झीनी-सी कंपन फैल गई। अरे, आसपास के पेड़ और हवा में भी शांति का सन्नाटा मुखर हो उठा।

पर तभी तो उस चीख-पुकार का उत्तर देते गांव ने मानो आसमान गुंजा दिया. 'होई आए...होई!...हाय रे हाय!...कितनी दूर जाता बैरी! तिरछे दौड़ वे तिरछे ..सामने वाले टीलों की ओर तिरछे ई. .!'

खंभा बनकर खड़े कालू को होश आया। उसका अंग-प्रत्यंग कांप उठा— शौर्य चढ़ आया। पैर उठे और वह मुड़ गया बाएं हाथ की ओर। न देखे खेत के किनारे, न देखे मेड़— एक-दो जगह तो सिर तक ऊंचे आड़े फांद गया, जबकि छोटे-बड़े झंखड़ तो पैरों के बीच से ही निकल जाते थे।...नदी-तट पहुंचकर उसने एक ही पुकार लगाई 'हो...र ..र रे बैरी! धीरा रहना होई आया। गिन लेना घड़ियां गिननी हों तो।' और किलकारी लगाई...ई ..।

गांव में दो जनों की ही आवाजें बुलंद थीं— एक कालू की दूसरी वेचात की। सभी इन आवाजों को पहचानते थे, तभी तो डूंगरों से वेचात चीख उठा था 'फिसात नहीं! आ गया है मेरा साथी ई ..'

पर यह साथी तो उस आवाज की ओर न जाकर दूसरी ओर मुड़ा...झाड़-झंखाड़ में भी कालू खुले पैर दौड़ता बढ़ रहा था— सरकता जा रहा था, बालों में जैसे जूं सरके।

पर इसका अर्थ यह नहीं कि कालू इस जंगल के आदमियों से तेज दौड़ता था। उनमें से कोई तो दौड़ते खरगोश को पकड़ लेने वाले थे; पर करते क्या? एक तो भूख से मरे हुए थे और दूसरे ढोरों ने भी मारा! लाठियां लगा-लगाकर भैंसों को बहुत दौड़ाते थे, पर वह मोटी जात दौड़-दौड़कर भी कितना दौड़ती!

फिर भी इसके पहले कि गांव से मदद आ पहुंचे, वे लोग डूंगरों में मिल गए, और फिर तो— कहावत गलत नहीं, 'मायके में पहुंची लड़की और डूंगर पर चढ़ा भील कभी किसी को नहीं मानता!'

दांत पीसते और हाथ मलते रमा, भगा, नाना, केदर आदि युवक और शंकरदा, कासम के समान प्रौढ़, 'रो बैठे भाई! अब क्या टिकने देंगे हमें?. . लूट गए इस पर नहीं रो रहे हैं, इस बात पर कि घर देख गए।' दिल के फफोले फोड़ते लौट गए।

गांव में तो कुहराम मच गया था। पर वे भी जो गया उस पर नहीं रो रहे थे, जो 'था' उसके लिए। भयंकर भावी देख मां रोती थी, मां रोती थी सो बच्चे घबरा गए थे...

कौन किसे दिलासा दे? आसमान फटा, फिर थिगली कहां लगाएं! डूंगर रूठे, फिर शरण किसकी खोजें?

सारे गांव में रोना-पीटना कम हुआ तो केवल वेचात के घर; क्योंकि वह अपनी सात भैंसों में से दो लौटा लाया था, इधर-उधर रह गई गांव की चारेक भैंसों के साथ।

दूसरी ओर कालू के घर भली किवाड़ पर सिर पटक रही थी। 'बेचात भाई तो अकेले आए, और कोई जाओ रे...मेरे आदमी की खबर लगाओ...! हाय हाय! अब क्या हो! गुस्से से वह निगोड़ा धाड़ में पड़ा होगा और भीलों ने—हाय हाय रे! कोई जाओ। रामा भाई, कोदर भाई! बहुत दिन साथ बैठकर तंबाकू पी है, बेवकूफो! कोई तो उसकी खबर लो!' वह फिर बेचात से भी विनती कर आई।

फिर से पंद्रह जवान निकल पड़े।

दूसरी ओर मुड़ा कालू एक ही सांस से डूंगर चढ़कर एक छोटी-सी घाटी तक जा पहुंचा था। बड़े-बड़े पत्थर लाकर उसने उस घाटी के ऊपर के भाग में रख दिए। म्यान में तलवार ढीली कर रखी और कमान पर तीर चढ़ाकर एक छोटे पलाश का सहारा लेकर धाड़ की राह देखता बैठा रहा।

कालू के सजग कानों तक मरते—कटते जाते ढोर की आखिरी आवाज आ पहुंची, 'मैं...!' और वह बड़बड़ाया, 'शायद इस घाटी को पार करते-करते सभी ढोर खत्म हो जाएं।' वहां से चला और लुक-छिपकर दूसरे डूंगर पर चढ़ा।

और चढ़ते ही जो दृश्य देखा वह तो कालू अगले जन्म में— और सात जन्म में नहीं भूल पाएगा! बीस-पच्चीस अस्थिपंजर, उस मरे ढोर पर टूट पड़े थे, दांत की छुरियां थीं और आग तो पेट में धधक ही रही थी! कालू कांप उठा। क्षण-भर के लिए तो उसे शंका हुई, 'ये गिद्ध तो नहीं हैं?'

गिद्धों की तरह ही हो रहा था, कोई उन बच्चों को धक्का दे रहा था तो कोई बुढ़िया खून पी रही थी। ढोर के एक-एक पर दो-दो जनें बर्छी से काटते थे, जबकि वे दोनों, जो तलवार लेकर चढ़ बैठे थे, मांस काटकर लंगोटी के बगल में दबाते या फिर पेट और जांघ के बीच। तलवार का डर था, फिर भी कोई एकाध लोंदा खींच ही लेता।

कालू सिहर उठा। उसके रोम-रोम खड़े हो गए। मारना तो दूर, आंखों में आंसू आ गए, 'अरे तेरी जड़ निकल जाए भगवान! मनुष्य के जायों की यह दशा!' डूंगर फट जाए ऐसा निःश्वास छोड़ते बोला, 'जगत में सबसे बुरा अगर कुछ है तो एक यह भूख ही है!'

कालू के हाथों की अपेक्षा भी मन में पिता की तरह नाम कमाने की तमन्ना अधिक थी। पर यहां वह ढोर और ये लोग सभी मरे हुए थे, फिर मारता किसे? अरे मारना तो एक ओर रह गया, उन अस्थिपिंजरों के आस-पास छटपटाते दो-तीन बालकों को देख उलटे चीखने लगा, 'अबे मुर्दे, उन बेचारे बच्चों को तो दे कुछ!'

और शायद बोल न पड़े, इस भय से या फिर वह दृश्य अदृश्य हो जाने से, वह वहां से खिसक गया। 'क्या करूं?' यह सोच रहा था तभी पचासों अस्थिपिंजरों का एक झुंड करीब पंद्रह ढोरों के साथ उस गलियारे की ओर जाता दिखा। उन ढोरों में अपनी भैंस देखकर फिर तमन्ना जगी, 'अकेले हाथ अपनी भैंस वापस ले जाऊं तभी

मैं वाला पटेल का लायक बेटा!'

और फिर से कालू उस घाटी पर जा बैठा। तलवार म्यान से बाहर निकाली और पलाश की ओट में खड़ा देखने लगा। उन पचास आदमियों के झुंड ने सिर्फ दस आदमियों की जगह रोकी होगी। उनमें युवक थे, युवतियां भी थीं, पर लंगोटी के स्थान पर सबने पेड़ की छाल और पत्ते लपेटे थे, फिर भी पहचानना मुश्किल हो गया। आज से आठ मास पहले एक-एक घड़ा दूध भर रखने वाले स्तन छाती में धंस गए थे। चमड़ी लटकती थी, पर वह भी मानो रंग की काली रेखा जैसी ही थी। जबकि पीछे-पीछे आते बूढ़े-बुढ़ियाएं तो केवल खिंचते हुए चल रहे थे। इन सब के पैरों में उलझते बच्चे, 'मुझे खाना है, मर गई रे...ओ दैया...!' यह सब बोलने की शक्ति भी खो बैठे थे, सिर्फ धीमे-धीमे आर्तनाद ही करते थे। कालू जानता था कि उनके हाथ-पैर में एक तिनका तोड़ने की शक्ति भी नहीं है, पर आगे चल रहे उन चार पैरवालों के कारण इतना जोर आ गया है...

वे ढोर और आदमी उस घाटी के करीब आएं न आएं कि एक ने— चार जनों की मनाही होने पर भी— एक पड़वे के गले पर तलवार चला दी।

और उन 'ना ना' करने वालों ने भी एक-एक सुला दिया।

और उन ढोरों पर वे लोग ऐसे जुट गए जैसे गुड़ के चक्के पर चींटे छा गए हों...

जिनके पास हथियार न थे वे हाथ मलने लगे। मांगने पर भी, गिड़गिड़ाने पर भी किसी ने तलवार न दी। और कैसे देते? वह ढोर पर चलाए, इतनी देर में जी निकल गया तो?

पांच-दस क्षण के लिए ये निःशस्त्र लोग उलझन में रहे। वे लोग बतीसे भरकर और लहू पीकर जी रहे थे।

और सचमुच वे ढोर शांत खड़े रहते तो ये लोग बाघ की तरह चिपककर उन्हें खा जाते! आदमी होता तो भी गला घोंटकर मार डालते, पर इतने बड़े को तो—

एक जूथ ने छुरी से काम लिया तो दूसरे ने कुल्हाड़ी का उपयोग किया। फिर बिना हथियार की तीसरी मंडली ने उस घाटी के बीच एक सफेद ढोर रोका। दोनों ओर से पत्थरों की वर्षा की।

खून भरे अशक्त मनुष्यों की अधीरता और उस सशक्त ढोर की छटपटाहट!...

निःश्वास छोड़ता कालू ऐसे बोला जैसे राजू को जवाब दे रहा हो। 'तू कह रही थी, पर आज तूने खूब भूख देख ली।'

और कालू इन्हें मारना तो भूल गया, उलटे इन लोगों की चिंता में फंस गया। क्षण भर में अनेक विचार आ गए, 'ये लोग कब मार पाएंगे और कब खा पाएंगे? और बेचारा ढोर कब छुटकारा पाएगा?'

और न जाने उसने ढोर की कराह सुनकर या फिर मारनेवालों की बेकार कोशिशें देखकर, या पीछे-पीछे छटपटाते और जमीन पर रेंगते, रोते बालकों को देखकर

तलवार फेंकी। 'लो तुम्हारी मां के धनी!' इसके साथ ही वह उठकर चलता बना, भगवान को शाप देता और गालियां बकता, 'काल देने वाले भगवान, तेरी जड़ जाए, तूने आदमी की यह दशा कर दी...'

पर रास्ते में जहां देखो इसी तरह की स्थितियां! कालू को तो भरोसा हो गया। 'गांव के दो सौ, तीन सौ ढोर दिन ढलते तक तो मानो बचेंगे ही नहीं!' और उसे लगने लगा कि कब इन डूंगरों से बाहर निकल जाऊं...।

पर डूंगर पार करके राह पकड़ता है। इतने में उस जाले के नीचे उसकी नजर पहुंची। बाघ को देखकर घोड़े के पैर बंध जाएं, वैसे ही यह दृश्य देखकर कालू सकते में आ गया। दो-चार क्षण तक तो न पैर आगे बढ़े, न पीछे। अरे, नजर भी वहां से नहीं हटती थी...पर तभी रीढ़ की हड्डी सचेत हुई। खरगोश की तरह वह पासवाले छोटे झंखाड़ के पीछे छिप गया। मन को भी समझा रहा था, 'ना ना, वह तो डाइन थी। अरे भाई, औरत थी, पर जिसे खा रही थी वह तो खरगोश ही था...'

खरगोश की तरह भागते छटकते कालू ने अपनी राह तक पहुंचकर ही चैन पाया।

पर कालू का कंपन तो अभी तक दूर नहीं हुआ था। हृदय जोरों से धड़क रहा था, जबकि भेजा तो सुन्न ही हो गया था। अपनी ही आंखों देखने पर भी वह अपने से बार-बार पूछा करता था, 'क्या यह सच है? ना ना, सपना है। मैं या तो सो रहा हूं या फिर—ऐसा भी हो सकता है कभी!...'

और सचमुच कालू का दिमाग घूम जाता, पर तभी सामने से आते वेचात, कोदर आदि को देखा। कालू की बावरी आंखें उनकी आवाज सुनकर कुछ ठिकाने आईं। होश आते ही वह जमीन पर बैठ गया। बैठते ही रोने लगा...जैसे आज ही मां-बाप मर गए हों।

वे मित्र बढ़ती घबराहट के साथ पूछते रहे, 'क्या हुआ, कालू? बात तो बता? अबे कहीं चोट तो नहीं पहुंची है न?'...तो भगा जैसे ने तो उल्टी ही बात बिठा दी, 'अबे भाई, उसके ढोर गए इस पर रो रहा है। क्यों नाहक माथापच्ची कर रहे हो?'

हृदय हलका होने पर कालू ने ऊपर देखा। वे आंखें तो अब भी आंसू भरी थीं, चेहरे से भी रुदन गया नहीं था और कालू की इस क्षण की स्थिति देखकर तो लग रहा था कि इस जनम में रोना चुकेगा नहीं।

खड़े होते हुए उसने उन लोगों को इतना ही जवाब दिया, 'कुछ नहीं है भाई, पर भूख...' स्वगत बोला, 'ना ना! भूख तो अभी देखी ही नहीं। यह तो देखते हैं भूखे आदमी!...आदमी भी नहीं, भूखे भूतों का समूह!' और फिर से उसकी आंखें टप-टप करती चू पड़ीं।...

कोदर-भगा तो डर गए, 'यह पागल तो नहीं हो गया?'...वरना कालू जैसे की आंखों में आंसू नहीं आ सकते!

32

भनक

कालू तथा वे युवक अभी गांव पहुंचे भी नहीं थे कि इतने में सारे गांव में सनसनी फैल गई। कोई कहता था कि 'घायल कालू के कपड़े लहू से तर हैं'...कोई कहता, 'हाथ फट गया है,' कोई इसका विरोध करते कहता, 'वह सब तो गप है; मैं अपनी नजर से देखकर आ रहा हूं। पर इतनी बात सही है कि अलखा गामेती ने कालू को यह संदेश पहुंचाने के लिए ही जिंदा छुड़वाया है कि ये भूखे कंगाल अब मेरे वश में नहीं, सो चेतना हो तो चेत जाना रे भाई...।'

इस बात में जरूर कुछ तथ्य था। गांव में प्रवेश करते हुए अलग होते उन युवकों से कालू ने कहा था, 'अगर जिंदा रहना है तो बोरिया-बिस्तर बांधने लगो कल से, नहीं जो मरता मारेगा और डूबता डुबाएगा, भाई!'

एक तो चैत की अंधेरी रात और तिस पर ये समाचार! इन समाचारों के कारण या फिर खाली हो चुके अड़ारों (सिर्फ बैल और किसी के घर दुधार भैंस—इतना ही बचा था) के कारण—लोगों को घर में डर लगने लगा। कालू के मुंह से भी भूतों के समूह का वर्णन सुनने वालों को तो भनक तक सुनाई देती थी जैसे उस खाली अड़ार के अंधेरे में वे कंकाल 'खांऊ खांऊ' करते 'हाउसोई' कूट रहे हों!

लगभग सारा गांव कालू से बात पूछने आया। जो सुन चुके थे वे युवक भी आ बैठे। कालू का छोटा दालान और बड़ा आंगन आदमियों से चूल्हे पर किलबिलाती खिचड़ी की तरह भर गया। सभी की इच्छा थी कालू के आगे बैठकर सवाल पूछने की, आमने-सामने बात सुनने की। और इसीलिए तो आगे आने की खींचातानी होती रही न? कुछ स्त्रियां तो दूर से ही चीखकर कहती थीं, 'कालू भाई, जरा हमें तो बात बताइए!'

कालू ने जन्म लेकर सभी शब्द नहीं सुने थे, फिर प्रवचन या भाषण तो समझता ही कैसे? पर उसे समझना ही पड़ा। वह खाट से उठकर, 'अरे भाई, मुझे तो किसे कहना और किसे न कहना?' कहता हुआ वह आलतो के आगे आया। अभी तो ठीक से खड़ा भी नहीं हुआ कि आवाज आई, 'ना, इस ओर, ठेठ आंगन में आइए।'

इस वक्त भी रामा को ठिठोली सूझी, सिर पर चारपाई लेकर 'हटो...हटो' करता

आ पहुंचा। आंगन के बीच चारपाई बिछाकर दौड़ा, 'ठहर जाना, कालू भाई!'

और रामा को बड़े टोकरे के साथ आता देखकर तो बहुतों को हंसी आ गई। अब की कुछ तो चिढ़ गए, 'निगोड़ा यों भांड की तरह क्या करता है।'

पर जब परमा ने खाट पर टोकरा औंधा रखकर 'चढ़ जा कालू भाई इस पर' कहा तब तो वे चिढ़नेवाले भी बोल उठे, 'अच्छा किया, हां, रामा भाई!'

कालू को भी ठीक लगा। टोकरे पर खड़ा हो गया। और सभी, सिर पर जगमगाते आसमान के उजाले में कालू को देवदूत की तरह देखने लगे।

परंतु सच पूछें तो कालू देवदूत न था, वह भूख से छटपटाती उस भूतावली का दूत था!

कालू चढ़ तो गया पर क्षण भर के लिए उलझता रहा, 'मुझे क्या कहना है? इन लोगों को क्या सुनना है?' और दूसरे ही क्षण पूछा, 'लीजिए भाई, आप कहते थे सो आ गया। कहिए, क्या पूछते थे?'

नाथा की पत्नी कंकू बोल उठी, 'हमें जरा बात तो कहिए! आप धाड़ में गए थे सो।'

'इसमें बताने जैसा क्या है, भाभी?' इतना कहते ही कालू की नजर के आगे, वे मरे ढोरों से लिपटे मानव गिद्ध, कच्चे मांस के लौंदे और लहू की घूंट...नाचने लगी। गहरी सांस के साथ बोल उठा, 'मैं तो भगवान से कहता हूं कि अंधापन देना पर यह तो सात जनम में भी कभी मत दिखाना! मैंने अपनी आंखों अपने ढोर कटते देखे और उन कटे ढोरों पर, आपको क्या बताऊं पर मानो, हमारे यहां मरे ढोरों पर आते हैं वैसे चील और गिद्ध ही समझ लीजिए! वहीं गूंजना और वहीं खींचातानी! वैसे ही लड़ना और वैसे ही— ठीक वही दृश्य!' कालू की आवाज कुछ मंद हो गई, आंखों के कोने भी गीले हो गए। गला साफ करते हुए आगे कहा, 'हमने तो जगाते हुए श्मशान नहीं देखे, पर लोग कहते हैं कि श्मशान जगाया जाता है तब बबरा भूत आता है और उसके पीछे भूतों के झुंड उमड़ते हैं— सूखे बाल और कंकाल देह, 'खाऊं खाऊं' की पुकार लगाते हुए!'

कालू ने फिर गला साफ किया। फिर से सांस ली, 'ठीक वही, पर भाई! इसमें एक बबरे की ही कमी थी।'

रामा बोल उठा, 'वही तो दुख की बात है न! बबरा होता तो बस में रखता पर ये तो— बिना धनी के जुआ सूना!'

'सच बात है! सच बात बताई, रामा!' कासम घांची बोल उठा। क्रोध से जलता खड़ा हो गया। हाथ हिलाते-हिलाते कहने लगा, 'जिसके सहारे नाम जपते थे और मसान जगाते थे वह बबरा— हमारे ठाकुर और दरबार तो महल में ठाट-बाट से टहलते हैं, सोने-रूपे के पलंग पर चढ़कर मजेदार हुक्के पीते हैं और मशरू के गद्दों पर मौज उड़ाते हैं, और यह कालू कहता है इसमें तनिक भी भूल नहीं। वे बिना धनी के

जुए— ढोर तो दौड़ते ले गए और अब आई है घर लूटने की बारी। चेतना हो तो चेत जाना। एक, दो और तीन दिन में तो खलास!' और दालान में लौटते हुए कहा, 'फिर कहोगे कि कहा नहीं!'

क्षण-दो क्षण तो ऐसी शांति छा गई कि शंका होने लगी, ये सब मनुष्य खड़े-खड़े सूख तो नहीं गए?

कालू उतरकर दालान में जा बैठा। और फिर खांसी, छींक वगैरह की कुल-बुलाहट भी हुई। एक-दो जने बोल उठे, 'घर लूट लेंगे तो जिसके घर में कुछ होगा उसे ही फिक्र है न?'

दो-चार जने हुंकारी भर उठे, हां-हां! तुम्हारे-मेरे जैसे को तो बोरिया बांधकर क्या ले जाना था? ये एक-एक जून के दाने होंगे सो तो लुट जाने तक पेट में ठिकाने कर देंगे।'

'बात तो सही है। बोरिया बांधकर पराई धरती पर देह छोड़ने के बजाय घर की एकपलिया क्या बुरी? रामा भी उन लोगों की पांत में जा बैठा...और ऐसा करते-करते तो करीब आधे गांव ने अपनी दशा का राज खोल दिया। 'रामा भाई का कहना गलत नहीं था। डाका डालकर दो-दो मन दाने होंगे सो भले ही न ले जाएं। यों भी आधे तो हम मर चुके हैं और आधे जिंदा हैं तो यों— पंद्रह दिन बाद में मरने के बजाय भले आज ही मर जाएं।'

तो वेचात, भगा और नाना जैसे कुछ अच्छी स्थिति वाले भी गांव छोड़कर जाने के खिलाफ थे। नाना ने कहा, 'अरे हम सब साथ होंगे तो उन भीलों की मां ने सवा सेर सोंठ नहीं खाई कि गांव में आकर लूट ले जाएं!'

'हांर्र्रे! ताकत क्या है उन भीलों की!' वेचात तो मानो अभी उस धाड़ को लौट ही रहा हो जैसे।

'तब यही तय कीजिए।' रणछोड़ मुखिया का मुरझाया हुआ मुंह कुछ सतेज हुआ।

जबकि कासम वांचो भी खुश हो गया, 'हां, ऐसी हिम्मत है तो कौन इनकार करता है?' और फिर तो रणछोड़ मुखिया जैसे लोग गिनती लगाने बैठे, 'बोरिया बांधकर चले और अगर राह में ही भील मिल गए तो क्या करेंगे? कैसे मान लिया कि शेरपुर जैसे बड़े गांव नहीं लुट जाएंगे? इसके बजाय यहां घर में थोड़ा-सा कुछ छिपा तो रखेंगे।'

कालू चुप न रह पाया, 'आप सबकी इच्छा न हो तो जबरन बोरिये नहीं बांधने हैं। पर बाद में आप कहेंगे कि कहा नहीं! और अब भी मैं तो कहता हूं कि मुकाबला करने की और खाली पेट पड़े रहने की सारी बातें ठंडे पहर की गप ही मानना। ऐसी बातें करने वालों ने वैसे झुंड नहीं देखे जैसे आज मैंने देखे हैं।' कालू के अंग और आवाज भी कांप उठी। 'मैं भी सोचता हूं कि इतने आदमी आए कहां से? सो तो डूंगर ब्याहे या आकाश फटे?'

क्षण-भर रुककर आगे बोला, 'पर भाई, डूंगर भी नहीं ब्याहे और आकाश भी

नहीं फटा। भूख के मारे डूंगरों से बहकर हमारी इस साहूकारी आबादी के तट में आए हैं...और आ रहे हैं! और याद रखना, इने-गिने दिनों में नदी तट के डूंगर भौंरों से भर न जाएं— एक-एक डूंगर शहद के छत्ते-सा न दिखे तो मेरे नाम पर थूकना।' और हुक्के के साथ घर में पैठते कहा, 'अभी तो मैं कुछ नहीं कहता।'

'झुंड की बात तो हम भी मानते हैं पर आकर अनाज ले जाएंगे, आदमियों को तो नहीं खा जाएंगे न?' रामा ने कहा।

हुक्का भरते-भरते कालू बाहर झपटा, चूल्हे से लिया अंगारा चिमटे में ही रह गया। रामा की ओर बढ़ता देख लोगों को शंका हुई, जान-बूझकर जलाने ही जा रहा है क्या? कालू की सूरत और आवाज भी वैसी ही थी, 'आदमी को खा जाएंगे आदमी को!...कच्चे-ही-कच्चे काट खाएंगे। तुझे अभी मालूम नहीं...गांव में जो बुड्ढे हों उनसे जाकर पूछ आ, कहना— कभी आदमी ने आदमी को खाया हो, यह सुना है?...अरे सो भी सुना होगा शायद, पर पूछना कि आदमी और उसमें भी मां, पेट के जायों को खाती है?'

कालू ने पलभर रुककर आसपास देखा, 'कोई नहीं कहेगा कि मैंने सुना है। और सुना है, यह कहेगा, तो हम नहीं मानेंगे। पर याद रखना, इस छप्पनिए में सुनने को और मुझ जैसे अभागे को तो देखने को भी मिलेगा...सो लाख बात की एक बात।' और पीट फेरते हुए कहा, 'तो भी न मानो तो भुगत लेना!'

और फिर से शांति छा गई।

रणछोड़ मुखिया बोलने लगे, 'तो मिलकर सोच लो।'

'यह मिले हुए तो हैं ही न? यह एक-एक आदमी जो घर की रखवाली के लिए रुक रहा है उन्हें भी बुला लेना है?' रामा ने कहा।

इसके साथ ही लोगों को खयाल आया, 'हाय-हाय रे बाप! मेरे घर तो कोई नहीं!'

'मैं तो ठीक से दरवाजे की सांकल चढ़ाने भी नहीं रुकी।' दूसरी बोली।

पर पुरुष तो सभी यहां थे। स्त्रियां अकेली जातीं तो सही, पर फिर घर में कैसे रह पातीं?

आखिर हरेक मुहल्ले के दो-दो तीन-तीन पुरुषों के साथ स्त्री-बच्चों को भेज दिया गया। और लोग सोचने लगे कि क्या करना चाहिए? दो पक्ष स्पष्ट थे : एक कालू का, दूसरा रणछोड़-नाना का।

पहले पक्ष में स्वार्थ जैसा कुछ नहीं था, जबकि दूसरे पक्ष में स्वार्थ था— जिम्मेदारी भी सही। कल उठकर राज्य पूछने लगे कि तूने मुखिया होकर गांव क्यों उजाड़ा? तो? पर यह भी ऊपर-ऊपर से था। वरना भीतर से तो यही था कि 'कालिए का कहा माना जाए?'

पर अगर नाना-रणछोड़ ने गहरे उतरकर देखा होता तो इसमें कालू का किया हुआ कुछ न था। 'इस समय तो मैंने जो कहने लायक था, कह दिया, अब सोच लो

जो सोचना हो। हम तो वहां जहां गांव।' कहकर वह हुक्का-तंबाकू में व्यस्त हो गया।

और पंच ने भी एक ही एक बात उलट-पुलटकर फेरना जारी रखा...उठने की तैयारी करते भी वेचात की जाति के दस-बारह आदमियों की कामचलाऊ चौकी नियुक्त की। गांव खाली करने के बारे में तो कुछ तय नहीं था। रणछोड़ मुखिया ने कासम से कहा, 'आपमें से कोई दो आदमी शेरपुर तो हो आइए। ठहरने का ठांव-ठिकाना तो देख लीजिए।' जो चौकी नियुक्त की वह भी कालू को पसंद नहीं थी। पर करता क्या? उसकी बात का राज कोई समझा नहीं, जबकि खुलेआम विरोध भी नहीं था। पर इस शेरपुर की बात में तो उसने स्पष्ट विरोध दिखाया, 'ना, अगर जाना है तो पश्चिम की ओर, नहीं तो जहां हैं वहीं ठीक हैं।' और उसने कारण के रूप में पूर्व और पश्चिम की आबादी तथा राज्य की व्यवस्था का फ़र्क कह सुनाया, 'ऐसे वक्त में तो ठाकुर की उड़न-घोड़ी भी उड़ जाएगी!'

रणछोड़ मुखिया ने भी सख्ती से कहा, 'तो डेगडिया जाकर देख आओ।' और कंधे पर पिछौरी रखकर खड़ा हुआ।

लोगों ने भी, न जाने वतन छोड़ना पड़ता था इसलिए या फिर गांव में गाड़ियां कम थीं इसलिए या फिर घर में से बाहर क्या ले जाएं और क्या न ले जाएं इस द्विविधा में पड़ना पसंद न था इसलिए, जो भी हो, पर सभी ने, खुद कासम ने भी बिछुड़ते समय इतना ही कहा, 'जाओ भाई, तब कल दो आदमी डेगडिया।'

पर डेगडिया तो सो गया और सभी घर में घुसकर किवाड़ बंद करके काम करने लगे। कोई औरतों को जगाकर पैर के रूप के कड़े निकालने में रत हुआ तो कोई चूड़ियों की पट्टियां उखाड़ने लगा। कालू पिछले कमरे में दीवार से पांच-छह हाथ जगह रखकर कूड़े-रहेंठे रखकर दीवार की नई परत बना रहा था कि नाना-रणछोड़ पिटारा खोलकर जेवर निकालकर बुढ़िया माली की गोद में रख रहा था। कोदर भी घूरे से गोबर लाकर, उसमें मुट्ठी-मुट्ठी दाने रखकर उपले बनाने में मशगूल था...

दिन उगा। दो जाट जने मिलकर हुक्के को गुड़गुड़ाते थे, पर कोई किसी से अपनी कला के बारे में कुछ नहीं कहता था।

केवल कालू ने—सो भी कोदर, रामा तथा भगा इन तीनों को ही बताया, 'अबे, पिछले कमरे में दीवार की नई परतें बनाओ, नई परत...वक्त आने पर भागना पड़ा तो भी उसमें बंधे बैल सलामत रह जाएंगे।'

और इस तरह दूसरी रात दूसरी चतुराई! और सारे गांव की अपेक्षा बूढ़ी माली के घर—जिसके पास ज्यादा उसकी फिक्र थी, इस हिसाब से ज्यादा बड़ी घबराहट थी। 'अपनी रांड़ों के जेवर उतार लो, निगोड़े...ज्यादा तो ये जेवर रखकर ही आग जलाई है...लाओ वह सब मेरे पास'...और गोद में इकट्ठा किया हुआ आधा मन जेवर देखकर सदा खुशी बढ़ जाती थी, पर आज इन्हीं के कारण दम-ब-दम सेर-सेर लू जल रहा था।

'लाइए न मां, वह सब मैं कहीं गाड़ दूं।' नाना ने कहा। बुढ़िया चिढ़ गई, 'जा-जा निगोड़े गाड़ देने वाले।' रणछोड़ बोल उठा, 'अबे भाई, तुम मुझे दो, सो तो मैं—जो करूंगा ठीक ही करूंगा।' सोचा था दीवार और आदमियों के बीच— ओसारी में एक-एक, दो-दो जेवर अलग-अलग गाड़कर रख दें।

पर बुढ़िया ने तो घुड़क दिया, 'सो तो मुझे सब कुछ मालूम है, निगोड़े! तुम सब एक ओर हट जाओ न! ये बाल यों सफेद नहीं हुए हैं!' बुढ़िया ने सीख की गिरह बांध रखी थी। इसी कारण जेवर भी गठरी में बांध लिए न? वह फिर गठरी के साथ खाट में जा बैठी...

और फिर तो खाना भी इसी गठरीवाली खाट के पास रखती और कहीं बाहर जाती तब भी गठरी को गुदड़ी के नीचे रखकर और ऊपर भांति-भांति के चिह्न रखकर नाना को पहरे पर बिठाकर ही।

बहुएं तो कहती भी थीं, 'शायद छाती से बांधकर ले जानेवाली हैं!'

जबकि खोड़ी कुछ और ही मानती थी— कहती थी, 'यह तो मरेगी तब भी सांपिन होगी। पहनने वालों के प्राण ही ले लेने वाली है...'

सांपिन हो न हो सो तो राम जाने, पर बुढ़िया का जी जितना अपनी देह में नहीं था, उतना उन जेवरों की गठरी में था। इसी से चौकस थी।

पर माजी का ही क्यों, कादर की मां का जी भी उन दो दुधार भैंसों में था। राना का जी बच्चों में था जब कि कालू जैसे का बैलों में—

पर रात होती कि सभी का जी गांव के 'तोरण' में ही जा बैठता। आवाजें आतीं, 'वह बंदूक फूटी' वे किलकारियां उठीं...वह कुछ काला...बादल-सा दिखा...!'

और इस तरह इस गांव—इलाके में लोग खाना-पीना तो भूल गए थे, पर सोना भी भूल गए। सुबह होते पहला मुर्गा बोलता तब ही लोगों को यकीन होता और बोल उठते, 'आज का दिन और जीने को मिल गया।'

33

दुख की चक्की

एक तो गरमियों का दिन, वह भी बिना कामकाज का और सिर पर लटकती तलवार! दिन बीतता ही नहीं था। सामने तो कहा भी सही, 'इस बेचारे दिन के पैर ही टूट गए हैं भूख से, कि चल ही नहीं पाता!

धाड़ में ढोर खोने और कालू के द्वारा छाए डूंगरों की बात सुनने के बाद से तो लोगों की नजर दिन-रात नदी तट की ओर ही लगी रहती थी। तभी दूर से समाचार आए, 'एक बनजारे के टांड़ लुट गए हैं।...'

परंतु दूर की बात क्या! दूसरी ही रात पड़ोस के गांव में चीख-पुकार मच गई, ढोल बजे और बंदूकें छूटीं, एक-दूसरे को चुनौतियां दी गईं और घड़ी-भर में भागा हुआ गांव यहां आ पहुंचा। कालू के गांववाले इन लोगों को आसरा देते या सामनेवाले उस गांव में घूमती मशालें और उजाले दिखाती छायाओं को देखकर भागना शुरू करते?...

सभी को भरोसा था, 'वहां से निकले झुंड जरूर इस ओर मुड़ेंगे! बाघ ने लहू चख लिया भाई, अब क्या?'

लेकिन हरेक टोली के जवान तलवार, तीर-कमठे लेकर तैयार थे, फिर सोचते थे, 'नाहक मरना नहीं है, मुकाबला कर पाएंगे तो ही लड़ेंगे।'

जबकि कालू के याद के खंभे के अरमान तो राजू ने ही गला दिए थे और 'मर्द का धर्म' उस प्रेत-समूह ने पोंछ डाला था, 'एक तो भगवान ने इन्हें मारा, तिस पर हम भी मारें! भूख बड़ी भोंडी है भाई, आदमी भोंडा नहीं!' इस विचार के साथ ही वह कहता, 'मेरा तो नियम है, मुझे मारने आएगा तो ही हाथ उठाऊंगा, नहीं तो कभी नहीं.. भले ही सारा गांव लुट जाए!'

एक रात गांव के तोरण के पास बैठी वेचात की मंडली से भी उसने कहा, 'अबे, तुम कितनों को मार सकोगे? और क्या तुम्हें भी कोई गुस्से से नहीं मारेगा?...'

'मारेगा मारना होगा तो,' वेचात ने कहा, 'जीकर भी कौन-सा राज्य करना है?' पर वेचात के लिए इसी तरह बात किए बिना कोई और चारा नहीं था, क्योंकि हरेक घर से उसने दस-दस सेर अनाज लिया था। फिर यों बहादुरी दिखाकर उसे पचाना तो

पड़ता ही न? और बाकी दस सेर तो अभी पाने थे।

पर कालू कहता था, 'मामा का घर कितनी दूर, दीया जले उतनी दूर!' तीसरी ही रात गांव की उत्तर दिशा में नदी के इस ओर लंबी नली वाली जामगी बंदूक फूटी, 'हड़ुंम्-हड़ुंम्...' एक नहीं, तीन-तीन आवाजें।

वे लोग आ पहुंचे। अभी हुक्का भरकर पी लेने का समय बाकी था। परंतु गांव में कंपकंपी फैल गई। कहां भागूं और किस ओर न भागूं! सभी बावरे हो गए थे। स्त्री जो पूछती, पुरुष नहीं समझता था और पुरुष जो चेतावनी देता उसे स्त्री समझ नहीं पाती थी। बच्चों की तो बीच में गिनती ही न थी। मानव जीवन की वह बेलें इस समय तो भार रूप हो गई थीं।...

तोरण पर खड़े चौकीदारों में से वेचात बोल उठा, 'लड़ो तब तुम्हारे बाप का कपाल। चेत जाओ चेतना हो तो, और हो जाओ तितर-बितर। हा-हो तो करनी पड़ेगी नहीं तो हरेक घर से जो दस सेर दाने लेने बाकी हैं वे भी कोई नहीं देगा। पर देखना किसी को मारना मत, नहीं तो भौंरांवाली गति होगी। अगर एक को मारा तो सभी तुम्हारी ओर मुड़ आएंगे।'

और सचमुच उस अभी उगे चतुर्थी के चंद्रमा की धीमी चांदनी में ऐसा लग रह था जैसे मधुमक्खियों की टोलियां आ रही हों! वैसी ही भन्नाहट और वैसी ही तेजी। वे ज्यों-ज्यों नजदीक आते थे त्यों-त्यों भांति-भांति की आवाजें उठती थीं। कुछ मदमस्त रणवीर-सी तो कुछ रुदन-भरी बिलबिलाहट-सी— भयंकर पीड़ा से निकले आर्तनाद...।

'हुडुम!' तोरण के पासवाले कुएं के आगे फिर एक आवाज।

कालू ने भली कंकू तथा मुहल्ले के अन्य स्त्री-बालकों को बड़ी युक्ति से बिठा रखा था, 'अभी नहीं, मैं कहूं तब ही उठना और उस बाड़ और घूर के पीछे छिप जाना। देखना, डरकर कहीं दूर मत जाना'...पर खलिहान में बैठे ये स्त्री-बालक इस आवाज के साथ पक्षियों की तरह फड़फड़ाने लगे।

सारे गांव की यही दशा थी। पति ने पत्नी की चिंता न की तो पत्नी ने बच्चे छोड़ दिए। दूध पीते बालकों को छोड़कर भागने वाली माताएं भी इनमें थीं...कोई किसी का नहीं था। कोई किसी को पहचानता न था...

जबकि मुखिया के घर तो धाड़ के आने से पहले ही सभी लुट गए थे, बुड्ढी माली जेवर की गठरी लेकर न जाने किस क्षण खिसक गई और कहां गई, इसका पता ही नहीं चला। नाना की बहू खोड़ी का अच्छा पैर भी उस घबराहट ने तोड़ डाला। वह मुहल्ले के बीच कुहराम मचाती और छाती कूटती पड़ी थी। बुढ़िया को खोजने रणछोड़-नाना भी आखिरी घड़ी में भागे— भागते-भागते भी दोनों झगड़ रहे थे। रणछोड़ मुखिया कह रहा था, 'हाय हाय रे बाप! मेरा कहां सिर फिरा कि गहने बुढ़िया के सुपुर्द कर दिए! ऐसे में उसे खोजूं भी कहां?'

नाना तो रणछोड़ को पीटने झपट रहा था, 'देखा अब! मैंने कहा कि ला कहीं

गाड़ दूं, पर तू और जी की प्यासी वह बुढ़िया...ठीक है! अभी तो कुछ नहीं कहता, पर देखना, गहने गए तो तेरे क्या हाल करता हूं, बुढ़िया को तो काट ही डालूंगा, हां...'

परंतु वास्तव में भाग जाने वालों से भी भगाने वाले ही ज्यादा पागल थे। कहां घुसना और कहां न घुसना? इस घर में खाना मिलेगा या उसमें? पहले कोठियां तोड़े या कुठले? कुछ तो मरने से पहले ही मातमपुरसी करने लगे, गठरी बांधने के लिए कपड़े बिछा रहे थे...

और यों जिसको जो सूझा उसने वही किया। कोई कोठियां तोड़ने मुड़ा तो कोई टोकरा, छबड़ा, कपड़ा जो हाथ लगा उसी में सब भरने लगा, कोई वह भरा टोकरा खींच लेने के लिए उसके ऊपर ही खड़ा रहा...उन कुठलों से उलझने वालों की हालत भी वैसी ही थी, दूध नहीं तो दही, और धान्य नहीं तो सानी। अरे कुछ लोगों को तो धान्य और सानी का भेद ही मालूम न हुआ। पर मुंह में डाल देने वाला तो उसे लेकर भाग गया। कोई-कोई तो हाथ लगी चीज छोड़कर अधिक लेने की लालसा में जो कुछ पास में था, वह भी गंवा देता था।

यहां भी लड़कों की वही दशा थी। खींचातानी में या मुंह में भरते वक्त जो जमीन पर गिर गया, उसके ही वे मालिक थे। सो भी सिर के बदले में इतना पाने जैसा था। जमीन से उठाते समय गरदन पर किसी का पैर पड़ा तो खलास।

कालू का मुहल्ला, गांव की पश्चिम दिशा में, आखिरी था। कालू को नीम के नीचे खड़ा देख रामा, नाथा तथा मुहल्ले के दो दूसरे जवान भी भागने के बजाय उसके पास जाकर खड़े हो गए।

'क्या सोचा है, कालू भाई!' रामा ने पूछा।

'सोचा तो,' कालू हंसा, 'बहुत है, रामा! एक इच्छा ऐसी होती है कि मुकाबला करें, तो एक विचार यह भी है कि हमारे पास कुछ भी तो नहीं, फिर नाहक जी जोखिम में क्यों लें?...'

'पर तेरे पास तो कोई मंगलियां है सो शायद तू नहीं लुटेगा, देख तो सही वह तो ऐसा है कि कुरता-धोती उतारकर उस झुंड में मिल जाए। तू देख तो उसे, वह पाड़ पर किस तरह बैठा है?...'

मंगल ने देखा कि वे मशालें इसी ओर आ रही हैं।

तभी नाथा बोल उठा, 'ये इसी ओर बीच में तो नहीं फंस जाएंगे, कालू?' कहते-कहते नाथा जोर से भागा, उसके पीछे वे दो जवान भी। रामा ने धोती ऊपर उठाते हुए कहा, 'क्या विचार है, कालू?'

'तू जा, मैं आता हूं बाद में।'

और मामा भी खिसक गया। जबकि कालू ने तो भागने के बजाय हाथ में रखी कमान नीम के तने से टेककर रख दी। कुरता और साफा उतारकर उन पर छुरी वाली

डोरी लपेट ली। पहनी हुई धोती का भी लंगोटी की तरह कांछ लगाया। फिर दूसरे ही क्षण तीर-कमान लेकर बंदर की तरह नीम के पेड़ पर चढ़ गया और चौक में जा बैठा।

मुहल्ले के दोनों ओर से झुंड आए। जिसे जहां सूझा वह वहीं घुस गया। बचे हुए दस जने कालू के घर की ओर मुड़े।

कालू ने किवाड़ खुले ही रखे थे। मंगल पास में पाड़ पर सिर्फ लंगोटी पहने बैठा था। झुंड को देखकर वह रोने लगा। रोते-रोते कह रहा था, 'कुछ नहीं है भाई, घर में तो! मैं ही भूखों मरता हूं और...मुझे ले जाओगे साथ?'

पर कालू की यह चाल व्यर्थ गई। कौन सुनता? वह टोली सीधे घर में ही जा पहुंची।

तब कालू का खून गरम हो आया, 'उतरूं या न उतरूं? चुनौती दूं या जाने दूं?' फिक्र तो सिर्फ उस परत-दीवार में बांधे हुए बैलों की ही थी, और कुछ कर नहीं सकते वे, सिवा खाली कोठी-कुठलों के तोड़ने-फोड़ने के। वरना अनाज तो कब से ठिकाने कर दिया था—गठरियां बांधकर घूरे में अलग-अलग जगह गाड़ आया था। कपड़ों की गठरी नीम की ऊपरी डाल से बांध दी थी। चूल्हा-पनसाल भी ऐसे ही बना रखे थे मानो महीनों से घर खाली हो!

पर इन सबसे भी, 'मेरा! वाला पटेल के बेटे का घर लुटे?' वह गुमान ही ज्यादा था। 'और सो भी मेरे देखते?'...कालू ने वह छुरी म्यान में ढीली करके कमरे में रखी और तीर-कमान के साथ धीरे से उतर आया, अपने घर की ओर जा रही दूसरी टोलियों के साथ वह भी गया।

मंगल अब भी पाड़ पर बैठा था। वैसे कालू ने तो उसे अनेक चाबियां सिखाई थीं. पर इस भूतावली को देखकर ही मंगल के होश उड़ गए थे, फिर अक्ल लड़ाने की तो बात ही दूर।

'क्यों मंगल?' कालू के आगे चलता एक आदमी मंगल की ओर मुड़ा। कालू ने उसे पहचान लिया। वह कनका था। पर मंगल मामा को पहचान न पाया...पहचान गया तब भी ताकता रहा, मानो समझता ही न हो। कहां भैंसे-सा कनका मामा और कहां यह मुरदा!

मामा ने भानजे को छाती से लगाया और न जाने क्यों मंगल चिल्लाकर रो पड़ा।

कालू मंगल पर चिढ़ गया। 'इस लड़के को क्या दुख भुगतना पड़ा है कि—' पर चिढ़ जाने का कारण तो कनका का रुक जाना था। मामा-भानजे के मिलन के बीच उसे आना ही पड़ा। कनका से कान में कहा, 'कनकाभाई, एक बार तू घर में चल! इधर-उधर देखकर कह दे, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है। और इस झुंड को यहां से लेकर दूसरी जगह जा, नहीं तो सबसे पहले इस भानजे के लिए मरने का वक्त आ जाएगा!'

कनका समझ गया और घर में गया। पीछे-पीछे कालू भी टोली में मिल गया।

कनका ने 'यहां होगा बे...यहां होगा बे' कहते-कहते कमठा किसी कोठी में

डालकर देख लिया। वहां से पिछले कमरे में गया। पांच-सात स्त्री-लड़के भी साथ ही थे, साथ में कालू भी...

और पिछले कमरे से निकलते हुए कनका ने चिल्लाकर कहा, 'अबे कुछ नहीं है यहां तो, चलो उस घर, नहीं तो लुट जाएगा...चलो चलो...'

और वे बीस-पच्चीस आदमी, 'चलो बे चलो' बोलते-बोलते घर से बाहर निकल गए, साथ में कालू भी।

'भाई, एक कपड़ा तो देना पड़ेगा।' कनका ने कहा।

'कहां से दूं?' कालू को चिंता हुई, 'साला यह तो पहचानने वाला सिपाही थाने में ले जाएगा।'

'मैं थोड़े दाने का ढेर करके आया हूं बाड़ में, पर कैसे ले जाऊं?'

'हां तब ऐसा क्यों नहीं करता? ले जा मंगल की धोती, जा।'

कनका वह ले आया और सो भी लौटाने की शर्त पर।

'ये झुंड अब कब निकल जाएंगे, कनका भाई? ये तो साले लूटने के बजाय तोड़-फोड़ ज्यादा करते हैं।'

'बस तोरण जाकर बंदूक दागूं, इतनी ही देर है।' कहकर कनका इस धोती के साथ चलता बना। कालू भी। भय जैसा तो अब रहा ही न था। अलबत्ता घर की चिंता थी, पर वह भी गांव में टहल आने की। कनका के पीछे जाते झुंड में वह भी चलने लगा।

गांव में इन अर्धनग्न मनुष्यों का जैसे मेला लग रहा था। जबकि मशालें तो दिवाली जैसी थीं। इसके अलावा भी कालू देख रहा था, इसमें रोकने वाले कितने और डाकू हैं?

कनका को बंदूक दागने के लिए, उन झुडों को गांव से बाहर निकालने का संकेत सूचित करने के लिए गांव के तोरण की ओर रवाना करके वह अपने घर की ओर मुड़ा। अधीरता से बंदूक की आवाज की राह देख रहा था तभी एक टोली मशाल के साथ उसके घर की ओर मुड़ी। इस बार कालू को पिछले कमरे की टांड़ पर छिप जाना पड़ा। बैठे-बैठे उसने उस टोली को घर में आते और इधर-उधर कुछ तोड़फोड़ करते सुना। कुछ ही देर में कुछ मेहनत करती वह टोली घर से बाहर निकल रही है, ऐसा लग रहा था। तभी मंगल की आवाज सुनाई दी, 'ना, चक्की तो नहीं ले जाने दूंगा...मैं भी कनका मामा का भानजा हूं...आपस-आपस में बैर होगा, हां...' मंगल भी इन लोगों के पीछे-पीछे जाने लगा।

कालू बिल्ली की तरह टांड़ से उतर आया। सोच लिया था, 'अगर चक्की ले जाए, तो होना हो सो हो, पर...'

पर तभी उन लोगों ने मंगल की बात मान ली।

'तो तू हमारा भी भानजा है।' कहते हुए चक्की नाथा के घर के सामने छोड़कर

चले गए। मंगल चक्की का पाट उठा न पाने से उसके ऊपर बैठ गया।

कालू ने बाहर निकलकर देखा तो मुहल्ले में अब दो-चार मशालें ही थीं। तभी आवाज सुनाई दी, 'हुडुम्' और वे मशालें भी गांव के फाटक की ओर मुड़ने लगीं।

'पर यह क्या? बिना मशाल लिए दो छायाएं फिर यहां आ रही हैं?' छोटे चबूतरे पर बैठा कालू ऊबकर बड़बड़ाया।

'वहां तो कुछ नहीं छोड़ा।' मंगल ने कहा। कालू फिर उठा और दरवाजे के किवाड़ के पीछे छिपकर ताकने लगा।

वे छायाएं भी सीधे घर में आईं। एक के हाथ में खुली तलवार थी, दूसरी के हाथ खाली थे।

कालू तो उस तलवार वाली के दरवाजे के बीच ही दूसरी छाया की कलाई पकड़ते देख कांप उठा, 'साला मार डालने को लाया है क्या?'

पर तभी वह समझ गया, वह दूसरी छाया स्त्री थी...शरम के मारे कालू को अड़ार का कोना ही खोजना पड़ा!...

'हडुम्' दूसरी आवाज हुई...और तीसरी आवाज के बाद तो कोई नहीं कह सकता कि गांव में इतने मनुष्य आए थे कि धरती दनदना उठे। पीछा करके बेकार उछलकूद करते वे चौकीदार भी लौट आए। कालू से न रहा गया तो कह दिया, 'विदाई देने गए थे क्या, वेचात?...'

काफी देर के बाद नदी के सामने वाले किनारे पर चढ़ती मशालें दीखीं। तोरण से आकर खड़े गांव वालों में से कालू ने कहा, 'चौकस, कलाल की कलवरिया लूटने ही मुड़े होंगे— शराब पीने।'

रामा ने कहा, 'अरे चोरी का हिस्सा ..'

पर कालू की बात सही निकली।

नदी के सामने वाले किनारे दूर-दूर वे मशालें जा रही थीं। गीत की गहरी, मधुर और मस्त आवाज— अनेक आवाजों से एक बनकर— डूंगर, और आसमान को भी गुंजायमान कर रही थी—

'भाई या सपने ते काल हे पड़्ज्यो रे अलखा भरोड़
भूखज्ये दारूड़ो पीछो हे रे
मय तो गांमटज्यों वालयो है र अलखा भरोड़
मय तो कुण हे रोकणवालो रे'

(भाई, यह छप्पन का अकाल पड़ा है। हे, अलखा भरोड़! मैंने भूख के कारण शराब पी है। मैंने तो तय कर लिया है। हे अलखा भरोड़, कौन है मुझे रोकने वाला!)

गीत के सभी शब्द तो समझ में नहीं आते थे, पर उन लोगों का आनंद तो स्पष्ट पहचाना जा सकता था। और मस्ती में बार-बार उठती किलकारियां पांच-पांच कोस के सिवान भी गुंजायमान थीं : 'टर्र्र्र्र्...ई ई...'

तोरण से लौटे गांववाले जब घर के हाल देख रहे थे तो उस वक्त कालू छोटे चबूतरे पर बैठकर हुक्का गुडगुड़ा रहा था, उन किलकारियों को सुनकर वह मुस्कराए बिना रह न पाया। बोला, 'बापू कहते थे उसमें तनिक भी भूल नहीं : जैसा डूंगर वैसे ही भील!'...दावानल के बाद भी पनपते देर नहीं, घोर गरमी में भी डोलती रहती है और चौमासे की झाड़ियों में तो इन्हें शराब का नशा आ जाता है। वह दो-चार क्षण के बाद बड़बड़ाया, 'दुख को पीसकर खा जानेवाली तो एक यह भील जाति ही है दुनिया में!' और ऐसे सिर हिलाता रहा मानो इस भील जाति पर खुश होकर बलि दी जा रही हो। डूंगरों में भी धंसती किलकारियों को वह सुनता रहा और...न जाने क्यों...प्रसन्न होता रहा।

34

माली की मृत्यु

ऐसा लग रहा था जैसे गांव से किसी दुश्मन की सेना गुजर चुकी हो। चूल्हे, कोठियां और कुठले तोड़ डाले गए थे। दूध-दही के बर्तन, रसोई की हंडियों और घड़े-हंडे के भी ठीकरे ही ठीकरे थे। कहीं-कहीं तो परत-दीवार की शंका से दीवर के रहटे भी निकाल दिए गए थे। अनाज छिपाया होगा, इस खयाल से अड़ार और पिछले कमरों में गड्ढे बना डाले गए थे। वे इस तरह दो-चार जनों का अनाज ले भी गए थे। उस लूट से बची दुधार भैंसें, वे पड़वे और बैल वगैरह भी, जो हाथ लगे सो ले गए। किसी-किसी के घर से तो चक्की-मूसल—और घर के किवाड़ भी खींच गए थे।...सारे गांव में अगर कोई बचा था तो कालू जबकि सबसे ज्यादा नुकसान हुआ था रणछोड़ नाना के घर।

पिटारे तोड़ डाले गए थे। कुठले चूर-चूर हो गए थे। चार भैंसें दूधार थीं उन्हें भी पड़वों के साथ ले गए थे। घोड़ी भी गई और मूसल भी ले गए, फिर किवाड़, चक्की और तांबे-पीतल के बर्तन छोड़ जाने की तो बात ही कहां रही? लंगड़ी के बदन पर कपड़ों के नाम पर एक धागा भी नहीं रहने दिया। और वे आधा मन जेवर...बड़ा सवेरा होने आया, फिर भी खुद बुढ़िया माली का कहीं पता नहीं लग रहा था। घर के मचान देखे, घास के पूले गींज डाले। पिछले दरवाजे की बाड़ देखी और घूरे की खाद उलट-पुलट दी, पिछले खेतों में और टीलों तक गांव के जवान घूम आए, पर वहां बुढ़िया माली होती तो मिलती न?

घरवाले और गांववाले सभी सोच में पड़ गए : तब बुढ़िया गई कहां?

उजाला हुआ और फिर गांव के पंद्रह-बीस आदमी उसे खोजने निकले। इस बार तो कालू भी आ मिला था। उसने नाना को भी साथ रखा, 'चल तो उस सफेद पानी वाली दांती पर देख लें।'

'अरे, सफेद और काली सारी दांतियां देख ली हैं!' नाना ने तो आशा ही छोड़ दी थी।

'हां भाई, हां, पर—सोच कि जेवर लुट गए, बुढ़िया का क्या हुआ? तू चल तो सही मेरे साथ।'

कालू को दोनों ओर की चिंता थी। वह बुढ़िया को खोज निकाले और दुर्भाग्य से गहने नहीं मिलें तो वह उसी के जिम्मे पड़ जाएंगे, और देखने नहीं जाता तो भी लोगों को शंका होगी।

कालू को तो पूरी शंका थी कि बुढ़िया पिछले दरवाजे से भागकर सीधे टीले पर ही चढ़ गई होगी और खाइयों में छिप गई होगी और...सांप ने काट लिया हो या फिर गांव से कोई चौकीदारों में से ही कोई देख जाए तो उसका हाथ बस में न रहे, तो भी वह अब तक जिंदा तो नहीं ही है।

और वही हुआ था : बीच में बुढ़िया थी और आस-पास दो बड़े पत्थर। ऐसा लग रहा था मानो कोई विशालकाय बगुला सफेद पर फैलाकर पड़ा हो।

नाना का ही ध्यान उस ओर गया, 'यह मरी यह!' नाना जेवर की गठरी खोजने लगा। जबकि कालू बुढ़िया की नग्न देह पर सिर का साफा लपेटने लगा। वह बोल पड़ा, 'अरे राम-राम! आखिर यह दशा!' और व्यर्थ कोशिश करते नाना से कहा—

'जरा अक्ल तो लड़ा! बुढ़िया के कपड़े भी ले गए हैं, फिर जेवर छोड़े होंगे भला? बुला ले उन सबको, चल उन सबको...देखता नहीं यह कमर में झटका दिया है? पैर घिस-घिसकर गड्ढे बना डाले हैं, सो तो देख!' और स्वगत कहा, 'प्राण निकलते कितना कष्ट हुआ होगा!...'

गांव में संत्रास फैल गया। बहुओं को, सगे बेटों को भी यह बुढ़िया दुश्मन-सी लग रही थी। नाना ने तो कहा भी सही, 'कहती थी कि मर जाऊंगी तब अपनी छाती से लगाकर ले जाऊंगी। और आखिर वैसा ही किया भी!...'

श्मशान के लिए शव निकला तब उस पर डाला हुआ पुराना कपड़ा (कफन) देखकर तो सारा गांव बोल उठा, 'अरेरेरे! बेचारी...! अपना-अपना कर रही थी। ये देखो भाग्य के खेल! नहीं तो अस्सी की उमर पर बुढ़िया मरे और— उसके लिए तो हीर के चीर होते...और अब सिर्फ नाम मात्र का कपड़ा!'

स्त्रियां नहाने के लिए नदी गई तब भी वही बात चल रही थी, 'बहन, बुढ़िया के भाग भी ऐसे ही थे। बेचारी बहुओं के गले महेरी भी नहीं उतरने देती थी। सारा अवतार इकट्ठा कर दे...कर! तुम ही गिन लो न, अस्सी साल में उसने अंगूठे दिखा-दिखाकर पहले भी कितने मारे होंगे?'

'मारे ही होंगे। दस ढोर से कम दुधार मैंने उसके घर कभी नहीं देखे। फिर एक साल के पांच पड़वे गिनें तो भी— कितने होंगे? लगाओ हिसाब!' शंकरदा की पत्नी बोली।

कुछ युवतियां भी वह संख्या तय करने में लग गईं जबकि वे बूढ़ी औरतें, बेचारी की मौत पर लड्डू भी नहीं होंगे,' कहती जलापा करती रहीं, 'अरेरेरे जलती हुई ही जाएगी?'

और फिर तो बूढ़ी औरतें सोचने लगीं कि क्या अपनी भी ऐसी ही दशा होगी?

ऐसे सवाल के साथ मरने से पहले ही उसके बाद की— करट की— चिंता करती रहीं।

स्वर्ग-लड्डू तो गए पर श्मशान गए गांववालों को तंबाकू का भी आधा ही लड्डू मिला और सो भी घर का नहीं, शंकरदा के घर से मांगकर लाया गया।

बुढ़िया का सूतक भी इसी दिन उतार डाला गया जबकि 'फूल' तो— जैसे कि नाना ने कहा, 'नदी में डालेंगे दूसरे जन्म में! उसके पेट पैदा होंगे तब?'

नाना बोल देता था वरना रणछोड़ के भी मन में तो चिढ़ थी, दुख था। क्यों न हो? कल इस वक्त तो घर के आंगन में ठाकुर-सा ठाठ था जबकि आज सारे गांव में ये लोग ही सबसे ज्यादा गरीब हो गए थे— कंगाल। मिल्कियत में दो बैल ही बचे थे, सो भी रणछोड़ की पत्नी को सूझ गया और उन्हें छोड़कर दूर भगा दिए पिछले दरवाजे से, अड़ार में होते तो चारों बैल चले जाते।

कालू बिना कहे रह न पाया, 'पर तुम लोगों ने फिर संभाला क्या? बंदूक के वे धड़ाके सुनाई दिए, उसके कितनी देर के बाद लूट आई। तब तक तो सोच लिया होता— '

'अरे, हमने तो अनाज की भी गठरियां बांध रखी थीं। मैंने सोचा जो जाएगा एक-एक लेता जाएगा...कपड़ों के पोटले बांध रखे थे, पर इस काल-सी बुढ़िया ने भुलाया हमें! गहनों की गठरी को तो बुढ़िया इतने दिनों से छाती से बांधकर घूम रही थी। मैंने भी सोचा कि हमारे पास हजार काम हैं, तब बुढ़िया ही संभालती रहे। पर उसे हैजा हो, उस बंदूक के फूटते ही, इतना तो कहने रुकती कि मैं जा रही हूं, रणछोड़? सो हम उसे खोजते रहे और तभी फाटक मे आवाज आई, फिर अनाज और कपड़ों की गठरियां लेने कैसे ठहरते?'

'अक्ल के खां, फिर पिटारे को ताला क्यों लगाया? ऐसा करने के बजाय खुला रखा होता तो पुरखों की वह एक चीज तो बचती?' कालू ने रोष उंड़ेला।

'भाई, जानेवाला हो फिर सीधे का भी उलटा सूझता है। नहीं तो आप ही सोचिए, एक बुढ़िया भागी इतने में ही कितनी उलट-पुलट हो गई! यह तो भाग्य का ही दोष है न?'

शंकरदा के कथन का सभी ने अनुमोदन किया, 'भाग्य के, भाई भाग्य के! नहीं तो फिर घी-दूध से हाथ-मुंह धोनेवाली बुढ़िया की मौत पर एक बच्चा भी खाने न पाए तो यह भाग्य के ही खेल हैं न?'

चिता पर बुढ़िया का शव रखा गया और कोई बोल उठा, 'अबे भाई, बुढिया के मुंह में कुछ रखना नहीं?'

नाना चिढ़ गया, 'अभागिन ने हमारे हाथ में रूपे की अंगूठी जैसा भी रहने दिया होता तो उसे काटकर रखते न?' मुर्दे पर लकड़ी रखते हुए आगे कहा, 'सो तो चलेगा, सारे आधा मन जेवर लेकर चलती बनी है।'

कालू के मन में इन बेटों के प्रति भारी घृणा जगी। अपनी अंगूठी तोड़कर बुढ़िया

के मुंह में वह एक टुकड़ा रख आया।

दूर बैठे प्रौढ़-वृद्धों में से शंकरदा स्वगत बोले, 'अरे भगवान, तेरी लीला! कलमुंहा, कलमुंहा करती रहती थी और उसी कलमुंहे की अंगूठी अंतकाल में काम आई!'

यह सुनकर लोगों को लगा, मानो भगवान ने बुढ़िया को सबक सिखाने के लिए ही यह जूती लगाई है!

पर उन लोगों को कहां मालूम था कि सबक की जूती खानेवाली जो माली जा रही थी वह माली तो कब की रवाना हो गई थी, नहीं तो—कालू का वह रूपे का टुकड़ा भी 'थू' करती हुई थूक न डालती?

चिता शांत हो जाने पर गांव वाले नहा लिए और घर लौट आए।

घर की ओर नजर करते ही रणछोड़-नाना चिल्लाकर रो उठे छोटे बच्चों की तरह जोर-जोर से रोते रहे।

बाहर से तो दुनिया को भी वैसा ही दिखाया। अरे, कहा भी, 'रुलाई क्यों न आ जाए भाई! बड़े दुख झेलकर बुढ़िया ने लड़के बड़े किए। नौ मास तक पेट में पाले हैं। जननी किसे याद न आए?' वरना भीतर से तो सभी इस विलाप का सही कारण समझते थे, मन-ही-मन कहते थे, बुढ़िया तो मरी सो मरी, पर साथ में इन घरवालों को भी मारती गई। फिर रुलाई क्यों न आती?

पर समाज के रिवाज को निबाहने रोनी-कूटनी बहुएं पुकार-पुकारकर कह रही थीं, 'कहती थी वैसा ही किया रे...मां.. बाई!...छाती से बांधकर ले गई, छाती से।'

खोड़ी तो गालियां ही देती रही, 'अभागिन ने पहनने भी न दिया और साथ लेकर चलती बनी। उस जनम की बैरिन!'

हाथ से मुंह टेके, बैठे नाना को भी अप्रिय खोड़ी के वचन प्रिय लगे। हुंकारी भरते बड़बड़ाया, 'ऐसी जगह चलती बनी कि पीछे घोड़े दौड़ाओ तो भी हाथ न लगे!' नाना मन में तो यही सोच रहा था—बुढ़िया मानो जेवर की गठरी के साथ आकाश मार्ग पर चली जा रही है और कहती जा रही है, अंगूठा दिखाकर, 'लो, निगोड़े, पहनाओ अब अपनी रांड़ों को! मैं कहती नहीं थी कि मुझे दुखी मत करो! अपनी रांड़ों को समझाओ—उनसे कहो कि मुझसे तू-तड़ाक न करें...बाप रे बाप! तुम्हारी रांड़ों के दिए मकई के रोटों ने तो मेरे मुंह के मसूड़े छील डाले...ले अब! पहना अपनी नई बहू को...मैं नहीं कहती थी?...' इन कल्पना के साथ ही नाना होश खो बैठा, क्रोध में अंधा छाती पर मुक्कियां लगाते हुए चीख उठा, 'भाग गई, जा...पर याद रखना, अगर वहां दैव के घर आकर भी तेरे गले पर बत्तीसा न काटूं तो तेरे पेट में मानो पत्थर पैदा हुआ था।'

35

मानव जीवन का नाटक

एकदम खाली हो बैठे रणछोड़ के घर वालों को सुबह के खाने की चिंता ही न थी, चिंता थी गांववालों को रस्म-रिवाज की। और शंकरदा, कोदर वगैरह दो-चार जनों ने मिलकर 'महेरी-छाछ' का शोक-खाना खिलाया, पर शाम को?

रणछोड़ की मिल्कियत चली गई पर इज्जत तो थी ही उसकी। लेकिन किस काम की? डेगडिया या शेरपुर से किसी बनिए के घर से अनाज ले आता, पर ऐसे वक्त किसकी मां ने सवा सेर सोंठ खाई है कि गांव के बाहर पैर रखे, और वह पांच कोस का पंथ सलामत रहकर पूरा करना संभव हो तभी न?

जबकि गांव में तो...अधिक-से-अधिक अनाज कालू के पास था, और था शंकरदा के पास। औरों के तो किसी के पास दो मन तो किसी के पास पांच सेर। आधा गांव तो इस धाड़ से पहले ही अनाज के नाम खाली हो बैठा था। इमली की कोपलें और महुवे के छिलके पीसकर पानी में पकाकर खाता था। रणछोड़ मुखिया की चिंता किसे हो? कालू को ही सोचना पड़ा। दस सेर दान रणछोड़ के घर जाकर छोड़ आया, 'अभी तो चलाइए।' वैसे नाना की लेने की इच्छा तनिक भी नहीं थी। पर करता क्या? खुद भांजा या नाथा ही इनकार कर बैठा था, तब और कौन देता?...फिर भी शाम को खाने के वक्त उसे लग रहा था कि कालिया मुझे ज़िंदगी भर ताने देता रहेगा!

कालू भी समझ गया था कि नाना को ऐसा ही लगेगा और इसीलिए तो पांचवें दिन और दस सेर अनाज देने गया, तब कहा, 'आपको लगता होगा कि कालिया भलाई कर रहा है, पर नहीं, कुछ भी भलाई नहीं और इसमें नया भी कुछ नहीं। हमारे बाप अलग थे, पर बाबा तो एक ही थे न? और यह जमीन भी आपके तो कुछ ननिहाल की है, पर मेरी तो आपके बाबा की ही है न? सो आपको इसमें जरा भी खेद नहीं करना चाहिए।'

नाना की नापसंदगी से रणछोड़ भी अनजान न था। इसीलिए तो वह कालू के बजाय नाना से ही परोक्ष रूप से कह रहा था, सो तो भाई जमीन पर क्या रखा है? पर तू हमारा था तभी तुझे चिंता हुई न? नहीं तो ऐसे वक्त— अरे, हमारा नाथा ही देख लो न! पर सो तो जिसे सच्ची हमदर्दी हो वह ऐसे वक्त में काम आता है वरना तेरे

पास भी कहां कुठले भरे पड़े हैं?

'चार मन दाने हैं सो हम इतने आदमियों के लिए जब तक चल पाते हैं— देखें।'

'मैं जानता हूं पर...' रणछोड़ को मौत बित्ते भर की दूरी पर दिखी, अपने परिवार की और साथ में कालू-भली की भी। उसकी आंखों में आंसू छलक आए, 'ना कालू! इस बार लाया सो लाया पर अब से...बस कर! बहुत हुआ कालू...हमारे कारण तू किसलिए...'

'अरे आप भी भले आदमी हैं, रणछोड़ भाई! और हम यों भूखों मर जाएंगे क्या? इन नंगे भीलों को जीना आता है और हमें नहीं आएगा?' कालू की आवाज ही नहीं, उसकी आंखें भी हिम्मत से, श्रद्धा से छलक रही थीं।

यह देखकर रणछोड़ की आंखों में भी आंसू रुक गए। कालू की ओर ताकता रहा। अनेक विचार आ गए, 'क्या वह धर्म छोड़कर अधर्म की बात कह रहा है, मोर मारकर खाने की...और ढोर भी कहां बचे थे? तो क्या लूट करनी है साहूकार होकर?' और पूछा, 'मुझे बता तो सही किस तरह?'

'अभी मुझे भी तरीका नहीं मालूम, पर जब भूखों मरने लगेंगे तब अपने आप सब कुछ सूझने लगेगा।' क्षण भर रुककर आत्मा की आवाज से सिर हिलाकर बोला, 'ऊं हूं! भूख के मारे हम मर जाएंगे, यह बात तो मैं मान ही नहीं सकता।' इस तरह खड़ा हो गया जैसे उस 'सूझ' को खोजने जा रहा हो। 'लेकिन आप यों हिम्मत न खो बैठें! आखिर आसमान को फाड़कर भी अनाज तो लाएंगे ही।' और वह चलने लगा।

रणछोड़ बड़बड़ाता रहा, 'मैं तो हिम्मत नहीं खो रहा पर ये घरवाले— आधे तो साले 'अकाल-अकाल' करते मर जाएंगे।' और बगल में बैठे नाना की ओर देखते हुए आगे कहा, 'एक तो तेरी खोड़ी और मेरे तीन बच्चों पर अकाल सवार हो गया है। तेरी भाभी कहती है कि पहले की अपेक्षा डेढ़ गुना खाना देने पर भी खोड़ी तो उठने पर हर रोज 'कब अकाल दूर हो और पेट भर खाना मिले?' यही कहती रहती है, तब फिर कितना खाना होगा उसे?

'सो आज तो मैंने अपनी भाभी से कह दिया है कि एक जून बड़ों को एक रोट और छोटों का आधा। इससे ज्यादा खाना हो तो जाएं जहां जाना हो!'

पर ऊंट ने निकाले कूबड़ तो आदमी ने बनायी काठी! खोड़ी ने छिप-छिपकर कच्चा अनाज खाना शुरू कर दिया। रणछोड़ की पत्नी ने पकड़ा तो उलटा ही बोलने लगा, तेरे हाथ में शासन है तो तू दो रोटे खाती है और हमें. जैसे खोड़ी की बात सच हो और नाना की नई पत्नी भी घुड़कने लगी, 'सही बात है, तू अपना झोला भरती है और हमें तेरा दिया हुआ...'

पर ऐसे झगड़े सिर्फ रणछोड़ मुखिया के घर ही न थे। घर-घर थे। खुद कालू के घर भी पति-पत्नी के बीच तकरार होती थी। कालू भली से कहता, 'नींद, खाना और बोझ तो कम करने से कम होते हैं और बढ़ाने से बढ़ते हैं, सो थोड़े में ही संतोष मान

ले और पहले-सा आहार मत रख।'

'मैं क्यों भूखों मरूंगी?' भली विद्रोह कर बैठी—बेशरम होकर, 'तुझे अपने भाईयों को जिलाना है सो तू मर भूखों।'

कालू को जिंदगी में किसी ने 'तू' नहीं कहा था, पर या तो समाज से मान-अपमान का खयाल ही नष्ट हो गया था या फिर मौत आकर सामने खड़ी थी, इसी कारण इन गालियों और अपमान का हिसाब नहीं रहा था। जो भी हो, पर कालू ने मारपीट करने के बजाय इतना ही कहा, 'मुझे तो कुछ नहीं खोना होगा पर याद रखना, जितना 'खांऊ-खांऊ' करेगी उतनी जल्दी तू मरेगी। तुझे तो पता नहीं है दुनिया के बारे में, पर मैं तो अपनी आंखों देखता हूं कि जितना अनाज हरे बरस में खाया नहीं जा रहा था उतना इस अकाल में खाया जा रहा है! और बिगाड़ तो, न मानती हो तो जा देख आ, बाड़ों में कितना बिखर रहा है! अरे वे कंकाल तो सारे रास्ते में बिखेरते गए हैं।'

'सो भी मैं ही बिखेर आई हूं, क्यों?'

'अरे तू भी, तेरा खाना कम कर दूं तो तू भी कच्चा अनाज फंके मारकर बिगाड़ दे। छोड़ ये सफाई की बातें!' कालू घर से बाहर निकल गया।

कालू की बात उसके घर और गांव तक ही सीमित न थी, सारे अकालग्रस्त मुल्क के लिए सच थी। मनुष्य श्रद्धा ही खो बैठा था मानो आज का खाना हुआ सप्ताह तक काम आने वाला हो!...

बोरिए बांधने की बात भी गई और साथ बैठे रहना भी लोग भूल गए। घर-खेत की माया भी मर गई और वतन का सिवान भी लुप्त हो गया। कोई किसी से कहने के लिए ही नहीं ठहरता था, फिर पूछने और सलाह लेने की तो बात ही कहां रही? कोई सगे-संबंधी के घर चला गया तो कोई कहीं गया...किसी का पता ही नहीं चलता था। श्मशान जानेवालों की संख्या भी बढ़ने लगी...

'भूखों मर जाने की बात तो भूल ही जाना।' यह कहने वाले कालू के आंगन में ही भूख आकर खड़ी हो गई। बचत में दो ही दिन का अनाज था।

सोच में पड़ा कालू चबूतरे पर बैठा-बैठा दांत कुरेद रहा था। गांव में बनिया ही न था। हां, खेती के साथ मिर्च-नमक का पेशा करता कासम घांची था, पर वह भी लुट गया था!

आखिर उसने निश्चय किया, 'डेगडिया ही जाएं सब। वहां कुछ भी करके अनाज पा लेंगे।'

रणछोड़-नाना ने भी कबूल कर लिया। कोदर और शंकरदा तो राह ही देख रहे थे। कासम घांची लुट जाने वाली सुबह मुंह दिखाने भी नहीं रुका था, या नहीं रहा था वेचात, वे दस सेर दाने उगाहने के लिए।

इस बात से सहमत होने वाले रणछोड़-शंकरदा भी सोच रहे थे, बांधो बोरिए, हमारे पास क्या मिल्कियत है जो साथ ले जानी है या छाती से न छूटे ऐसा भी कुछ

नहीं है। खाली हाथ हैं, सो जहां से उठे वहीं से ही आगे चलना है!

जबकि कालू को चिंता हुई। गुदड़ियां और चारपाइयां, बंदूक, चक्की, दो लोटे, एक थाली और पतीली, मिट्टी के बर्तन, नेती, रस्सियां और साथ ही मंगल भी!—सारा घर-बार था।

कालू सोचता रहा : क्या छोड़ जाए और क्या ले जाए, लेकिन ले भी जाए कैसे?...खाली गांव कोई और जला न दे, इसलिए मंगल के मामा लींबा को बुलाकर चौकी का काम सौंपने का कालू ने तय किया। पर घर से क्या ले जाना और क्यों नहीं ले जाना है, इसके बारे में कुछ भी तय न कर पाया... आखिर उसने मंगल को घर में ही रखने का निश्चय किया, फिर भी कुछ चीजें छिपाना शुरू कर दिया...!

इतने में, दूसरे ही दिन रणछोड़ मुखिया ने समाचार दिया, 'तुझे दो-चार गुदड़ियां ले जानी हों तो गाड़ियां आई हैं।'

'बैलगाड़ियां?' कालू को सचमुच अचरज हुआ, रणछोड़ ओल्हनी में ही ठहर गया।

'हां-हां, हमारे तलकचंद कारबारी की दो गाड़ियां हैं। साथ में दो सिपाही हैं सो ठीक रहेगा। सरकारी आदमियों का साथ है सो रास्ते में कोई नाम भी नहीं पूछेगा।'

रणछोड़ की बात सही थी : अभी तक सरकार के खिलाफ किसी ने कुछ नहीं किया था। उसकी सत्ता, इज्जत और उसके प्रति भय अभी भी बने थे।

कालू ने पूछा—गाड़ियों में क्या भरा है, वे कहां हैं, कब चलने वाली हैं? फिर, 'ठीक है' कहकर चला गया घर। एक सलाई लेकर चबूतरे पर बैठा। हाथ-पांव कुरेद रहा था, जबकि भेजा कुछ और ही कुरेद रहा था। ज्यों-ज्यों दांत कुरेदता गया त्यों-त्यों दांतों में ही नहीं, आंखों में भी लहू फूटने लगा। 'यह सारा इलाका बिना अनाज तड़पता है। और देखिए तो सही, तलकचन्द कारबारी व्यापार कर रहा है! व्यापार ही न?... नहीं तो पहले भी चार-छह गाड़ियां गई थीं, तब इतने तो कितने सारे सगे होंगे इसके...और होंगे तो हमें क्या? यह न्याय है या अन्याय?...अनाज तो हमारा ही है न? जिसका अनाज वे भूखों मरते हैं और हमारी आंखों के सामने से, हमें तड़पाते हुए ...जा! ...यह इतना अनाज मिल जाए तो सारा गांव एक मास जी जाए...और अब कुछ करना ही पड़ेगा। तू वाला पटेल का बेटा नहीं करेगा तो और कौन करेगा? जैसे खुद बुड्ढा ही सामने वाले खंभे से प्रकट हो गया था—'कालिया! तू मेरे लहू का होगा तो भूखे गाव के बीच से अनाज की गाड़ियां नहीं जाने देगा...उठ! हो जा खड़ा और—तलकचंद के बाप हो तो भी क्या!...ऐसे वक्त में तू—मेरा बेटा मुकाबला नहीं करेगा तो दूसरे से तो आशा भी क्या की जा सकती है?...हो जा खड़ा और दिखा दे मेरा पानी— कर दे रौशन मेरा नाम, ...उठ, नहीं तो मैं ही तेरे नाम पर आज से नहा लूं!...'

मानो देव प्रसन्न हुए हों त्यों कालू एकाएक खड़ा हो गया। घर में जाकर कुरता पहना, साफा बांधा, हाथ में तीर-कमान लिया और चला गांव के तोरण की ओर जहां

इमली के नीचे गाड़ियां ठहरी थीं।

दोपहर की खिचड़ी पका-खाकर गाड़ी वाले गाड़ियां जोतने की तैयारी कर रहे थे। जबकि दोनों सरकारी सिपाही चिलम फूंक रहे थे। एक के पास तलवार थी, दूसरे के पास बंदूक। कालू ने देखा, बंदूक चलेगी नहीं, चांपवाली थी। बंदूक से भी विकट लगा उसे धारण करने वाला। बुड्ढा था पर था 'विलायती' (काबुली)। परंतु आज का कालू तो काल का भी बाप था। 'उस बुड्ढे की अपेक्षा मुझमें कम बल होगा? हां, वह बंदूक है और सो भी चांपवाली। स्थिर रहे और निशाना भी सही निकले वरना एक बार फूटने के बाद तो वही रामायण! चढ़ाते रहो इतने में तीर काम तमाम कर दे।' कालू उन गाड़ी वालों से 'कहां के हैं? कहां जाना है?' वगैरह सवाल पूछते हुए सोचता रहा।

'टुम कौन है?' बुड्ढे ने घूर कर कहा।

'कौन क्या, इस गांव का मुखिया हूं।' और अनायास ही उसकी उंगलियां मूंछ पर फिरने लगीं।

'अरे मुखिया से तो मैं अभी मिलकर आया,' वह जवान सिपाही बोल उठा, 'तुम किधर के मुखिया हो?'

न जाने क्यों कालू के अंग कुछ कांप रहे थे। मस्तिष्क का संतुलन संभालना भी मुश्किल हो गया। केवल उसी विचार से : 'गांव के बीच होकर गाड़ियां जाएं और हम मुंह फाड़कर ताकते रह जाएं?' कुछ चिढ़ के साथ वह बोल उठा, 'वह मेरा बड़ा भाई है। पर मैं तुमसे कहे देता हूं, गाड़ियां आगे नहीं बढ़ेंगी, जमादार।' फिर हांकने की तैयारी करते गाड़ीवालों से कहा, बल्कि हुक्म दिया, 'लौटा दो गाड़ियां, अगर जिंदा रहना है!'

क्षणभर तो सिपाही भी हक्के-बक्के हो गए। बूढ़ा ऐसे देख रहा था मानो इस लड़के पर हंस रहा हो। दया खाकर पूछा, 'तुमको मालूम है, किसकी गाड़ी है?'

'मालूम है। तलकचंद कारबारी का अनाज है और उनके घर पहुंचाने जा रहे हैं। और यह भी जानता हूं कि कारबारी दरबार की मूंछ का बाल है और उसके आगे ठाकुर की भी नहीं चलती। लेकिन गाड़ियां अगर वापस जाएंगी तो आप या मैं, दोनों में से एक मरेगा, तभी जाएंगी वरना नहीं।'

कालू की आवाज से भी अधिक आंखों की अडिगता, तनी हुई गरदन और आगे उभर आई चौड़ी छाती की निर्भयता अधिक दृढ़ और विकट थी। गाड़ी वाले भी ठहर गए, बुड्ढे की ओर ताकने लगे।

'ओ टुम्हारी मौत,' दांतों के बीच से बोलता काबुली खड़ा हो गया। कालू के सामने खड़े होते, मानो अभी उसके गले बतीसा काटेगा, इस तरह घूर उठा, 'टुम कौन विलायती को रोकने वाला!'

पर इससे तो कालू डरने की बजाय और अधिक क्रुद्ध हो गया। सारे शरीर में मानो कोई तार बज उठा। क्षण भर ऐसा लगा 'इस बुड्ढे की पसलियां मसल डालूं

अभी! या फिर इसे सिर पर उठाकर...कर डालूं रोट!' वह सोच रहा था पर चेतावनी देकर ही इस बार चले जाने दिया, 'कौन क्या, मैं तेरे जैसे काबुलियों के लहू से हाथ रंगने वाला पटेल का बेटा हूं। उठा हाथ, देख क्या होता है!'

काबुली ने भी कालू की दृढ़ता देखकर या फिर धीरे-धीरे गांव को इकट्ठा होता देख कालू को चेतावनी दी, 'टुमके भले के लिए बोलता है, हमारा रास्ता मत रोको, वरना...' और उसने अपनी ही कलाई पर बतीसा काटा। बह निकले लहू का भी उसे खयाल न था। वह चीख उठा, 'टुमको कच्चा ही कच्चा खा जाएगा।' और उसका बदन तथा उसकी बादामी रंग की दाढ़ी भी कांप उठी। रणछोड़ और शंकरदा भी वहां पहुंचकर उसे कुपित काबुली का कंप और हाथ से बहता खून देखकर कांप उठे।

परंतु कालू को रोकना और समझाना भी कम हिम्मत का काम नहीं था। तुर्रा यह कि भगा, कोदर और दो-तीन और आदमी भी कालू की कुमुक पर थे। भगा ने तो कहा भी, 'उसे आप अकेला न समझें, जमादार! कच्चा खाओ तो भी और पका खाओ तो भी हम गांव के तोरण से अनाज...'

जमादार जानता था कि ये लोग जान पर खेलने को तैयार हो गए हैं; पर वह भी क्या करता? उसकी हिम्मत के भरोसे पर तो तलकचंद कारबारी ने गाड़ियां रवाना की थीं। यहां अपने ही राज्य में हार जाता तो अपनी और पुरखों की भी आबरू चली जाती, विलायत का रौब खतम हो जाता। कितने ही विलायतियों का गुजारा चला जाता!...

और उसने, उसके मिजाज और अक्ल ने पलटा लिया। गाड़ी वालों की ओर कदम उठाते हुए उसने कहा, 'चला गाड़ी, देखता हूं कौन रोकता है विलायती के बच्चे को!' इसके साथ ही उसने गांव वालों की ओर मुंह किया तथा बंदूक की चांप चढ़ाई। उस साथी को भी हुक्म दिया, 'निकाल तलवार, क्या देखता है।' और कालू को चुनौती दी, 'आ जा सूअर के बच्चे!'

बंदूक की चांप चढ़ाते ही स्त्री-बालक तो 'फर्रर्र'! शंकरदा और रणछोड़ भी एक ओर बाढ़ की ओर खिसक गए। भगा-कोदर भी एक-एक कदम बगल में खिसके...

एक न हटा तो कालू बल्कि अब ज्यादा अडिग होकर खड़ा हो गया। छाती भी ज्यादा चौड़ी हो गई। उसने कहा, 'छोड़कर देख तो सही, देखूं?' पर मन में पछतावा कर रहा था : साला चकमा दे गया, छूट गया!

इस ओर गाड़ी वाले जुए पर बैठे।

जुए सीधे हो गए और बैलों ने जोर लगाया। गाड़ियों के पहिए धीरे-धीरे घूमने लगे।

कालू ने फिर चुनौती दी, चेतावनी दी, 'जाते तो हो, पर यह नाला उतरने दूं तो वाला पटेल के पेट में मानो पत्थर पैदा हुआ था।'

'अभी क्यों नहीं रोकता...! उधर नाले पे क्या है?'

'बंदूक छूटने की राह देख रहा हूं।' कालू का आत्मविश्वास नीबू की फांक-सी

आंखों में और अंग-प्रत्यंग में खेलता रहा। वह तरकीब भी खोज रहा था।

'तेरा जान लेकर ही छोड़ूंगा!' जमादार अपनी विजय पर मुस्कराता रहा, 'हूं...! तुम समझता क्या है!'

'और आप यह समझते हैं क्योंकि आप बंदूक भरते रहेंगे और उस वक्त ये सभी देखते रहेंगे!' कालू ने लौटती नजर से भगा को इशारा किया।

भगा बोल उठा, 'यों भी हम तो मरने लगे हैं, फिर बहू भी सास के ही साथ!'

'तो तू भी आ जा सामने! उधर क्यों खड़ा है?'

'यह आया। डर किसे है?' और भगा लाठी के साथ कालू की बगल में खड़ा हो गया, जबकि शंकरदा चीख उठे, 'अबे भगले!'

'भगला-भगला न कीजिएगा, नहीं तो!' कालू ने शंकरदा की ओर गरदन फेरी, 'भाई-फाई तो नहीं गिनूंगा और पहले आपको ही...' भगा ने हाथ से लाठी छीनकर शंकरदा की ओर उठाई, 'यह..देखी है?' उसकी आवाज, न जाने क्यों कांप रही थी, शायद धड़कते दिल के कारण।

और क्यों न धड़के! जी पर खेलने की बाजी थी। उस उठाई लाठी के साथ कालू जमादार की ओर घूमा, मानो बिजली की चांप दबाते ही पुतला, घूमा हो। लाठी फेंकते ही चीखकर झपटा, 'भगला, तलवार वाला जाए ना!'

हुडुम करती बंदूक से गोली छूटी। कालू धूल के साथ आधे पल के लिए दौड़ता गया या लोटता हुआ खुद उसे पता नहीं चला। जाते ही जमादार के पैरों के बीच सिर उठाकर उसे पछाड़ा। फिर दूसरे ही पल उसकी छाती पर चढ़ बैठा। जबकि भगा-कोदर तलवार वाले पर टूट पड़े थे।

क्रोध से अंधा कालू उसका गला ही घोंट देता पर तभी 'बस कर कालू, बस कर। गजब हो गया।' कहते रणछोड़, शंकरदा दौड़े आए। दो-दो आदमियों ने कालू के हाथ पकड़ लिए, पर विलायती तो आंखें मूंदकर—मारपीट को मानो देख रहा था...

लेकिन उसने सोचा होता तो शेर की तरह कालू को काट खाता—गला पीस डालता।

सच पूछो तो इस बुड्ढे विलायती की छाती पर कालू नहीं था— वह तो था दस वर्ष पहले बिछुड़ा फूटती मूंछों वाला अपना ही पुत्र! —अपने सिखाए दांव के मुताबिक ही उसने चकमा दे दिया था। लाठी फेंक दी थी और उसी चपलता से झपट आया था...वह जहर और वही खुनस!

और बुड्ढा बाप अपने अंतर की भवाई[1] में फंस गया...पुत्र की बहादुरी देखने में, उन मधुर स्मरणों का मजा लूटने में, छाती पर चढ़ बैठी मौत को भी मानो भूल गया बल्कि मरते क्षण मिली उस याद में डूब गया।

जमादार के मुंह पर और छाती पर लहू देखकर रणछोड़ मुखिया कांप उठा,

१. यहां 'भवाई' शब्द मिल्कियत के अर्थ में आया है।

'गजब हो गया! जाह रे जाह! यह सिपाही मर जाएगा तो सारे गांव के लिए मरने की बारी आएगी। गांव पर तोप रखी जाएगी।'

'तुम भी ठीक से देखो तो सही! जमादार को कहां झटके लगे हैं? लगे तो हैं कालिए को— देखते नहीं, हाथ पर गोली लगी है सो?' शंकरदा ने खुद कालू का हाथ दिखाया। बात सच थी। कालू के बाएं हाथ पर कुहनी के पास ही गोली लगी थी और उसका ही यह सारा लहू था। पर कालू को तो अब भी उसका खयाल न था और इसीलिए तो हाथ बांधते शंकरदा की ओर घूर उठा न? 'तुम लोग मुझे बांधना चाहते हो? पर याद रखना मुखिया, तू राज का पक्ष लेकर— '

'अरे तू तो भला आदमी है! यह गोली लगी है सो तो जरा?' रणछोड़ ने कहा।

कालू को अब होश आया। हाथ में से तेजी से लहू बह रहा था, फिर भी उसने परवाह न की, 'ना, पहले इस लकड़बग्घे को बांधो, फिर मुझे पट्टी बांधो।'

पर यह क्या? विलायती की आंखों में अंगारों के स्थान पर आंसू क्यों? होंठ पर गालियों की बजाय मुसकान कैसी? कालू के तो मानो होश ही न थे जबकि भगा-कोदर ने अधिक सावधानी बरती। सिर के साफों से विलायती के फैले हुए हाथ बांध लिए...

और यह सारा जुलूस जो जानेवाला तो था मुखिया के घर पर, नाना के द्वारा रणछोड़ के कान फूंक दिए जाने से कालू के घर गया...

परंतु कालू गांव के रंग-ढंग देखकर पछतावा कर रहा था, 'यह तो मूरख की दोस्ती और जान का जोखिम!'

उसने रणछोड़, शंकरदा, भगा, कोदर आदि पंद्रह आदमियों को एक ओर बुलाया, नाना को भी घर से बुला लिया।

'बोलो भाई, इसका क्या करना है अब?'

नाना बोल उठा, 'तूने करते समय हमसे न पूछा और अब पूछता है सो किस काम का?' सभी को ऐसा लग रहा था, 'कालू भाई ने करते तो कर दिया पर अब सब नई चिंता से हिम्मत खो बैठे हैं!'

पर कालू लोगों के मन की बात समझता था तभी तो चिंता के दिखावे को दुगुना कर दिया न? 'हां, भाई, मुझे भी क्या मालूम कि आप यों खिसक जाएंगे?'

'खिसक न जाएं तो? राज्य की चोरी है यह! चाचा उलटी घानी जोतकर तेल निकालेगा।' नाना को भी ऐसा मौका मिला कि मिलेगा!

'पर उस वक्त मैंने सोचा कि गांव भूखों मर जाएगा तब।'

'पर हमसे पूछना तो था, पगले!' रणछोड़ मुखिया ने भी दिलगिरी दिखायी। 'अब तो एक ही उपाय है। उस विलायती को जैसे भी हो सके, मना लें और विदा कर दें उसकी राह। क्यों शंकर भाई?'

शंकरदा ऐसे सिर हिलाते बोले, जैसे कुछ सोच रहे हों, 'आप सबको जो मुनासिब

लगे सो सही, भाई!'

और अन्य लोगों को भी लगा, 'भूखों तो मर ही रहे हैं और ऐसे में राज के घोड़े आएंगे।' दो-चार जनों ने कहा, 'मुखिया कहते हैं वही कीजिए, भाई! यमराजा के दूत आएंगे उन्हें सह लेंगे पर दीवान के दूतों को नहीं! विदा कर दो उसे अपनी राह।'

'बस यही हो न?' कालू ने सबसे पूछ कर फिर से बात पक्की की, 'यही भाई, यही', ऐसा जवाब देते गांवों वालों को उसने सुना दिया, 'पहले आप लोग ही अपनी राह चले जाइए!'

कालू की रूक्ष दशा और उलझन में डालते शब्दों ने लोगों को सोच में डाल दिया। तभी उसने खड़े होते हुए आगे कहा, 'आप एक बार यहां से निकल जाएं, फिर मुझे इस अनाज का जो करना होगा करूंगा।'

कालू का मतलब गांव वाले समझ गए। खुद कालू ही घर में जाते-जाते कह रहा था, 'यह गोली खाई है और मौत के मुंह से लौट आया हूं सो उसको विदाई देने के लिए नहीं...है...!' वह हंसा, 'पड़ोसियों के लिए यह मेहनत नहीं की। जाइए आप खुशी से। मेरे दिन फिरे कि सिर पर मौत मोल ली और जिंदा रखने के लिए बुलाया आप लोगों को!' और फिर दरवाजे से झांका, 'नाना की बात सही है। मैं तो ओखल में मस्तक रखकर बैठा हूं पर आप नाहक मेरे पीछे-पीछे...! उठिए...यहां से निकल जाइए तो मैं कुछ सोच पाऊं।' और फिर घर में गया। हुक्का संभाला। एक हाथ झोली में था!...एक हाथ से चिलम में अंगारे रखता रहा, उन लोगों के चले जाने की राह देखता रहा।...

दालान में बैठे ये पंद्रह-बीस आदमी एक-दूसरे की ओर ताकते रहे। सभी के चेहरे एक ही बात व्यक्त कर रहे थे—कालिया तो मन की ठानी करेगा और सरकार वालों से भी लड़ लेगा। उसमें हिम्मत होगी तभी तो इस जोरावर का मुकाबला किया होगा न?...और यह तो भाई सिर के बदले में माल है! —जीते तो जी गए और हारे तो— अरे, यों भी मरे हुए ही हैं न! मौत तो सिर पर मंडरा रही है और—

भगा खड़ा होता हुआ बोल उठा, 'राज्यवाला कल उलटी घानी पेरने वाला हो तो आज ही चाहे पेर ले, पर मैं तो पेट में जलती भूख की आग सह नहीं पाता। कालू के साथ मैं भी हूं।' उसके पीछे-पीछे कोदर उठा, 'मैं कैसे छूट पाऊंगा? मैं भी सिपाही को पीटने में था ही न?'

सभी को लगा कि घर में पहुंचे सो जी गए और दालान में रहे वे—वे लोग तो हमारी आंखों के सामने रोटी पा लेंगे और सो भी मक्के और गेहूं की। और हम तो राज्य के घोड़े आते-आते बिना मारे ही मर जाएंगे।

और फिर नाना को छोड़कर सभी कालू की पंगत में बैठ गए। खुद रणछोड़ बोला, 'नानिया की नई ससुराल की स्थिति अच्छी है सो उसे गरज नहीं है। पर मुझे तो आप सब जो तय करें, कुबूल किए बिना कोई चारा नहीं। जी जाने लगा फिर

चौधराई क्या करूं!' यों कहकर वह घर में जा बैठा, मानो मौत से छूटकर जिंदगी से मिल गया हो।

एक नाना ही इच्छा होने पर भी गुमान न छोड़ सका। उठकर चला गया घर।

कालू ने, 'देखना, बाद में पलट जाओगे! यह तो बलवान के साथ लड़ना है, रे भाई...' वगैरह चेतावनी देने के बाद घर गिने, अनाज का अंदाजा लगाया और टोकरे का नाप गिनकर बांटना शुरू किया...गांव में मानो लूट चली। बच्चों के लिए तो जियाफत-सी खुशी थी, समझदारी के लिए कालू कोई पीर था तो जो नासमझ थे उनके मन में भी 'कालू चाचा ने करामात की' यही भाव था। भगा-कोदर ने कहा, 'भाई, कालू को तो दुगुना पड़ेगा। सच पूछो तो इस सारे अनाज का वही अकेला धनी है, पर...'

कालू ने जी का जोखिम उठाया था सो तो ठीक, पर बायां हाथ लगभग खो दिया है। कुहनी के नीचे ही गोली लगी है।

एक ओर इस बांटे जाने वाले अनाज के लिए आपाधापी होती रही तो दूसरी ओर कालू के दालान में रखी गई उस चक्की के आगे भी वही स्थिति थी। 'तेरे बाद मेरी बारी...दरदरा ले मोटा-मोटा...उठ चल, तीन आदमी के लिए बहुत हुआ।'

और इस चक्की के आसपास का दृश्य देखकर या आंगन में पड़ी गाड़ी के पास किसी को कच्चा अनाज फांकते देख या फांकने वाले पर होती मारपीट देख, या अनाज लेकर जाती मां के घाघरे से चिपके और कुहराम मचा बालकों को देख, उस काबुली की आंखों में पानी छलकने लगा। सामने बैठकर बातें करते अपने गांव की करम-कहानी सुनाते शंकर रणछोड़ की ओर भी उसका ध्यान न था...ध्यान तो था ठेठ काबुल पर। पहनावे और भाषा का ही फर्क है, वरना ऐसी ही गरीबी और ऐसी ही कंगालियत...। अरे आंगन भी कालू का नहीं, हूबहू अपना था...

घड़ी-दो घड़ी में तो वह अनाज चक्की में घूमकर चूल्हे पर चढ़ा न चढ़ा और लोगों के पेट में भी पहुंच गया... फिर वे गांव वाले खाली गाड़ियां और विलायती की बात का फैसला करने के लिए इकट्ठा हुए। पर तभी विलायती ही बोलने लग गया था, 'तुम फिकर मत करो पटेल, हम कुछ नहीं कहेगा— कुछ नहीं करेगा! सारे इलाके में हमने बस एक मरद का बच्चा देखा!...सच है उसका कहना...इलाके की प्रजा भूखों मरती है और...वह जवान कहता है, सच कहता है! तुम लोगों का अनाज है और तुम लोगों ने ले लिया है! मालिक के घर इसका इंसाफ होगा!'

'ऐसा अब समझे तो पहले से क्यों नहीं समझते थे, जमादार?' भगा बोल उठा।

'क्या करता? हम चिट्ठी का चाकर! हमको भेजा, हमें आना पड़ा!' बूढ़ा सचमुच पछतावा कर रहा था।

'तो अब आपको कारबारी से तो बताना ही पड़ेगा कि...'

विलायती हंसा, 'हम विलायती का बच्चा है, यह शक्ल कारबारी को फिर कभी

नहीं दिखाएगा, मुखिया!'

'तो क्या करेंगे?' कालू ने पूछा।

'कुछ भी करेगा, मर जाएगा, हम वापस कभी नहीं जाएगा, बेटा!' बुड्ढा मानो स्वगत बोल रहा था।

विलायती टिटकार उठा, 'चच्च चच्च चच्च चच्च! क्या बात कर रहे हो! हम विलायती पीठ पर कभी घाव नहीं करता। लड़ने के वक्त लड़ लेता, बाद में भूल जाता।' और उसने अधमुंदी आंखों से कालू की ओर देखा, 'टुमका यकीन नहीं होता?...ईमान को समझता है?..फिर बस!' कहते हुए बुड्ढा तनकर बैठा, 'उस ईमान की कसम खाकर मैं कहता हूं...'

कालू बोल उठा, 'ना ना जमादार, आपको शपथ लेने की कोई जरूरत नहीं है और मुझे भी मौत का उतना भय नहीं। इस अकाल में तो सभी मरे हुए ही हैं न?' और उसने भगा से कहा, 'छोड़ दे इनके हाथ!'

भगा, कोदर आदि की इच्छा न थी, पर कालू ने उन्हें हिम्मत से भरोसा दिलाया, 'विलायती बच्चा दो जुबान नहीं रखता, ऐसा लोग कहते हैं। और ऐसा करेगा तो भी—लुट जाएंगे तो खैर, पर चोर तो देख पाएंगे न?'

हाथ मुक्त होते ही विलायती खड़ा हो गया। कालू की ओर मुड़ा। गांव वाले तो कांप उठे। खुद कालू भी सोच में पड़ गया। पर तुरंत ही विलायती को अपना हाथ पकड़ते देख समझ गया। वह भी खड़ा हो गया। उमंग से गले मिला। मानो किसी प्रियजन से भेंट रहा हो...

अलग होते वक्त दोनों की आंखों में आंसू थे।

'मैंने अपनी इतनी उम्र में टुम जैसा जवान कभी नहीं देखा। टुमको देखकर अपना लड़का याद आ गया!...' और उसकी आंखें टपटप चू पड़ीं। स्वगत धीरे से बोला, 'मालिक ने मुझ पर बड़ा एहसान किया, वरना टुम-सा बेटे मेरे हाथों...'

शंकरदा बीच में ही बोल उठे, 'तो उसका बाप वाला भी आप जैसा ही था, ठीक ऐसा ही पतला बदन और इतनी ही ऊंचाई। फर्क मानो न मानो तो दाढ़ी के रंग का, और बुड्ढा वाला, दाढ़ी की मांग बनाता था आप नहीं बनाते हैं—इतना ही अंतर है।'

उन गाड़ियों और सिपाहियों को विदाई दी गई। काबुली ने बंदूक भी दे दी, 'कारबारी से कहना, विलायती मुंह नहीं दिखाएगा...'

इसके बाद तो काबुली ने गांववालों से अपने घर की और बेटे की बात की, गांव वालों ने कुसुंभा (अफीम का रस) निकाला। आदर से पाया, पिया और शाम होने आई थी। फिर वह उठ खड़ा हुआ।

'अभी इसी वक्त काबुली चाचा...? कालू ने तो रिश्ता भी बांध लिया—बंध गया।

बुड्ढे की आंखों में फिर पानी आ गया। 'अब हमें क्या सुबह, क्या शाम, बेटा!'

काबुली की आवाज में दर्द था।

'पर इस वक्त आप जाएंगे कहां?' शंकरदा ने पूछा।

'किधर भी, विलायत से हम इधर आया तो बूढ़े ने कुछ खयाल नहीं किया था। बस! वैसा ही आज भी!'

कालू को विचार आया, इसीलिए कहा, 'आज तो रह जाइए चाचा, बातें करेंगे और फिर कल, जाना ही हो तो आप अपनी राह और हम अपनी राह! हमें भी यह गांव और यह राज्य छोड़ना ही पड़ेगा। हम सब डेगडिया के रास्ते...'

पर बुड्ढा न माना बल्कि उसके चेहरे पर लाचारी और अकुलाहट बढ़ गई। कालू को लगा, 'अगर ज्यादा आग्रह करेगा तो बुड्ढा चीखकर रो पड़ेगा।' उसने जिद छोड़ दी, 'जैसी आपकी इच्छा!'

पर इस सिपाही बच्चे को खाली देखकर फिर रोका, 'एक पल जरा रुकिए चाचा, मैं अभी...' और कालू उतावली से घर में गया।

थोड़ी ही देर में वह तोड़दार बंदूक के साथ बाहर आया। 'लीजिए चाचा! हमने अपना लिया और आप अपना लीजिए!' कहके कालू हंस उठा।

और 'अपना' सुनकर मुग्ध हो रहे काबुली को देखकर गांव वाले भी खुश हुए। भगा ने तो कहा भी, 'ठीक ताल बैठा!'

'अच्छा बेटा!' बुड्ढे ने कालू के कंधे पर हाथ रखा, 'हम तो अब टुमको किसी भी सूरत में भूल नहीं सकता; तुम्हारी यह भेंट— '

'और चाचा, आपने भी कहां छोटी भेंट दी है!' और झोली से लंगड़ा हाथ हिलाकर हंसने लगा—'यह तो आपको जिंदगी भर...'

'वह तो बहादुरों की निशानी है बेटा...ले आ, एक मर्तबा और...''

'और बहादुरों को—बाप-बेटे को भेंटते, अलग होते और आंसू-भरी आंखों से विदाई लेते-देते देखकर गांव वालों की आंखों में भी पानी भर आया। विदाई देती वे आवाजें गद्‌गद्‌ थीं, 'जमादार सा'ब!...काबुली चाचा! किसी दिन मरने-जीने की खबर पूछना, कभी...'

कालू दूर तक गया...टीले पर खड़े-खड़े डूबते सूरज के प्रकाश में अदृश्य होते चाचा को निर्निमेष आंखों से देखता रहा...फिर पीठ फेरते आंखें पोछीं, बड़बड़ाया, 'यह भी एक नाटक ही है न?...घड़ी पहले एक-दूसरे के जी के प्यासे थे और घड़ी के बाद—विदाई भी असह्य लग रही है।' और फीकी हंसी हंसते हुए बोला, 'नाटक नहीं तो और क्या है?'

36

मुश्किल दिन

बैसाख के बवंडर शुरू हुए, पर इस वर्ष खेतों में घास नहीं उड़ी, होती तभी तो उड़ती न? चल रही थी लू और धरती की धूल, या उड़ रहे थे कुछ आदमियों के सिर के सूखे बाल!

हर साल बैसाख के ये बवंडर किसानों के दिल में भी बवंडर उठाते थे, उत्साह जगता और आशाएं अंकुरित होतीं, 'कल काम पूरा कर पाएंगे? बरस तो यह आ पहुंचा!'

पर इस साल तो उल्टी बात थी। अरे राम! अभी तो सारा जेठ पड़ा है! मानो एक सारा युग बिताना हो! और युग ही था न वह? एक-एक दिन, बेला बितानी भी मुश्किल थी। फिर बीस और दस दिन की तो बात ही कहां रही!

कालू, रणछोड़ आदि ने डेगडिया आकर देखा, पांच-सात सौ घर का वह कस्बा लोगों से किलबिला रहा था। उनके ही लहू-मांस से बंधे इस कस्बे में उनके लिए कहीं जगह न थी। बड़ी तकलीफ से गांव के इस पंद्रह परिवारों के लिए एक घर मिला और उसमें आ मिला कालू के ससुर का परिवार।

कालू ने सोचा, 'अगर इस जेठ को जीत गए तो फिर आषाढ़ में तो आशा बंध जाएगी...' पर जेठ जीतना ही मुश्किल था। और वह दो गाड़ियों का अनाज भले ही सत्तर-अस्सी मन था, लेकिन एक-एक घर के हिस्से में तो दो-दो मन ही आया था। और फिर रणछोड़-शंकरदा जैसे के घर में तो छह-छह खाने वाले थे; नाना की खोड़ी गुजारा भी रणछोड़ को ही चलाना था। और इन पचहत्तर-सौ लोगों के निबाह की भी चिंता थी— शंकरदा, भगा, कोदर और कालू के जिम्मे।

पर हकीकत में इन लोगों को भी ढोना कालू के ही जिम्मे था। उसने सबको सावधान करके सलाह दी।

'संभलकर चलोगे तो ठीक है, वरना जीने-मरने की सही अड़चन अभी ही है। कठिन दिन— एक-एक बेला भी कठिन है! मेरा कहा मानो तो सभी के लिए एक ही रसोईघर बना लो। एक आदमी के लिए दस सेर अनाज, इस हिसाब से इकट्ठा कर लें और कहीं से ले आएं रसोई के बड़े बर्तन।'

इसके बाद कालू ने औरतों को भी मेल से रहने की सलाह दी, आहार कम करने की सीख दी और पांच स्त्रियों को रसोईघर की जिम्मेदारी दी, जिनमें रणछोड़ की पत्नी, भगा की मां, अपनी सास, कोदर की मां और पांचवीं एक और स्त्री थी।

पर अभी तो एक जून पूरा पका भी नहीं...और पकाने में भी क्या था? उन बड़े मटकों में महेरी ही— छाछ तो सपना ही बन गई सो पानी में— साथ में मिलाए गए मोखा के छिलके। पेट में वजन तो होना चाहिए न? फिर भी कोदर-भगा की औरतों के मुंह फूल गए। सभी को एक साथ ही बरगद के पत्तों में दो-दो करछी परोसा गया पर तब भी उन लोगों को पकानेवालों के पत्तलों में ज्यादा दिखने लगा! खाते- खाते ही लड़ाई शुरू हुई। किसी ने कहा कि कच्चा खाकर अनाज बिगाड़ा तो किसी ने नमक ज्यादा पड़ जाने की बात कही। रसोई के बर्तन साफ करने के मामले में तो सबका विरोध था।

कालू ने बहुत कहा कि भीतर कुछ भी नहीं बचा है। धोने में मटकों के सिवा कुछ भी निकलने वाला नहीं, पर कोई मानता हो तब न?...और हर रोज मनाना भी किस तरह?

ऊबे हुए कालू ने रसोई और बर्तन धोने का काम पुरुषों के हवाले कर दिया। स्त्रियों से भी कह दिया, 'यहां तो इतना ही मिलेगा और सो भी एक ही जून। ज्यादा खाना हो तो खोज निकालो कामकाज।'

पर कहां था काम? खुद कालू ही बनिए-ब्राह्मणों के घर-घर घूम आया था और अब भी घूमा करता था...

पांचवें दिन बड़ी मुश्किल से एक आदमी से काम मिला और सो भी आधा सेर कोदो के लिए दिन-भर तेली की घानी हांकने का, वह भी कासम घांची की सिफारिश के कारण।

बड़े सवेरे कालू, ससुर को घानी पर बिठाकर खुद अपने सेठ के घर चला, 'कुछ भी कीजिए सेठ, पर पांच आदमियों को कुछ काम दीजिए!'

'पर कहां से लाऊं काम? और काम होता तो खुशी से दे देता पर आप लोगों के पेट के गड्ढे— आधे-आधे— भी तो भरने चाहिए न?'

'हां, काशी चाचा! पेट की ही तो यह सारी रामायण है...तब फिर उधार दीजिए। कुछ भी कीजिए पर अब तो भूख सहन नहीं होती और मैं आपका एहसान नहीं भूलूंगा!' कालू की आंखों में आंसू आ गए।

'तू भी क्या बोलता है! अरे पगले, हम ही लंबी नजर नहीं दौड़ाते होंगे? सब-कुछ जानते हैं कि गाहक जिंदा रहेगा तो आज नहीं तो कल देगा। पर भाई, हमारे घर में भी होना चाहिए न?'

'तब तो बीज की आशा भी कैसे करें, काशी चाचा?'

काशीदास सेठ हंसे, 'अभी बारिश तो होने दे!' और क्षण-भर रुककर कहा, 'बीज नहीं देंगे तो तुम्हारे घर से लेने के नाम पर हम पाएंगे भी क्या?'

कालू के पैर में हिम्मत आई, 'ऐसा होगा तो घर में मंगल के पास एक मन दाने ज्यादा हैं सो भी ले आएंगे।' और वह जहां एक मकान बन रहा था उस ओर मुड़ा, 'देखें, यहां एक आदमी को भी काम मिल जाए तो।'

पर कहां मौका मिलता था? अरे खुद उस मकान मालिक के हाथ की बात भी नहीं थी। सुबह के वक्त जो आदमी तसले या फावड़े से लग गया सो लग गया! अब तो दहाड़ी भी कम करते-करते सवा सेर अनाज से डेढ़ पाव-सेर कर डाला था। पर फिर भी उस मकान मालिक के कहने के अनुसार, 'लोग तो भाई आधा पाव— अरे चुन्नट-भर दाने के लिए भी काम करने को तैयार हैं, पर हमारे सिर पर भी राम हैं न?'

बात सच थी, डेगडिया में इतने सारे आदमी आकर भर गए थे कि जैसे किसी भयंकर रोग से इस छोटे-से शहर का पेट बेहद फूल गया हो।

पुलिस-थाने वाले को भी डर लगा। शहर के साहूकारों ने तो अर्जी लिखकर ठेट दरबार के हाथ में पहुंचाई, 'डेगडिया लुट जाने को है।'

कालू के काफिले के आने के आठ दिन बाद शहर में बात चली, 'गोरे साहब ने बंदूकें भेजी हैं, पर कैसी? तोड़ादार नहीं, चांपवाली भी नहीं, टोपी वाली बंदूकें! बारूद भरने की, गोली डालने की या ठूंसने की माथापच्ची हो नहीं। अरे, लोग पर टोपी भी चढ़ानी नहीं पड़ती। कल दबाई कि नली अलग। टोटा डालते ही ढुड्डूम! ऐसी— नई तरह की बंदूकें!'

और दूसरे दिन हवलदार गले में कारतूस की माला पहनकर कंधे पर बंदूक रखकर बाजार में टहलने निकला। क्षणभर तो भूखे लोग भूख को भी भूल गए। उस टोटे और बंदूक की ओर ही देखते रहे।

'खलास, डेगडिया अब लुट नहीं सकता, भाई!' डेगडिया में दबके हुए ही नहीं, आसपास बसी ठाकरड़ा कौम के लोगों ने भी आशा छोड़ दी।

कालू जैसे भी निराश हुए, 'आगे बढ़कर डाका डालने की तो ताकत ही नहीं थी, पर कुछ लोग तैयार हुए होते तो उनके साथ घुस जाते न?' और निःश्वास छोड़ते बड़बड़ाया, 'अरे हत्यारे भूरिए! गाड़ी में से टोटे और बंदूकें उतारीं तब अनाज ही उतारना था न, बेवकूफ!...अरे रे हत्यारे! मौत तो यहां चलते-फिरते पैरों में आ जाती है तिस पर तूने भी वही प्राण लेने वाली बंदूक ही गाड़ी से उतारी! इसकी बजाय तो जिलाने वाला ही कुछ उतारता?...मारने में तूने छत्तीस कलाएं दिखाईं तब इसके बजाय जिलाने वाला खोज निकाला होता तो हम भी जानते कि नहीं, छत्तीस कलाओं का जानने वाला तू निकला!...'

इन कारतूस वाली बंदूकों के साथ रात में चौकी के लिए घूमती पुलिस को देखकर तो कालू ज्यादा निराश हो गया। गहरे-गहरे उसके मन में तो था ही, 'कुछ न मिलने पर आखिर अनाज की चोरी तो करनी ही है।' और उसने एक-दो जगह घुसने

के लिए कोठारों का पता भी लगा लिया था।

'यह अन्याय तो देखो कोई!' सिवान की ओर मोखा के छिलके लेने गया कालू कोदर भगा आदि से कह रहा था, 'इस मुश्किल वक्त में तो कोठारों से अनाज निकलना चाहिए या उलटे टोंटे वाली बंदूकों के पहरे...कौन भूखों मर रहा है? बनिए के तो कोठार भरे हैं, और ब्राह्मण भी बहुत-से तो देशावर निकल गए हैं पर बड़ी तादाद में तो हमी हैं— किसान ही मर रहे हैं न?' फिर क्षण भर रुककर कहा, 'भगवान के घर ही अन्याय दिखता है, वरना अनाज पैदा करने वाला ही बिना अनाज मर जाए, यह भी हो सकता है दुनिया में...किसके अनाज हैं इन कोठारों में? पूछ लीजिए तो सही, सख्त मेहनत करके किसने कमाया है? किसने लहू का पानी किया है?'

पर ऐसी जली-कटी तो बहुतेरे कहते थे और सुनने वाले भी कम न थे, पर फायदा क्या?

'आधा तो तू यों ही सूख गया है।' कोदर ने कहा। भगा ने छिलकों के साथ खड़े होते कहा, 'यह तो काजी जी दुबले हुए शहर के अंदेशे से', वाली बात है!'

कालू सच बात कहने वालों पर ही चिढ़ गया, 'अबे पर करूं क्या...और मैं गलत भी क्या कहता हूं? दिन में डेढ़ सेर अनाज खाने वाले पेट को आधा अनाज तो देना चाहिए न?...ना, भाई ना, सच कहता हूं कोदर, मुझसे तो अब भूख सहन नहीं होती और क्यों सहता रहूं? इसके अलावा तो उस बावड़ी में पड़कर दो जने मर गए उसी तरह क्यों न मर जाऊं?'

भगा-कोदर को ऐसा लग रहा था जैसे कालू होश भूलकर ही बक रहा है और उन्होंने उसकी बातों की ओर ध्यान देना छोड़ दिया। लेकिन कालू सारे रास्ते बोलता ही जा रहा था।

'किसलिए जीना? कमाई करके राज्य के और साहूकारों के कोठार भरने के लिए ही न?...तलकचंद कारबारी के सगे-संबंधियों को जिलाने और उन्हें सोने-रूपे से मढ़ने के लिए ही न?...ना भाई, ना, हमें तो जीना ही नहीं...'

पर कालू के इस प्रलाप से रणछोड़ शंकरदा भी ऊब गए। उसे उलाहना दिया तिस पर भी वही सवाल और वही बेचैनी! इसके बाद, आंखों से पानी की धारा छूटी। नींद भी नहीं आ रही थी।

भलो ने भी उसे घुड़का, 'बकवास छोड़कर, जरा चुप रहकर सबको सोने देंगे?' लीजिए खाइए! मैं तो बहुत मना करती थी कि भलाई छोड़िए। पर ना...! कुशालजी (कालू के बाबा) का निरबंस जाता था उसका क्या?' और करवट लेटे हुए बोली, 'खा निगोड़े अब! रो अपने मां-बाप के नाम!...'

बरामदे के बगल वाले कमरे में सोते कालू को गुस्सा तो बहुत आया, पर गाली देता तो सास-ससुर सुनते और मारपीट करता तो सुनता— 'मुझे मालूम है, आजकल तू भटकनी हो गई है। पर अभी मुझे मौका नहीं। जिंदा रहूंगा तो कर दूंगा सीधा।'

'सो तो किया तूने।'

पर तभी भगा की जवान बहन रूखी ने भली का मुंह दबाया, 'चुप कर, भाभी...!' धीरे से कहा, 'भूखों मरेगा तो भी तुझे क्या? तू तो अब भूखों मरने वाली नहीं है न?'

'और तू?...रांड़ काइयां!' भली ने रूखी को चिकोटी काटी।

'भूखों तो यह केशर मर जाने वाली है बेचारी!' भगा की पत्नी ने फिर कोदर की पत्नी के साथ मस्ती शुरू की।

स्त्रियां भीतर के भाग में थीं पर एक किवाड़ खुला हुआ था और ढलती रात थी सो सारी बात नहीं तो आधी तो सुनाई देनी ही थी। पर सभी या तो नींद में थे या जागते हुए भी बहरे बन गए थे।

कालू भी बहरा बनकर पड़ा रहा, पर सो न सका। और नींद कैसे आती? उन जवान स्त्रियों के तो ठीक, पर शंकरदा की पत्नी का ही, कालू के शब्दों में कहें तो 'दिन फिरा' था! वह जवान स्त्रियों के पास जाकर— अरे खुद अपनी बेटी रूखी से ही विनती कर रही थी, 'भूख से जाए, ऐसा हो तो रांड़, मुझे ही ले जा न कल?'

कालू की जीभ तक आ गया, 'हां-हां, जवानी में कसर छोड़ी होगी सो अब पूरी कर लो!'...कालू यहां तक ऊब गया था कि किसी ऊपर की मंजिल से गिरकर आत्महत्या करने की इच्छा हो रही थी और शायद कर भी लेता... 'पर क्या मालूम कि मौत आएगी ही?'

उसने बहुत रात बीते मन में तय किया, 'कल से किसी औरत को घर से बाहर ही निकलने नहीं देना है।'

सुबह यह निर्णय उसने उन पुरुषों को सुनाया। पर उन लोगों का आग्रह ढीला लगा। खुद शंकरदा ने ही कहा, 'ऐसे वक्त में लाज और आबरू की फिक्र क्या करें, कालू! अच्छी है धरती कि सभी को चलने देती है!'

शंकरदा का अंतिम कथन अधिकांश सच था। कालू को कुछ ही दिनों में इसकी प्रतीति हो गई।

भगा को एक जगह काम मिला, दो कोठी राख छानने का, एक रोटी के बदले में। 'पर कालू भाई,' भगा ने कहा, 'मुझे तो रोटियां मिलीं तीन...'

'भली होगी बेचारी देनेवाली।'

'भली ही ऐसी कि...'

और कालू तुरंत समझ गया, 'बैठ, ७०, अब गप लगाना छोड़। घर वाला तो तुम दोनों को अकेले छोड़कर ढोर चराने गया होगा! यही ना...'

'पर तू मेरी बात तो पूरी सुन? घर वाला भी घर में पड़ा था। पर वह भी, ऊपरी मंजिल पर कोने में किसी एक के पास अनाज में राख मिलवा रहा था।'

'तेरी बात मैं मानता ही नहीं! ऐसे वक्त में कोई घर में तो पैठने नहीं देता और

सेठ मंजिल के कोने में आदमी को लेकर...'

'आदमी नहीं।' और ठहाका लगाकर भगा ने कालू के कानों की ओर मुंह बढ़ाया।

पर कालू तो उठकर चलने लगा, 'न जाने इस दुनिया का क्या होने वाला है?'

पर अगर कालू ने अपने अंतर से पूछा होता तो समझ पाता कि उसकी चिढ़, दुनिया बहकती जा रही थी इसी कारण न थी, बल्कि खुद उसे रोटी खिलानेवाला गाहक नहीं मिल रहा था इसी कारण थी। और तभी तो वह बड़बड़ाया, 'एक बार अगर किसी ने पेटभर खिलाया होता तो...अरे जिंदगी-भर गुलाम हो जाता!'

और शायद इसी आशा से वह डेगलिया के गली-कूचे में भटकने लगा। घर-घर पूछता रहा, 'कुछ काम दो, बहन...एक ही रोटी देना...एक कौर चावल दोगी तो भी बहुत!'

एक दुपहरी गाय का कौर देखकर भी गाय को खिलाने जा रही उस विधवा औरत से विनती की, 'यह तो मुझे दीजिए, बहन! आपके बर्तन मांज दूंगा।'

'अरे मरे निरबंसिए! गाय के मुंह से खा जाने को निकला है!' उस विधवा ने गाली तो दी, पर दूसरे ही क्षण आगे कहा, 'मांज दे चल, तुझे दूसरा दूंगी। पर देखना, ठीक-से उजले हुए तो।'

'अरे उस लूले की बजाय तो बहन मैं...' कहता हुआ एक दूसरा आदमी उन जूठे बर्तनों के पास बैठ गया। पर उसे तो उस औरत ने ही खड़ा कर दिया, 'पहले इन्होंने कहा है।'

कालू तो खुश हो गया, 'मेरा हाथ भले ही थोड़ा-सा सीधा नहीं होता, पर एक बार आप...' और बांह चढ़ाने की जरूरत न थी, फिर भी उसने फटे चिथड़े ऊपर चढ़ाए। बर्तन के पास बैठते कहा, 'दर्पण-से कर दूं, उनमें मुंह न दिखाई दे तो कहना।'

और सचमुच, कालू का बायां हाथ कुछ अपंग हो गया था फिर भी वे बर्तन चमकने लगे। पानी उंड़ेलती उस औरत को थाली देते हुए उसने फिर कहा, 'देखिए तो, दिखता है न मुंह!' और कालू उस गोल जवान मुंह की ओर क्षण-दो क्षण ताकता रहा।

'हां-हां, मुआ, ला चल। नखरे किए बिना...ला तेरे हाथ धुलवा दूं और फिर रख दे इस चौके पर औंधे, पर हां, तेरी जात कौन है?'

'पटेल।' कालू ने सगर्व कहा।

'तो ठीक, ले आ घर में,' कहती हुई औरत घर में गई।

और उस दिन कालू ने पूरा नहीं तो आधा पेट भर कर तो खाया ही। रात के लिए ढंककर रखा गया उस औरत का सारा खाना! वह बिना किसी प्रकार का बदला चुकाए, मात्र दया और मानवता के नाम मिला था। फिर भी न जाने क्यों कुछ हद तक वह भीतर से निराश हुआ। भगा की बात सच लगने पर भी झूठ मानकर वह बड़बड़ाने

लगा, 'नाहक बड़प्पन दिखाने के लिए गप हांकता है।'

जो भी हो पर इतना अवश्य था, मनुष्य ने मानवता छोड़ी थी, संयम छोड़ा था। साथ-साथ आबरू-इज्जत के खयाल को भी परछत्ती पर चढ़ा दिया था। धर्म और दया को तो उस मुरलीधर के मंदिर में ही ढकेल दिया गया था। बस एक ही बात थी। जैसे भी पेट का गड्ढा भरता है, भूख की वेदना शांत होती है, और सबसे बड़ी बात थी, जिंदा कैसे रहा जा सकता है?

एक यह लगन थी और काम भी इतना ही था, तभी तो डेगडिया की गलियों में हजारों मनुष्य कुत्तों की तरह भटक रहे थे न? शंकरदा-रणछोड़ जैसों ने शरम और आबरू को एक ओर फेंक दिया। तसले-फावड़ों को पकड़ लेने के लिए मुरगा बोलते ही उठने लगे...अनेक बार धक्के खाकर लौट आते, तो कभी सारे दिन की मजदूरी के बाद पाव-डेढ़ पाव खिचड़ी ले आते। पर वह खिचड़ी पकाकर खा लेने के बाद जब लेटते तब तो दुखती हड्डियों और टूटती नाड़ियों में मृत्यु की ही धड़कन सुनाई देती!...दो-चार बार के अनुभव के बाद उस डेढ़ पाव खिचड़ी की बजाय इमली की कोपलों के साथ मुट्ठी-भर अनाज मिलता था। वही खाकर पेट में घुटने दबाकर पड़े रहना आधिक लाभदायी दिखता था। दोपहर के समय गलियों में भटकने को निकल पड़ते थे। इधर-उधर देख लेते, किसी खुले दरवाजे के सामने मदद के लिए पुकारते, 'अरे रे, किसान के जाए की ओर तो देखिए? जिंदा रहेंगे तो हमीं आपके कोठार भर देंगे!'

कहीं-कहीं आदमी और कुत्तों के बीच उस एक टूक रोटी के लिए खींचा तानी भी दिखाई देती।...

और इस तरह अन्न के दान करने वाले खुद ही दान में दिया अनाज छीन रहे थे। कोठारों से भी छीन लेने पर कारतूसी बंदूकों का चमत्कार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था। लोगों को शंका होने लगी थी, लुटने से पहले ही वह बंदूक छूटती है—जी ले लेती है, तब वह बंदूक ही खुद पहले से समझ लेती है क्या? वरना राज्यवाला थोड़े ही पागल है कि यों ही मार डालता होगा! जरूर उसकी बंदूक में ही कुछ करामात है। उस टोटे में ही 'वीर' उतर आए हों तो अचरज नहीं।

जो भी हो, पर लोग चोर-डकैती का विचार भी नहीं कर पाते थे। फिर भी डेगडिया के लोगों को प्रतिपल लूटपाट की भनक सुनाई देती थी, जबकि गांव के बाहर बसे लोगों को मौत की! और इन दो भनकों से ही बंदूक की धांय-धांय सुनाई देने लगी।

दिन-ब-दिन इसके शिकार होने वालों की संख्या बढ़ने लगी और इस संख्या में कालू के ससुर ने वृद्धि की।

रात थी! थकान-भूख से अधमरा होकर कालू का ससुर मुट्ठी-भर अनाज लेकर घर जा रहा था। यकायक उसके कानों में पास वाले दरवाजे से आवाज पहुंची,

'कुत्ता...तू...तू...तू!'

और वह बुड्ढा दरवाजे की ओर झपटा। किवाड़ खुलने की राह देखता अंधेरे का लाभ लेकर छिप गया। कुत्ता भी आ पहुंचा और किवाड़ पर पंजे के नाखून से खरोंचता हुआ 'आऊं-आऊं...' करने लगा।

वैष्णव जन ने थोड़ा-सा किवाड़ खोला और रोटी का टुकड़ा डाला। झट से दरवाजा बंद करने जा रहा था कि किसी को झपट देखी, समझ गया। चीख उठा, 'हट, साले चोर! उधर हट! —' और फिर तो हवा से खपड़ा हिला के अनुसार पड़ोसी वैष्णव बिना समझे ही मदद के लिए आ पहुंचा, 'चोर...चोर, जमादार, दौड़ो...'

बाजार में नाके पर बैठा जमादार उस कारतूस भरी बंदूक के साथ झपट आया, बिना पूछे ही 'हड़म' करती नली बुड्ढे की छाती पर चांप दी! वैष्णवों ने तुरंत ही किवाड़ बंद कर दिए, 'अरे राम राम! गजब हो गया..! जमादार ने बंदूक छोड़ी...सिर पर पाप आ गया...! अरे राम...'

जबकि कालू तो इससे खुश ही हुआ। चिता जलाते हुए बोला भी, 'आपका दुख तो खत्म हो गया। छूट गए इसमें से। पर हमारे भाग्य में तो..'

और अन्य लोगों से कहा, 'अरे भाइ, कोई मानेगा? तुम इस टोटे वाली बंदूक को और अंग्रेज को भले ही बुरा कहो, पर मुझे तो सब भला ही लग रहा है! तुम ही बताओ, कुत्ते की तरह बेदम भटक-भटककर मरने की बजाय यह मौत क्या बुरी? धमाका हुआ कि साथ-ही-साथ इस दुख का भी धमाका!' पर बाद में बिलखती राजू को देखकर कालू ने निःश्वास छोड़ा। गहरी सांस लेते हुए असली बात कहने लगा, 'धिक्! हत्यारे गोरे! धिक्कार है तेरी छत्तीस कलाओं को! — ये बंदूकें उतारकर तो तूने बारिश तक पहुंचने की दशा में आ पहुंचे आदमियों को भी कुचल दिया...हम तो मानते थे कि तू देवरूप है, पर ना, तू तो देव का रूप लेकर आने वाला कोई राक्षस ही है!' कालू इतना क्रुद्ध हो गया कि अकारण ही उसके दांत भिंच गए और अपंग हाथ की भी मुट्ठी बंध गई, 'पर क्या करूं...मेरा वश चलता तो सभी किसानों को मार डालता, फिर देखना था कि तुम्हारा बाप कौन हल हांकता है और कौन तुम्हारी मेमों को गेहूं की चिकनी रोटी खिलाता है?...'

कालू के इन शब्दों की अपेक्षा भीतरी अकुलाहट अधिक भयंकर थी, पर करता क्या? राज्य के पास और उन साहूकारों की कुमुक में ये छत्तीस कलावाली बंदूकें थीं। भगवान तो कहीं दिखाई देता ही नहीं था! गुस्सा भी किस पर निकालता? और फरियाद किससे करता, क्योंकि जिसके पास फरियाद लेकर जा सकता था वही खुद पत्थर निकला!

वह मरने की दशा में तो था ही, पास में जो आवास था वह भी खत्म हो चुका था, सो मरते-मरते भी चाहता था कि वह छत्तीस कला वाला गोरा हो, वह राज्य वाला हो, वह तगड़ा साहूकार हो या भगवान हो, ये चारों नहीं तो एक भी कहीं सामने आ

जाए तो वह एक दफा उसे भूखों मारकर यह दिखाना चाहता था कि कितनी बीसी सौ होता है। और फिर उसका लहू पीते-पीते ही मरना था...पर क्या करता? इन चारों में से कोई दिखता नहीं था। इस ओर, अपनी टोली में से, खुद भगा-कोदर भी उसकी ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। इतना ही नहीं, डेगडिया में भटकते उन हजारों आदमियों में से कोई तो उसकी ओर देखता! खुद भली ही मानो पहचानती न थी! सभी अपनी-अपनी फिक्र में थे— सभी को किसी और की नहीं सिर्फ अपनी ही चिंता थी। फिर कालू का ख्याल कौन करता?

हां, एक राजू थी, मौका मिलने पर उसकी बात सुनती भी थी और उसे वह मानो आंखों में भरकर ही घूमती थी...

फिर कालू ने वह चिढ़ और बकवास सब कुछ छोड़ दिया जैसे अंतकाल निकट आ गया हो! जगत में और जीवन में जो सत्य था सो ताड़ लिया, 'कुछ नहीं! सारी बेकार कोशिशें हैं, सत्य तो दो में ही है : एक राजू में, दूसरे मौत में।'

मौत का सामीप्य तो वह कदम-कदम पर अनुभव कर रहा था। जबकि राजू का साहचर्य बढ़ाना शुरू किया यह समझकर कि चार दिन साथ टहल ले और उसने लाज, संकोच, इनके सिवाय भी जो कुछ हो, छोड़कर राजू से साहचर्य बढ़ाया। राजू से उसने कह भी दिया, 'मैं अब ज्यादा जीने वाली नहीं, दो या चार...'

पर राजू भी कितना जीने वाली थी? गहरी सांस लेते हुए बोली, 'मौत की घड़ियां गिनी जा रही हैं, यही कहिए ना!...'

और वे दोनों जीव, छत्तीस कला वाला अंचल, टेंट वाली बंदूकें और कोटार...सब कुछ छोड़कर एक-दूसरे की छाया बनकर जीने की अंतिम कठिन घड़ियां बिताते रहे। एक-दूसरे को दिलासा देते और मन-ही-मन अपनी मौत की कामना करते, 'कब मौत आ जाए और कब इस गोद में लेटते हुए मैं प्राण छोड़ दूं।'

37

ओखल में सिर राम!

आशा थी कि बारह मास से गई बारिश जेठ के पिछले पंद्रह दिनों से तो जरूर होगी, पर न जाने मेघराजा तो सो गए हैं या फिर उनका पानी खत्म हो गया या लौटते वक्त राह लंबी हो गई!

धरती पर मौत की बरसात होती रही! वन में और खेतों में, बाजारों में, और गलियों में—जहां देखो मुर्दे! किसका जलाना, किसका कहां दफनाना! फिर मातम-पुरसी या सूतक और श्राद्ध कर्म करने की तो बात ही कहां रही! पीछे रह गए संबंधी तो राहत का अनुभव कर रहे थे, खुश होते थे, ऐसा मानते थे, न देखना, न दुखी होना!

कालू जैसे को तो ईर्ष्या भी हो रही थी, रणछोड़ भाई और शंकरदा तो छूटे इस दुख से और भूख से! वे तो अमर हो गए! और रह गए हम! न जाने कब तक भाग्य में भूख से तड़पना लिखा है!

अनाज भी खत्म हो गया और बनिए से 'बीज नहीं मांगूंगा सेठ!' कह कर लाया हुआ दो मन कोदो भी समाप्त हो गया, जिनमें आधा तो कूड़ा-करकट था, और ऐसे चिपचिपे थे कि धो-धोकर दम निकल जाए। वे भी राजू, चाचा ससुर, सास के तीन बच्चे, भली और खुद, इन सात-आठ आदमियों के लिए कितने दिन चलता?

अलबत्ता अनाज कम होता गया तो दूसरी ओर सास मरी और चाचा ससुर भी छोटी-सी भतीजी को आगे करके चल बसे। कालू एक ओर खुश हुआ तो दूसरी ओर दुखी भी उतना ही हुआ! 'ये निकम्मे जी रहे हैं और जो काम के हैं, मर जाते हैं!' निकम्मों में एक मात्र भली ही थी।

पर अपने इस खयाल के लिए वह अपने आपको टोकने लगा। 'दूसरों की मौत चाहता है पर याद रखना, तू ही पहले मरने वाला है!...'

और ऐसा ही समय था, शायद इस अकाल को देखकर ही वह कहावत चल पड़ी होगी, 'अकाल में अधिक मास!'

आषाढ़ का आसमान स्वच्छ-साफ था जैसे बिना ढोर-डंगर और आदमी के समतल खाली खेत हो। दूर-दूर तक क्षितिज पर बादल का नामोनिशान न था जबकि बैसाख-जेठ की धूप भी इस आषाढ़ी धूप के सामने फीकी लग रही थी।

कालू सोचने लगा, अब जीने के लिए एक ही उपाय है, लूटपाट। पर अकेला क्या करे? भगा-कोदर तो हिम्मत हार चुके थे।...

पर इस ओर डेगडिया का 'महाजन' भी सोच में पड़ गया था। धनवालों ने मकान बनाना शुरू कर दिया था और अन्न वाले भी 'हां ना' 'हां ना' करते गए और थोड़ा-बहुत सूद पर देते गए। तो कुछ लोगों को सलाह दी, 'अंग्रेज सरकार रेल बिछा रही है और धन देती है। सो जाओ वहां, जिंदा रहना हो तो।'

कौन अंग्रेज और कहां रेल! इन आदमियों में से शायद ही कोई ऐसा होगा जो कभी डेगडिया से आगे गया हो। फिर उनके लिए अहमदाबाद और बड़ौदा— ये सब तो दुनिया के उस पार के मुल्क थे। फिर भी बहुत-से लोग चल निकले। डेगडिया से ही नहीं, आस-पास के गांवों से भी...

उनमें से कितने रेल तक पहुंचे और कितने रास्ते में ही चित्त हो गए सो तो राम जाने या...ना ना, राम के सिवाय दूसरा कोई नहीं जानता!...कौन गया और कहां है, इसका किसी को पता ही नहीं था। अरे, पति को पत्नी की दरकार न थी, नहीं तो खोड़ी मुसलमान के साथ जाती और नाना नजरअंदाज कर देता?

इस ओर डेगडिया में बसे पेट भर खाने वाले सुखी-संपन्न लोग भी मरने लगे। फिर वह अतिशय गरमी के कारण हो या परदेश से आ पहुंचे लोगों के कारण, जैसा कि डेगडिया के निवासी सुंदरजी सेठ ने कहा, 'इन भूखे किसानों की हाय लग गई।'

और फिर तो किसी वैष्णव ने तुलसीदास का वह दोहा उद्धृत करके सुंदरजी सेठ के शब्दों को पूरा किया। 'सच बात है। तुलसीदास कह गए हैं :

'तुलसी हाय गरीब की कबहुं न खाली जाय,
मुए ढोर के चाम से लौह भस्म हो जाय!'

जो भी हो पर डेगडिया के 'महाजन' ने सुंदरजी सेठ की बात ध्यान से सुनी, 'बारिश नहीं होगी तब भी हम, जिनके पास अन्न है, वे भी नहीं जाने वाले हैं, और होगी तो ये ही लोग एक का अनेक गुना पैदा करके देने वाले हैं। हम थोड़े ही हल हांकने वाले हैं?...'

और डेगडिया के महाजन ने कोठार से अनाज निकालकर देना कुबूल कर लिया। कीमत भी आधी ही ली। आधा हिस्सा धर्म का रखा!

वैसे शुरू-शुरू में तो खैरात में खाने वाले कम ही थे, पर दिन-ब-दिन संख्या बढ़ती गई। भूख ने आत्मसम्मान को ठुकरा दिया। कालू को भी राजू ने मनाने का यत्न किया।

'आप तो कहते थे कि इस कोठार में हमारा अनाज?'

'सो हमारा ही है न।'

'तो फिर महाजन देता है और हमें लेना है, इसमें शर्म किस बात की?'

'जो मानता है उसके लिए तो है ही! और हमारा है, इसीलिए तो ज्यादा शर्म है।

हमारा हो अनाज और हमें ही हाथ फैलाना पड़े, भीख मांगना पड़े!'

'चलिए-चलिए! ऐसी बातें सोचे बिना बैठिए, नहीं तो मैं भी नहीं जाऊंगी। जाऊं तो आपकी कसम! ये दो लड़के भी भले ही साथ में मर जाएं।'

मिट्टी के लौंदे की तरह बनकर पड़े कालू को उठना ही पड़ा। पर एक शर्त पर! 'मैं तेरे साथ जाऊं भले ही, लेकिन हाथ नहीं फैलाऊंगा।'

'मत फैलाइए। आपकी ओर से मैं हाथ पसारूंगी. फिर तो एतराज नहीं है न?'

'अरे पगली!...' कालू की धंसी हुई आंखों में, बाहर निकल आए जबड़ों की हड्डियों पर हंसी आ गई। बोला, 'यह डेढ़ पाव खिचड़ी जिलाएगी, ऐसा तू मानती है? अरे, दो सेर देंगे तब भी मेरा पेट तो नहीं भरने वाला!' आगे चलते हुए कहा, 'और तू ऐसा मानती है कि बारिश होगी? यह तो प्रलय होने वाला है, बेवकूफ! न हम जीने वाले हैं और न ये महाजन! तब...किसलिए बेवकूफ, मरते क्षण इस किसान के बेटे को हाथ फैलाने पर मजबूर करती है!...ना ना, राजू, तू अकेली जा मैं तो नहीं आने वाला।' और वह रुक गया। दूर दिखती उस दरिद्रनारायण की लंबी कतार को रूखी रोती आंखों से ताकता रहा। स्त्री-पुरुषों के अर्धनग्न अस्थिपिंजरों में पटेल थे और ब्राह्मण भी थे। कुछ बनिए भी थे, जबकि ठाकुरों की तो बड़ी संख्या थी। तेली और सिपाही आदि मुसलमान भी कतार में थे। पर इन सब में अधिकांश थे किसान ही! कालू के पैर ही मानो जड़ हो गए, 'भगवान जिंदा रखना चाहता होगा तो लोग्बा के छिलकों से ही...'

'पर मेरे साथ तो चलिए! या मुझे भी भूखों मार डालना है? अपने इन दो सालों का तो विचार कीजिए!' राजू गिड़गिड़ाती रही।

'मेरी तरह तुम लोग क्यों मरोगे? ले चल!' और फिर उसने कदम उठाए।

पास जाते हुए उसने चारों ओर देखा—ऊंचे चबूतरे वाले मंदिर के दालान में सुंदरजी सेठ, देखकर आंख मुंद जाए ऐसे कपड़े—सफेद धोती और कुरता, सुनहरी किनारे वाली लाल पगड़ी और गले पर दुपट्टा पहने शोभित हो रहे हैं, गोल तकिए का सहारा लेकर गद्दी पर बैठे हैं। अन्य महाजन भी आस-पास बैठे हैं।

टोटे वाले तमंचे के साथ एक ओर कुर्सी पर फौजदार बैठे हैं तो हवलदार उस कारतूसी बंदूक के साथ चारों ओर नजर डालता तौले के बगल में खड़ा है। कुछ सिपाही लाठियों के साथ घूम रहे हैं। आने वालों को पीछे खड़े रखते हैं, लेने वालों को चेतावनी देते हैं, 'अगर भूल से भी दुबारा आया तो छाती में यह टोटा ही समझ लेना।'

राजू को उस छोर पर पहुंचाने जा रहे कालू को ऐसे आदमी भी दिखे जिन्होंने खलिहान से ब्राह्मण उठा सके उतने दाने दान में दिए थे, तो जिनके घर में अनाज रखने की एक बार जगह न थी वैसे भी कतार में खड़े थे। अरे नाना जैसा लूटपाट को शर्म समझने वाला और भाई का दिया न लेने वाला भी कंगाल होकर पंगत में पड़ा था।

'अरे रे रे! भूख ही भोंडी है, वरना— ' कालू की आंखें गीली हो गईं। 'जिस धनी के सामने सारी दुनिया— बड़े-बड़े राजा-महाराजा और सेठ भी— हाथ फैलाते आए, उसी को आज हाथ फैलाना है! और सो भी केवल डेढ़ पाव खिचड़ी के लिए!...धिक्कार है इस जन्म को।'

पर ऐसा सोचने वाला केवल कालू ही न था। ऐसे कुछ और भी लोग थे जो यहां आए ही न थे। शंकरदा और रणछोड़ जिंदा होते तो वे भी और चाहे कुछ भी करते पर इस तरह कतार में खड़े रहकर, सारी दुनिया के सामने इस तरह हाथ न पसारते!

कालू ने राजू तथा उन दो लड़कों को कतार में खड़ा किया और तुरंत ही लौट गया। सिपाही ने टोका, 'ए लूले! कहां जा रहा है बे?'

'अपने ठांव पर।' कालू ने पीछे देखे बिना ही कहा।

'अरे खड़ा रह लकड़बग्घा! सुनता नहीं बे?'

कालू ठहर गया। कहा, 'पर मुझे नहीं खाना।'

'क्यों नहीं खाना साले? ये सभी लेते हैं और तू क्यों नहीं लेता? बड़ा लाट हो गया है क्या?'

कालू को यह जबरदस्ती अजीब लगी और वह भी खड़ा हो गया, 'लाट होता तो लेता, पर किसान हूं सो नहीं लूंगा। मैं टूट जाऊंगा तो भी नहीं लूंगा, चांप देना तो चांप दे टोटा, यह खड़ा हूं।'

आदमियों की इस सारी कतार ने गर्दन फेर ली, कालू की ओर— धरती के जाए की ओर ताकती रही। खुद फौजदार और सुंदरजी सेठ ने भी गरदन ऊंची की। और—

इससे पहले कि सिपाही हाथापाई करता, उन्होंने एक महाजन को भेजकर कालू को अपने पास बुलाया, और पूछा, 'क्यों भाई पटेल, तू यह गज्जर नहीं ले रहा?'

कालू क्या जवाब देता और देने पर भी उसे भरोसा था कि ये लोग मेरे जवाब को, किसान के दिल को नहीं समझ पाएंगे! सामने पड़ा यह अनाज का ढेर हमारा है, ऐसा कहूंगा तो उलटे टोटा चांप देंगे और बनेगा कुछ नहीं! अरे न बनता क्यों? अगर ये सब नाज के धनी हाथ फैलाने की बजाय हाथ उठाते तो ये बंदूक वाले भी भागने लगते, पूंछ दबाकर!

'किस सोच में पड़ गया, भाई! मुझे तू जवाब तो दे।' सुंदरजी सेठ के शब्दों में मधुरता ही नहीं, दिल को चिकना-चिकना लगे ऐसा भी कुछ टपकता था। और तभी तो कालू की उन आगभरी आंखों से टप-टप आंसू ही चू पड़े, 'क्या कहूं, सेठ! हमारी ही कमाई के नाज के ये ढेर देखकर हमारे कलेजे में क्या होता है— '

बात खत्म करने के पहले ही रुलाई आ गई, वह जोरों से रो पड़ा।

इतने बड़े सेठ-महाजन और फौजदार के सामने जाकर सवाल-जवाब करते लूले कालू को देखकर दूर खड़ा नाना जल उठा...! कालू को रोता देखकर और यह सोचकर कि फिर पता नहीं ऐसा मौका, फिर मिले या न मिले, चीखकर कह ही तो दिया, 'हाथ

नहीं फैलाना था तो अब रांड़ की तरह रोने क्यों बैठा है?'

पर इन शब्दों ने सुंदरजी सेठ को भी कुछ खट्टा कर दिया। वह फौजदार भी चिढ़ गया पर—

नाना का इतना सद्भाग्य कि कालू ने उसे बोलते देखा न था और तभी सुंदरजी सेठ बोलने लगे, 'मैं जानता हूं जवान कि तुझे अपने ही नाज के लिए हाथ पसारते शर्म आती है! पर हमें भी सदाव्रत चालू करने में इतनी ही शर्म आ रही है। समस्त पृथ्वी का पालन करने वाले को हम तो कब तक पालने वाले हैं! यह तो मेघराज को पानी पहुंचाने जैसी बात है।' सेठ फीकी हंसी हंसा। गहरी सांस लेते हुए कहा, 'पर क्या हो सकता है, पगले! कुदरत के सामने हम सभी लाचार हैं...देख, तू एक बार मेरी ओर देख।'

कालू ने ऊपर देखा।

'तुझे ऐसा लग रहा हो कि यह खैरात है—हाथ फैलते संकोच होता हो तो कल से तू इस चबूतरे पर झाड़ मार जाना और मुखियाजी से गद्दी-तकिए मांगकर यहां बिछा देना, फिर तो ठीक है न? फिर तुझे ऐसा नहीं लगेगा न कि मुफ्त का खाता हूं?'

सेठ की बड़ाई को कालू ने सर-आंखों पर लिया और आंखों-आंखों में ही उनकी वंदना करता रहा। मन-ही-मन कह रहा था, 'सेठ हों तो ऐसे उदार दिल के!'

सेठ ने फिर कहा, 'तुझ-से और हों तो उन्हें भी समझाना। कहना कि यह तुम्हारा है और तुम्हें दे रहे हैं, इसमें खैरात जैसा कुछ भी नहीं है।'

कालू ने गरदन हिलाई। एहसान मानने के लिए शब्द न मिलने पर सुंदरजी सेठ से 'जय श्रीकृष्ण' कहकर चला गया और कतार में खड़ा हो गया—'हमारा है और हमें लेना है...मेरा भी इसमें होगा ही। उस बरगद वाला मेरा धान, हाथ में फेरे हुए और खेलाए हुए उस धान के चावल, पहचान लूं—चुन कर दिखाऊं, कहां तो!'

सिपाहियों के लिए कालू—न जाने क्यों, आंख की पट्टी-सा और सो भी मिर्च की पट्टी-सा था। पर फौजदार जिन्हें सलाम करते थे, उन सेठजी की ही मेहरबानी जिस पर थी, आमने-सामने जिसके साथ बात की, उसे क्या किया जाए? और उन लोगों ने जो गुस्सा कालू पर था वह दूसरों पर उतारना शुरू किया, 'साले पालन करने वाले देखें न हों तो!...सूअर, ठीक से कतार में खड़ा रह!'

वह डेढ़ पाव खिचड़ी फटी धोती के छोर में लेकर रवाना होते कालू को हंसी आ गई, 'सो तो साधु के दोनों लोक बिगड़े जैसा खेल हुआ! टेक भी खोई और जी भी खोना होगा!

कालू की बात गलत न थी। अब तक तो पाव-डेढ़ पाव पर मकई-कोदो-सा 'ठोस' नाज मिलता था जबकि यह तो कालू के ही शब्दों में कहें—'एक डकार लेते ही यह डेढ़ पाव खिचड़ी हजम!' और राह देखती राजू से उसने कहा—

'राजू, उस कहने वाले ने ठीक ही कहा है कि राम! तेरी कैसी गति कि कौन

कमाता किसके लिए!...हमारा तो भाग्य ही छिछला है और यह अंजुरी भी वैसी ही निकली।'

राजू चिढ़ गई, 'मेरा भाई और भगा कहते हैं इसमें तनिक भी भूल नहीं है,' और आंखें दिखाते हुए कहा, 'खबरदार, अब ऐसी गड़बड़ की तो! आधे तो ऐसा सोच-सोचकर ही मरना पड़ा है। अपने बदन की ओर तो देखिए। आप जानते हैं? डाइन, सबसे बड़ी डाइन कौन है?'

कालू को राजू की गालियां भी मधुर लगती थीं। जबकि यह तो उलाहना था और सो भी मीठा। हंसते-हंसते बीच ही में बोल उठा, 'सबसे बड़ी डाइन तो भूख है, पर...'

पर राजू इस वक्त ठिठोली नहीं कर रही थी, बोल उठी, 'ना! डाइन चिंता है। आदमी के कलेजे को कुरेद खाती है!'

और इसके बाद तो राजू ने उसे समझाया-बुझाया।

'हां, भाई हां, चल अब वह सारी बकवास नहीं करूंगा।'

यह कहकर कालू फिर गंभीर हो गया। बोला, 'पर भोंडे से भोंडा क्या है सो जानती है तू?'

'भूख!'

'ना! मैं भी भोंडी-से-भोंडी भूख ही कहता था पर उससे भी भोंडा आज कुछ और देखा..'

कालू ने धोती की उस छोटी गठरी पर से नजर उठाकर उसे राजू की ओर किया। आर-पार देखते हुए पूछा, 'तुझे मालूम है? भूख से भी बुरी भीख है। भूख तो हड्डी-मांस गला देती है।, पर यह भीख तो— ' कालू मानो अपने-आप से ही बक रहा था। 'राजू! सच कहता हूं, यह हमारे गुमान को, आत्मा को भी गला देती है। पानी कर देती है! और याद रखना— '

राजू के लिए यह असह्य हो गया और जैसे मां बच्चे को डांटती है त्यों उसे डांटकर हाथ पकड़कर धक्का दिया, 'आप चुप रहकर घर चलिए, नहीं तो— ' पर इसके साथ ही उसकी आवाज शिथिल हो गई, 'क्यों सभी मिलकर मेरी जान खाते हैं!' कहते हुए उन दो बच्चों को भी धक्का दिया, 'इससे तो मैं मर गई होती तो— '

राजू की ऊब कालू को होश में ले आई मानो शराबी का नशा उतर गया हो। जैसे पछतावा कर रहा हो, ऐसी लाचार आवाज में कहा, 'तेरी कसम खाकर कहता हूं राजू! अब से मैं ऐसी बकवास नहीं करूंगा, जिसे भगवान पूछे अगर— '

'तो चलिए, चुपचाप!' और कालू आज्ञाकारी बालक की तरह आगे हो गया। उन दो लड़कों के साथ चलने लगा।

जबकि राजू भी रूठी हुई मां की तरह बड़बड़ाती हुई पीछे-पीछे जा रही थी, 'ओहो हो! ये तो मानो ऐसे हैं जैसे घर में राज्य हो। यह मौत तो पैरों के नीचे दब रही है और गुमान की और भीख की बड़ी-बड़ी बातें?'

कालू ने न बोलने की शपथ ली थी, वरना उसका अंतर तो, लौटते और गलियों में भटकते अपने बांधवों के हाल देखकर जल रहा था। कपड़ों और खाने से बेहाल थे ही, तिस पर आज 'गुजर' ली थी भिखमंगों की मानो टोलियां हो।...और कालू की आंखों से आंसू चू पड़े। मन-ही-मन कहने लगा, 'आधा आषाढ़ गया तब भी न आया। अब ओखल में सिर है। फिर आहिस्ते क्यों, राम। यह डेढ़ पाव खिचड़ी किसलिए? अब तो पटकना ही शुरू कर दे। नहीं सहा जाता राम, भूख भी नहीं सही जाती और यह भीख भी! सो मूसल पटकना ही शुरू कर दे...' पर मकान का चबूतरा चढ़ते हुए खुद कालू ही गिर गया। या तो उत्तेजना के कारण या भूख के या फिर किसी और कारण से।

घबराई हुई राजू चीखने लगी, 'दौड़ो कोदर भाई, भगा, कोई पानी लाओ। ये आंखें तो— '

कोदर-भगा आदि चार-पांच पुरुष और भली-रूखी आदि चार-पांच स्त्रियां, यह सारा घर ही, चबूतरे पर दौड़ आया।

राजू आंखें दबाती रही, भगा-कोदर सिर पर पानी छिड़कने लगे। भली गालियां देती रही, 'खा अब निगोड़े! खाता जा! भाइयों को और माताओं को (राजू को) जिलाने गया था तो ले! बांध भलाई की गठरी और जा उन बड़े घरों में! वहां तेरा दादा (भगवान) दे देगा राजभाई।'

पर भली की ओर किसी का ध्यान नहीं था। सिर्फ रूखी फूलवाली घाघरे में घूमती हुई और धीरे से मुस्कराती हुई भली से कह रही थी, 'अरी, चुप...! मर जाएगा तो भी तुझे ही कंधे पर चढ़ाना है? तू किसलिए?...'

38

उजड़ा आकाश

आषाढ़ी आकाश को उजाड़ देखकर लोग निःश्वास छोड़ने लगे। दिन-ब-दिन बारिश की और साथ-साथ जीवन की आशा भी टूटने लगी। आदमी बुलबुलों की तरह मरने लगे। जो जिंदा थे वे भी कामना कर रहे थे, 'अब तो भूख नहीं सही जाती, राम!...अरे, तेरे घर मौत की भी कमी है?...एक फैसला कर दे, या तो मौत दे या बारिश।'

जबकि कालू के मन में कुछ और ही था, 'अब किनारे पहुंची नाव डूबेगी, मेरी मौत ही बिगाड़ने बैठा है, वरना— नहीं आगे नहीं पीछे, ठीक बारिश के बीच ही प्राण ले ले।'

और ऐसा हो तो सचमुच कालू की मौत बिगड़े। बारिश की राह देखते हुए वह अधीर हो गया था, बल्कि मौत को भी भूल गया था।

मेघ राजा कब नीचे उतर आएं और कब उन बीजों को बो दूं! भूखे जगत को भरपेट खिला दूं। अनाज ही अनाज कर डालूं। पर मेघ राजा नीचे उतरते, तभी होता न वह सब?...कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा गई और आज दूज है। दूज के दिन न बरसी तो तीज के दिन तो बरसेगी ही...तीज तो चुक गई...चौथ तो कोरी नहीं रहने देगी!

पर चौथ भी गई और...पांचवीं ने तो कालू के पैर तोड़ डाले, 'कुछ नहीं, प्रलय ही आ पहुंचा है।'

फिर भी उसकी अंतरात्मा भीतर-ही-भीतर कह रही थी, 'आएगी, आएगी! पांचवीं की चुक गई, सातवीं और ग्यारहवीं के दिन तो— '

आदमी के धीरज की भी सीमा होती है। और आशा भी, जेठ के पिछले पंद्रह दिनों को गिनें तो डेढ़-डेढ़ मास तक लंबी हो गई थी। अलबत्ता, ग्यारहवीं के बाद बादल दिखाई दिए थे, पर न बिजली, न गर्जना— क्षण-दो क्षण में विरम जाते थे। साथ-साथ लोगों की आशा भी मरने लगी, 'कुछ नहीं भाई, यह तो यों ही तड़पाता है!'

कालू को तो भरोसा हो गया था कि बारिश की आशा करना अब व्यर्थ है...चौदहवीं के दिन तो ज्यों-त्यों करके जिलाए उन दो बैलों के लिए, एक अपना और एक रणछोड़ का, सूखे पत्ते लाना भी छोड़ दिया। राजू को भी जाने न दिया, 'अब मैं घड़ी-दो घड़ी के लिए हूं। अंतकाल के समय ही तू— '

राजू में भी कहां खून दौड़ता था कि दुलार करती! असल में तो वह कालू से भी अशक्त हो गई थी। भूख ज्यादा सही थी, सो तो उन दो लड़कों को खेलते देख कोई भी कह सकता है।

पर अब तो वह भी उस भूख से, जीवन का भार ढोने से हिम्मत संभालने में ही हार गई थी। उसने भी आला-पाला और पत्ते ले आना छोड़ दिया, 'बेकार भार ढोना! उसे बरसना ही होता तो—जेठ के पिछले पंद्रह दिनों से लेकर आषाढ़ भी बीतने लगा तब तक न बरसता!' और वह घर में ही पड़ी रही।

परंतु एक ही दिन के अनुभव ने कालू-राजू को समझा दिया कि भली-रूखी की खुशी भरी बातों और कोदर-भगा की स्थितप्रज्ञ दशा के बीच घर में पड़े रहने की अपेक्षा वह वीराना ही बेहतर है।

परस्पर कहे बिना ही दोनों इच्छा करते—कालू तो कल्पना में सोचता रहा, 'एक-दूसरे की बांहों में लिपटकर दोनों उस बरगद के नीचे पड़े हैं और हंसते हुए मौत का मजा लूट रहे हैं। एक साथ ही आंख मूंद लेते हैं...उड़ गए वे प्राणपंछी पंख से पंख मिलाकर, गाते-गाते स्वर्ग के पथ पर...'

और दूसरे दिन तो वह खुद ही तैयार हुआ। वह डेढ़ पाव खिचड़ी पानी में भिगोकर खा ली, जरा आराम किया और शाम होते-होते ही दोनों खड़े हो गए।

कालू कोदर-भगा से विदाई लेने लगा जबकि राजू तो अंतिम चार-छह दिनों से बालकों से अलग होते वक्त उन्हें प्यार तो करती ही थी, पर आज तो वह इस तरह उनसे प्यार करने लगी जैसे मरने ही जा रही हो। बालकों से अलग ही नहीं हो पा रही थी।

तैयार खड़ा राह देखता कालू ऊब गया और उसने कह दिया, 'पत्नी ने पति का त्याग किया, मां ने बच्चे छोड़ दिए पर तूने ये भतीजे...'

'वे भी अब बिछुड़े हुए ही हैं न?...कुछ दिन—शायद आज के लिए ही मैं मेहमान हूं!' राजू होठों में गुनगुनाई और ऐसे चलने लगी जैसे खिंची जा रही थी।

घर के उन लोगों से और जगत से दूर चले जाने की, अकेले हो जाने की जैसे तमन्ना हो इस तरह मरने के बहाने जीते राजू-कालू के लिए वह आधे मील का मार्ग काटना मुश्किल हो गया होता। संभव था कि रास्ते में ही 'बात' तमाम हो जाती!

ऐसी दशा तो अंतिम कई दिनों से थी, उसमें भी बारिश की ग्यारहवीं भी चुक गई...!

और सारे रास्ते कालू चुप था। अलबत्ता, ईशान में झांकता बादल देखकर बारिश की आशा करने लगा था, 'आज अमावस्या के दिन भी नहीं होगी?' पर दूसरे ही क्षण उसने निःश्वास छोड़ा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं! ऐसे तो तीन बार बादल उमड़ आए। पर कुछ नहीं, भाई! वह मारने पर ही उतारू हो गया है।' और यों उस जगती आशा को ही उसने तोड़ डाला। डूंगर की तलहटी वाले उस बिना पत्ते के बरगद के नीचे—

मंजिल तक पहुंचने पर उसने मौन तोड़ा—

'इन सभी को मौत आती है और हमारी कहां मर गई है?' घुटनों पर हाथ रखकर उन सूखे पत्तों के पास बैठते हुए कालू बोला।

'कौवे खाकर आए हैं न!' राजू ने भी बगल में बैठते हुए पत्ते इकट्ठा करना शुरू कर दिया।

'सच बात बता रहा हूं, राजू! अब मुझसे भूख सही नहीं जाती। जी निकाल दूं, ऐसी ही इच्छा होती है।'

अभी तक अपनी और साथ-साथ कालू की भी मौत चाहती राजू का हृदय, कालू के चेहरे पर जो वेदना थी, आवाज में जो मजबूरी थी, उसे देखकर फड़फड़ा उठा। बाहर उभर आई कालू की हड्डियों की ओर वह ताकती रही, फिर उसकी भीतर धंसी आंखों की ओर ताका...कहने तो जा रही थी, 'निकल गया होता जी, तो भी छूटते। पर...'

कालू से आंख मिलते ही मरी हुई वह हिम्मत कुलबुलाई। उड़ गया हास्य—हास्य की छायाएं, उन आंखों के नुकीले कोनों में उतर आईं। इतना ही बोली, 'मर्द होकर...'

कालू ने पत्ते इकट्ठा करना छोड़ दिया। पीछे जमीन पर लूले और दुरुस्त दोनों हाथों की कुहनियों का सहारा लेकर पैर फैलाए। और जवाब के लिए राजू की आंखों की ओर देखता रहा...निःश्वास के साथ शब्द भी निकले, 'मर्द तो बहुत हूं, पर किस काम का?...भूख के साथ थोड़े ही लड़ा जा सकता है, राजू?'

राजू की हड्डियां भी निकल आई थीं। वे नुकीली आंखें भी गहरे उतर गई थीं। परंतु अब भी कहां वह मधुरता टिकी हुई थी, बोली, 'मौत से लड़ा जा सकता है तो भूख से क्यों नहीं लड़ा जाता, कालू?'

कालू को, राजू की वे सभी पिछली बातें—वह सारा सयानापन सतही लग रहा था तभी तो उसने कहा, 'अभी भी तू वैसी ही रही? यह सारी सयानी-सयानी बातें करना—इतनी तकलीफों के बावजूद नहीं भूल पाई?' कालू की आंखों में चिढ़ और तिरस्कार था।

राजू क्या जवाब देती? नीचे नजर डालकर पत्थर पर ठोंकती बोली, 'जो कहिए सो सही!' और आंखों के गड्ढे भर गए। टप्-टप् आंसू चू पड़े।

कालू के लिए यह असह्य हो गया। पर उसकी आवाज में तो अब भी चिढ़ थी, 'धरती पर से अनाज खत्म हो गया और पानी भी, पर तेरी आंखों के मात्र आंसू खत्म न हुए!' और न जाने क्यों उसकी आंखें भी आंसू से छलक गईं।

'जिंदगी भी खत्म नहीं होगी!' राजू बोली, पर होठों में। फिर स्वप्न से जगकर तुरंत ही खड़ी हो गई, 'लीजिए उठिए, चलिए' और आगे कहा, 'सब-कुछ अब खत्म होने लगा है न? चलिए, कुछ छिलके हाथ लग जाएं तो।'

पर कालू तो उठने की बजाय लंबा होकर सो गया। फीकी हंसी हंसते हुए बोला,

'मनुष्य का जन्म धारण करने पर भी बहुत दिन घास और छिलके खाए पर—' और राजू की ओर देखा, 'तू जा, राजू! मैं तो बस यहां ही—' मुंह पर मंडराती राजू की उलाहना-भरी आंखों में झांकते हुए कहा, 'सच कहता हूं, मुझमें तनिक भी ताकत नहीं बची!' और मानो भयंकर वेदना से लौटकर करवट लेते हुए, हाथों से मुंह छिपाते हुए, गद्गद आवाज से कहा, 'तू तो जा...मेरे मरने के समाचार पहुंचाना।' फिर स्वगत बड़बड़ाया, 'पर किसे पहुंचाएगी? घर की औरत को—ना ना! मरते क्षण उसे दोष देना ठीक नहीं। दोष तो उस पापी पेट का है!...सही बात है, भूख बुरी है, आदमी बुरा नहीं!...और फिर वह चित हो गया। संतोष-भरी आंखों से राजू की ओर सतत देखता रहा, 'ब...स! जिसे आखिरी राम-राम कहते थे वह तो यह...'

राजू के लिए अब असह्य हो गया। कालू की छाती पर—मानो इस बरगद की डाली, भयंकर बवंडर में टूट पड़ी—फटकर!

और आंसू के सोते बहाती दोनों आत्माएं घड़ी-भर कामना करती रहीं, 'ऐसे ही मौत आ जाए!'

पर मांगने से मौत मिल जाती तो मनुष्य को और चाहिए क्या?

प्रबल कामना होने पर भी दोनों में से किसी को मौत न आई...थककर कालू की छाती से राजू ने सिर उठाया, मन-ही-मन बड़बड़ाई, 'अभागे के भाग्य में मौत कहां!' पर कालू को झकझोरते हुए बोली, 'चलिए-चलिए...यों छोटे बच्चे की तरह क्या करते हैं, थोड़ी-सी तो हिम्मत रखिए!'

'हिम्मत रखने की बड़ी कोशिश करता हूं पर—सच कहता हूं, राजू—' कालू ने फिर राजू की ओर देखा और मनाता रहा, चेतावनी देता रहा, 'ऐसी मौत फिर नहीं मिलेगी, हां!' और उसकी आवाज ऐसी शिथिल हो गई जैसे सूखे गले से आ रही हो।

उसका चेहरा देखने पर तो राजू घबरा गई, 'यह मुझे छोड़कर चला जाएगा क्या?'

कालू सचमुच बेहद अशक्त, मरणासन्न लग रहा था और इसीलिए तो राजू घबरा गई न? अनेक विचार मन में आए—'बरगद की वह हरी कोंपल है, उसे तोड़ लाऊं? उसकी कोंपलें—यहां आसपास कहीं इमली नहीं...बहेड़ा तो हो ही कहां से? क्या खिलाना—अरे पानी भी नहीं है वरना...'

'पानी' शब्द के साथ ही राजू के भेजे में एक विचार आ गया—कालू की आंखें भी उसकी छातियों पर ठहरी हुई थीं।

राजू ने जोर से सांस ली। उसने कालू की आंखों में फीका, फिर भी लचीला और मादक, हास्य भर दिया, कहा—

'वहां क्या मिलनेवाला है?' और फटी चोली पर हाथ फेरती रही, 'अंगूठे में होता तो...'

न जाने कैसे कालू की नाड़ियों में बिजली घूम गई। कुहनी के सहारे खड़ा होने

गया, पर इससे पहले खुद राजू ही झुकी! और...

राजू का हिया चू रहा था या मुंह से छूटता था सो तो भगवान जाने! पर गले का दाह दूर हुआ और भीतर से देह शांत हुई, इतना तो कालू जानता था। उन आंखों में चेतना टिमटिमा गई और चेहरे पर हंसी उभर आई, यह खुद राजू ने भी देखा!

ईशान की ओर सतत् देखते कालू की आंखें चमक उठीं, कान सजग हुए और होठ अलग हो गए, 'सुनाई देता है कुछ, राजू?' वह उठ बैठा।

राजू ने भी कान धरे और...मुदित हो उठी। कालू तो खड़ा हो ही गया, मानो गंगा को धारण करने के लिए शंकर उठे हों।

बात सही थी। ईशान में बादल उमड़ आए थे, दूरी पर गर्जना भी हो रही थी। यह आदमी की इस भवाई (फजीहत) से रूठकर या खुश होकर, कुपित होकर या आनन्दमग्न होकर,

कैसे भी हो पर, उसका रूठना, त्रस्त होना और कुपित होना भी मनुष्य के लिए आशीर्वाद था, समस्त पृथ्वी के लिए श्रेय था!..

अंधेरा होने लगा था, फिर भी कालू-राजू बैठे रहे। आसमान के रंग-रंग देखते, मेघ की पुकारें सुनते और वर्षा की प्रतीक्षा करते— अब भी चिंता थी, 'ऐसा करते हुए बिखर जाए तो हम उसके नाक-कान काटने वाले थोड़े ही हैं।'

परंतु तभी वह अमृत की फुहार शुरू हुई। बूंद-बूंद से कालू के अंग-प्रत्यंग में, रोम-रोम में चेतना प्रकट हुई और मस्तिष्क कुलबुलाने लगा— और...

धरती का यह पुत्र समझ नहीं पाया, इस बारिश में नाचे या अवधूत की तरह बैठा रहे, बोल जाए या आंसू बहाए?

कालू बरसात को देखकर पागल-सा हो गया जबकि राजू कालू के पागलपन पर पागल हुई...उछलते हृदय को थामती खड़ी रही— 'लीजिए-उठिए, चलिए, फिर अंधेरा— '

कालू स्वस्थ आदमी की तरह खड़ा हो गया। 'अंधेरा हो जाए तब भी क्या?' कहते हुए राजू की आंखों में आंखों को पिरो दिया। गंभीरता से, उपकार से हंसते हुए राजू के आरपार कहने लगा, 'तो भी क्या? जिसने जीवन का पथ दिखाया— ' उसकी नजर आकाश की ओर मुड़ी, 'उजड़े आसमान से अभी बरसे...' और फिर उसने राजू की ओर देखा, पूछता रहा, 'यह क्या उसे अब अंधेरे में उलझा हुआ छोड़ देगा?'

क्षण-भर तो राजू को लगा कि यह कालू नहीं बोल रहा है। और वह सच ही था। कालू की अंतरात्मा ही बोल रही थी।

पर राजू ने तो कालू के शब्दों में कुछ भी राज हो न हो, इस तरह फटकारा, 'चलिए न अब चुपचाप। उजड़ा आसमान बरसता तो फिर'— और विरोध करने जा रहे कालू के मुंह पर सौभाग्यचिह्न रहित राजू का हाथ पहुंचकर सट गया। 'मेरी कसम, अगर आपने ऐसा कुछ कहा...'

पर वह वाक्य पूरा करती इससे पहले कालू ने ही अपना अपंग हाथ राजू के मुंह

पर दबा दिया।

और उस धरती पर— झाड़-झंखाड़ पर वर्षा की धारा, पवन की सरसराहट, बिजली की कौंध और बादलों की गर्जन— मानो बारह-बारह मास का वियोग समाप्त करता मेघराज तांडव-नृत्य करने लगा...

निवास की ओर कदम उठाते कालू के पैर भी मानो धरती को झंकृत कर रहे थे। दाहिनी ओर चलती राजू को भी लगा, विश्वास हो गया था कि अब यमराज आ पहुंचें तो भी उनकी हिम्मत नहीं कि इस मर्द को मार सकें, मिटा सकें।

कल्याणी कम्प्यूटर सर्विसेज, वर्धमान काम्प्लेक्स, यमुना विहार, दिल्ली-53 द्वारा लेजर कंपोज तथा शिवम ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित